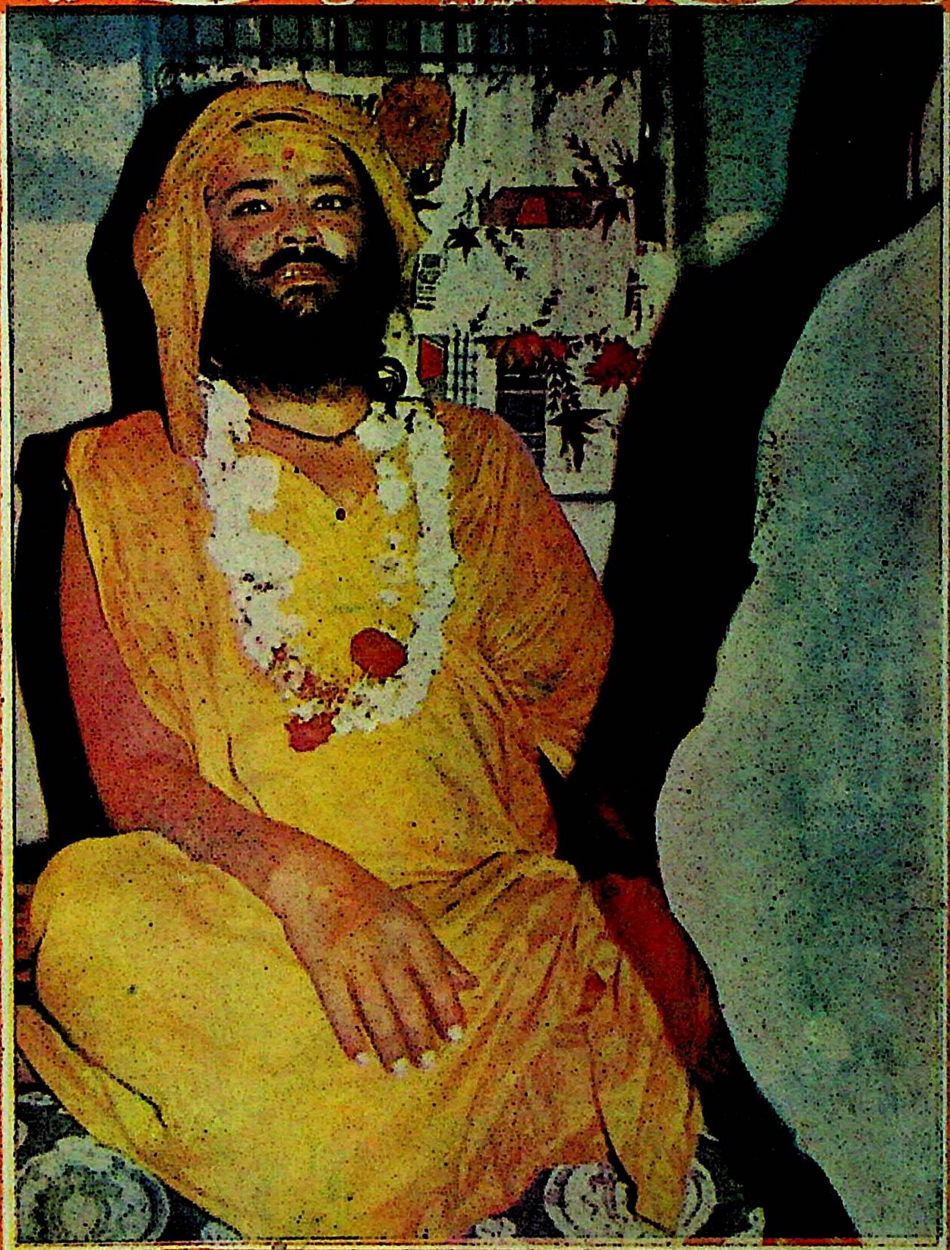
॥श्री:॥

प्रवचन रत्नाकर



श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज

विद्यावारिधि: (पी-एच०डी०)

॥ श्रीहरिः ॥

卐

श्री प्रवचन रत्नाकरः

रचयिता

श्री श्री १००८

डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज

विद्यावारिधिः (पी-एच्०डी०)

स्थाई अध्यक्ष एवं उत्तराधिकारी शिष्य

धर्मसंघ शिक्षा मण्डल

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी (उ० प्र०)

श्रीहरिः

○ सम्पादक :

श्री श्री १०८ स्वामी सीतारामाचार्य

व्याकरणाचार्य साहित्यशास्त्री (आचारी जी)

श्री जनकपुरधाम

○ सहसम्पादक :

आचार्य श्री पं० विवेकानन्द जी मिश्र (पयासी जी)

○ प्रकाशक :

स्वनाम धन्य दानवीर श्रीमान् केशव भाई विट्ठल भाई पटेल

सिद्धपुर - गुजरात

○ ग्रन्थ प्राप्ति स्थान :

श्री श्री वेदान्ती स्वामी जी महाराज

धर्मसंघ शिक्षामण्डल

दुर्गाकुण्ड (वाराणसी)

❋

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव (बाल भाई)

जगमोहन प्रिंटर्स

२६, हिन्दी साहित्य सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद (उ०प्र०)

○ प्रथम आवृत्ति :

मूल्य १११ रु० (संस्था सहायतार्थ)

○ मुद्रक :

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव (बाल भाई)

जगमोहन प्रिंटर्स

२६, हिन्दी साहित्य सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद (उ० प्र०)

जिल्द संख्या २ क्रम संख्या १५९

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी

अस्थायिप्रमाणपत्रम्

(Provisional Certificate)

अनुक्रमांकः .... प्रवेश संख्या ... ...

प्रमाणीक्रियते यत् .... लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी ... . नामा/नाम्नी

श्रीमतः .... स्वामी करपात्री . ... नाम्नः पुत्रः/पुत्री

.... विद्यावारिधिः (पी०एच०डी०) .. .. — ... . परीक्षायाम्

... ... सनाद्यन्तधात्वर्थ विमर्शः .... विषये .... १९८५ वर्षे

... ... श्रेण्याम् उत्तीर्णः/उत्तीर्णा, यस्य प्रमाणपत्रमद्यावधि न प्रदत्तम् ।

ह०
उपकुलसचिव (परीक्षा)
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य

दिनांक २७-८-१९८५ ई०

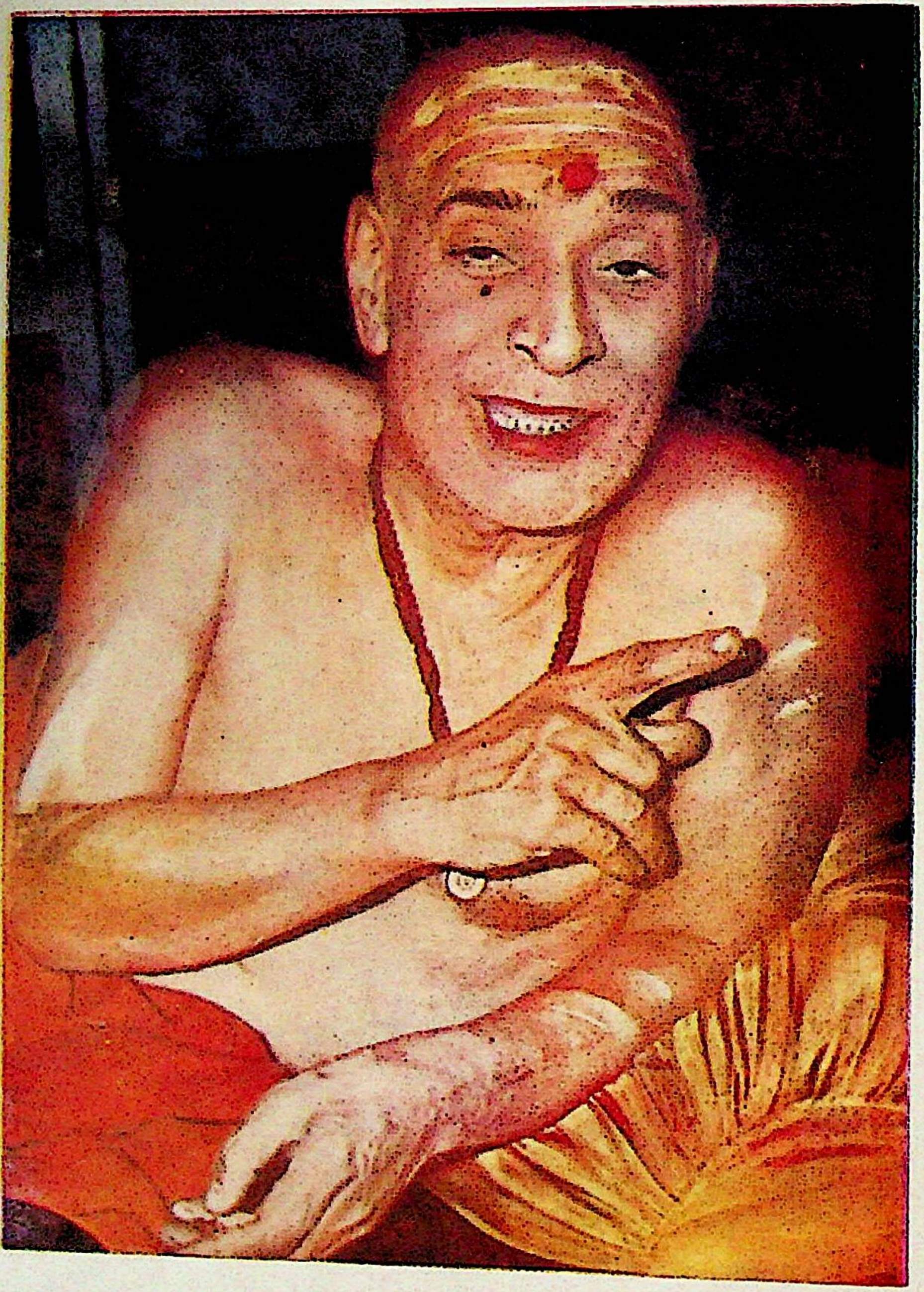
श्रीहरिः

श्री अकारण करुणा वरुणालय प्रभु से सदा ही जिनकी शुभकामना करता रहता हूँ—

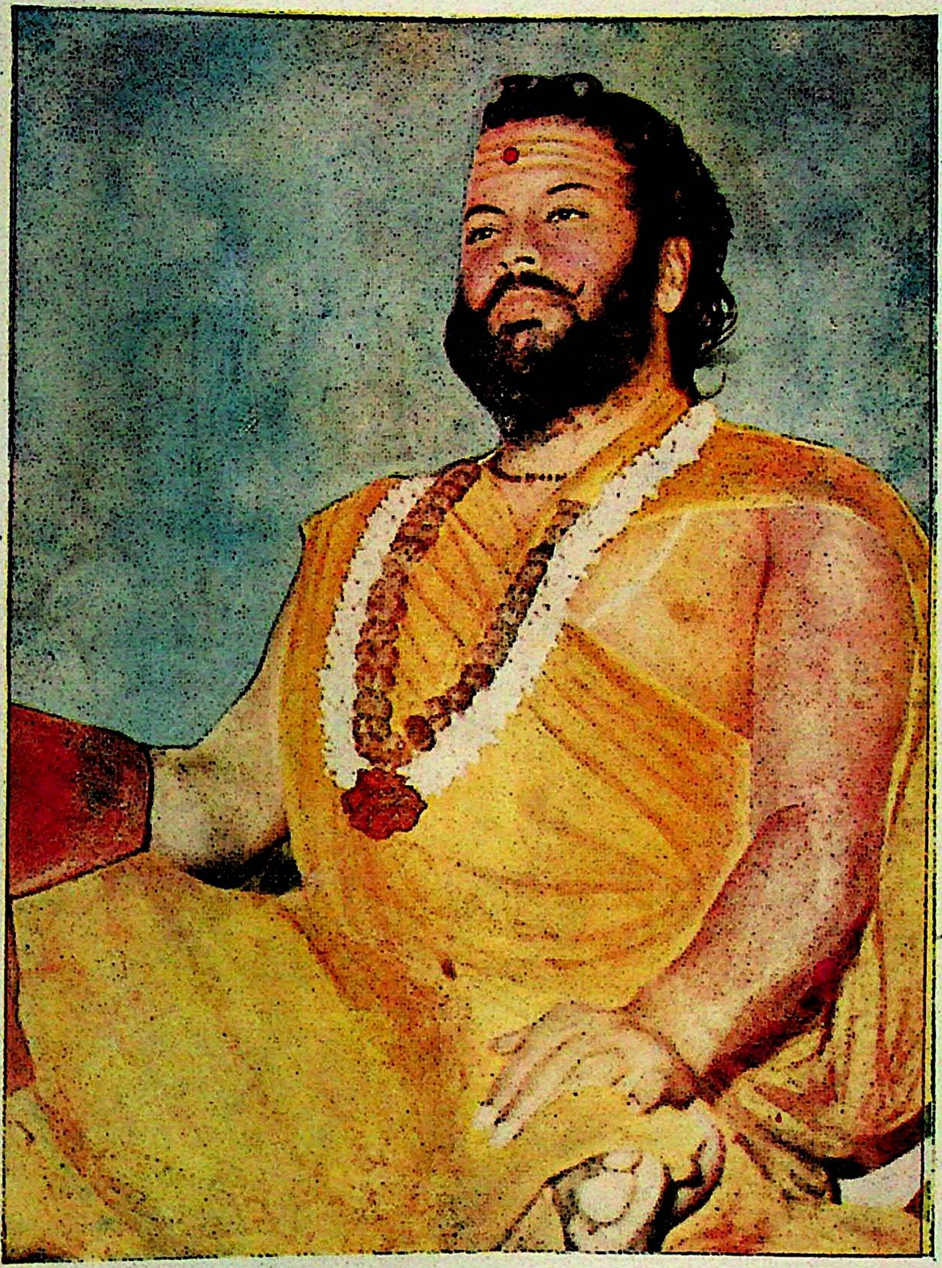
जिनके निर्देशन में विद्यावारिधिः (पी.यच-डी.) उपाधि प्राप्त करने का शुभावसर प्राप्त किया। उन सज्जन पुरुष के प्रति सदा कृतज्ञ हूँ। उन अपने शोधप्रबन्धनिर्देशक श्रीमान् डॉ० कालिका प्रसाद जी शुक्लजी साहब (भूतपूर्व वेद, वेदांग संकायाध्यक्ष), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सादर मंगलाशीष प्रदान करते हुए श्री प्रभु विश्वनाथ अन्नपूर्णा जी से दीर्घायु की कामना करता हूँ।

शुभेच्छु :

लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी



अनंत श्री विभूषित धर्म सम्राट्
श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज



श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य

ब्रह्मचारीजी महाराज

श्रीहरिः

"कुछ अपनी बात"

मायातीतं माधवमाद्यंजगदादिं मानातीतंमोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगध्येयंयोगविधानंपरिपूर्णंवन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ।

अप्रमेयत्रयातीत निर्मलज्ञानमूर्तये मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तयेनमः

जो प्रत्क्षादि प्रमाणों से परे त्रिगुणातीत मलहोन ज्ञानस्वरूप और मन, वाणी आदि के अविषय हैं । उन दक्षिणामूर्ति भगवान (सदाशिव) को नमस्कार है !

अब श्रीगुरु चरणों का मनोहर ध्यान करते हुए इस "श्री प्रवचन रत्नाकरः" के उदय-आदि के सम्बन्ध में बताना चाहूँगा । उज्जैन के महाकुम्भ में मेरी प्रथम पुस्तक "प्रवचन पाटल" प्रकाशित हुई थी, जो श्री महाराज के पावन शुचि श्री चरणारविन्दों में समर्पित की गई थी । बाद में कुछ पृष्ठ श्री रघुनाथ जी महाराज के लिए एक रजिस्टर में लिखा गया था, वह लिख कर कहाँ रख दिया था, पता ही नहीं चलता था । इसी बीच बहुत परिवर्तन हुए । हमारे आराध्यदेव श्री महाराज जी परब्रह्म स्वरूप हो गये और तमाम जिम्मेदारी भी आ गई थी । लिखने का विचार ही नहीं आता था, इसी भाँति लगभग चार वर्ष बीत गए ।

उधर महाराज "श्री" के आराधना के सभी पात्र, सामान, कृपा करके मेरे बड़े गुरुभाई परम तपस्वी श्री वेदान्ती जी महाराज ने हमको प्रदान किया । सब सामान तो हमने रख लिया, परन्तु; महाराज श्री का जो शंख था जिसे वे अपने पावन श्रीमुखारविन्द से सदा ही पूजा के बाद बजाया करते थे, प्रमाद वश मैंने अपने प्रिय शिष्य तथा सम्पूर्ण गोशाला के व्यवस्थापक आयुष्यमान शंकर देव चैतन्य ब्रह्मचारी (शंकर भाई) को दे दिया और हम अपनी यात्रा में चले गये । बाद जब हम काशी आये, तो मेरे बड़े गुरु भाई श्री वेदान्ती जी महाराज साहब ने हमको सबके सामने डाँटते हुए कहा कि सोना-चाँदी वो आप ले गये और महाराज श्री का वह शंख जो सदा ही अपने पवित्र मुखारविन्द में आदर से लगाकर नाद करते थे, आपने छोड़ दिया । हमको बात बहुत सही, तथा हितैषीणी लगी । तुरन्त, शंकर बाबा को बुला कर शंख हमने ले लिया और यात्रा पर निकल गये ।

पहला ही कार्यक्रम म० प्र० में सिमरीहरचन्द में हुआ और प्रभु श्री शिव जी महाराज के महा अभिषेक के वाद श्री महाराज साहब के उस पावन स्पर्शित श्री शंख को हमने,जैसे ही प्रथम बार बजाया कि हमको अद्भुत चमत्कार दिखाई दिया। सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया और लगा कि हममें कुछ नयी शक्ति का जैसे अविर्भाव हो रहा है। शक्ति संचार की नवीनता दिखलाने लगी अभिषेक से उठकर हमको कुछ नवीन काम करने की प्रेरणा प्राप्त होने लगी। बुद्धि में तमाम नवीन तरंगें जैसे घनघोर हिलोरें लेने लगी। क्या काम करें यही सोच रहे थे। तब हमने अपने अन्तरंग तथा सदा ही साथ रहने वाले अपने प्रिय शिष्य श्रीदामोदर गोविंद देव चैतन्य ब्रह्मचारी को बुलाकर उस चार साल पहले लिखे रजिस्टर को खोजने का हुक्म दिया। मेरा वह वफादार बहादुर चेला थोड़ी ही देर में रजिस्टर खोज लाया और हमने तुरन्त लिखना प्रारम्भ कर दिया, जो आज आपके सबके हाथ में यह ग्रन्थ रत्न "श्रीप्रवचनरत्नाकरः" उपस्थित है।

इसमें जो भी रत्न माणिक उत्तम गुण काव्य ओज प्रासाद संकलन है। यह सब मेरे श्रीगुरुदेव महाराज साहव की कृपा है। जो दोष आपको दिख रहे हैं यह इस शरीर के सब अपने ही हैं। श्रीमहाराज साहव का जूठा ही सब कुछ है और हम भी उन्हीं के ही हैं। उनकी कृपा से हम जीवन मुक्त सुखी शान्त रिद्धि सिद्धि वाले हो गये हैं। उनके समान अब कोई हमको दिखता नहीं।

अतः यह "श्री प्रवचन रत्नाकरः" उनके चरणों का कृपा प्रासाद है और शेष कुछ भी नहीं है।

इसके लेखन में प्रमाण संचित करने में सबसे अधिक लगन पूर्वक जिनसे सहयोग मिला है। वे हैं मेरे परम मित्रवर श्रीस्वामी पं० सीतारामाचार्य शास्त्री जनकपुरवासी, मेरे दिली दोस्त श्रीआचारी जो महाराज साहव जो रात-दिन हमको इसे पूरा करने में उत्साहित करते रहे हैं। पुस्तकें क्या मेरे जीवन के उत्कर्ष उन्नति में जिनका बहुत योगदान है उन अपने सच्चे साथी मित्र को बारंबार धन्यवाद देता हूँ तथा तहे दिल से आभार व्यक्त करता हूँ। फिर यात्रा के समय ही यह ग्रन्थ लिखा गया है। सब काम करके रात में प्रवचन के बाद ही लिखने का अवसर मिलता था।

अतः अपने प्यारे उन शिष्य भक्तों का भी स्मरण करना जरूरी समझता हूँ जिनमें चि० आचार्य पं० विवेकानन्द मिश्र ही थे जो मेरी लेखनी को प्रेस लिपिवद्ध किया और शरीर स्वस्थ न होने पर भी अथक परिश्रम किया। पाण्डुलिपि तैयार करने में ग्रन्थों के प्रमाण इकट्ठा करने में उनका सहयोग

सराहनीय रहा है। इसके बाद मेरे भक्त साथ में सदा छाया की भाँति रहने वाले सुख-दुःख में माता-पिता से भी बढ़कर सेवा करने वाले अपने चि० नारायण भाई को भी याद करना नहीं भूलेंगे जो हमसे कहता था कि महाराज यह आप अजर-अमर काम कर रहे हैं। आलस्य त्याग कर इसको शीघ्र पूरा कर डालिए। नारायण भाई ने एक बात बहुत अच्छी कही थी कि महाराज खेतों में कितनी फसल है कितना धान है पता नहीं चलता, परन्तु कट कर जब सब इकट्ठा खलिहान में होता है और धान की ढेरी एक जगह पर संचित होती है, तब अनाज दिखता है। बिखरा रहने पर नहीं दिखता, इकट्ठा होने पर ही सम्पूर्ण स्वरूप दिखता है।

इसके बाद हमारे सारथी श्री रामचन्द्र महादेव जोशी रामा भाई को भी बहुत उत्साह था और बार-बार प्रेरित करते थे। उनकी दीर्घायु की हम कामना करते हैं। जब यह शुभ घड़ी आ ही गई है तो अपने सबसे पुराने परम भक्त ईमानदार श्री चि० मोहन भाई जिवाजी दुवे सिद्धपुर गुजरात वाले को भला कैसे भुलाया जा सकता है। जिनका सहयोग तन, मन, धन से सदा ही शुभ कार्यों में रहा है। एवं इस ग्रन्थ रत्न को देखने की प्रगाढ़ लालसा इनके चित्त में बहुत दिन से थी, अतः श्रीशिव प्रभु से उनको भी बहुत मंगल कामना करते हैं।

कुछ पाण्डुलिपि तैयार करने में हमारे धर्म संघ महाविद्यालय के आचार्य के छात्र श्रीघनश्याम तिवारी को भी आशीर्वाद देते हैं। अन्त में अपने उस शिष्य को दया पूर्वक फिर याद करते हैं जो रात-रात भर मेरे आसन के चरणों के पास बैठकर पान दिया करता था तथा मेरे ऊपर बहुत श्रद्धा रखने वाला सम्पूर्ण भाव में समर्पित है वह है गोविंद जो मुझे बहुत प्रिय है। जिसकी सेवा और बहादुरी की हम सदा सराहना करते हैं। श्रीदुबे जी, चौबे जी, प्रतापसिंह ये मेरे सभा साथ के परिवार हैं जिनके सबके सहयोग से ही यह ग्रन्थ "श्री प्रवचन रत्नाकरः', प्रकाशित होकर आप सबके हाथ में आज पहुँच गया है।

यह ग्रन्थ रत्न संसार के कल्याण के लिए ही लिखा गया है तथा अपने श्रीगुरुदेव की कीर्ति को अजर-अमर करने तथा श्रीरघुनाथ जी महाराज के पावन गुण गाकर वाणी लेखनी जननी जनक को धन्य किया है।

प्रूफ संशोधन में विश्वविद्यालय के धर्मशास्त्र के प्रोफेसर तथा मेरे कुछ काल के विद्या गुरु श्रीमान् पं० रामगोविन्द शुक्ल जी साहब का अपूर्व सहयोग मिला है। जिनके प्रति आभारी हैं।

प्रकाशन में मेरे शिष्य श्रीकेशव लाल विट्ठल भाई पटेल श्रीकान्ति भाई विट्ठल भाई पटेल सिद्धिपुर का अभूतपूर्व सहयोग मिला है। श्रीविश्वनाथ जी महाराज से इनके सदा ही शुभाकांक्षी हैं।

इस ग्रन्थ के मुद्रण में मेरे बाल भाई (श्री सतीशचन्द्र श्रीवास्तव), इलाहाबाद वालों का हृदय पूर्वक, सद्भाव सहित, उत्साहपूर्ण सहयोग मिला कि जिससे यह ग्रन्थ रत्न शीघ्र प्रकाशित होकर आप सबके पास पहुँच गया है।

अन्त में यह द्वितीय ग्रन्थ पुष्प श्रीगुरुचरणारविन्द में सादर समर्पित करते हुए बार-बार उन चरणों का आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी कृपा कटाक्ष से यह सब सम्पन्न हुआ है और श्रद्धा सहित कोटि-कोटि नमन करके मनसा साष्टांग दण्डवत प्रणाम करके भविष्य में ऐसी कृपा बनी रहे और तीसरा ग्रन्थ पुष्प फिर उनके चरणों में शीघ्र ही समर्पित कर सकूँ, ऐसी ही प्रार्थना करता हूँ।

हे महाराज सब अपराध क्षमा कर सेवक पर आप जहाँ भी रहें कृपादृष्टि रखियेगा और आगे ऐसी ही प्रेरणा देते रहियेगा ताकि आपका यह नम्र सेवक आपके श्रीचरणों के पास तक पहुँच सकें।

अन्त में श्रीकाशी विश्वनाथ जी महाराज, श्रीअन्नपूर्णा भगवती, श्रीगंगा महारानी को बारंबार नमस्कार करके अपने मन की बात पूरी करता हूँ।

शुभेच्छु

लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी

श्रावणी पूर्णिमा रक्षाबन्धन

वि० सं० २०४२

(वाराणसी)

श्रीहरिः

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय

धर्म सम्राट् अनंत श्री विभूषित

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

जिनके श्री चरण रेणुकण बल से स्पर्शित होकर—

जीवन धन्य हो गया। बन्धन मुक्त हो गये। सकल मनोरथ पूर्ण हो गये। संकल्प स्वयं सिद्ध हो गये। समस्त भ्रम मिट गये। जीवन मुक्त हो गये। शेष कुछ नहीं रहा।

उन्हीं चरण कमलों में

अनवरत विनय विनत

लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी

श्री श्रावणी पूर्णिमा

रक्षाबन्धन

२०४२

श्रीहरिः

सम्पादकीयवक्तव्यम

प्रशान्तस्वान्तानां तपोवरिष्ठकान्तानां विविधशास्त्राग्रगण्यानां दीनजनशरण्यानां जनाकर्षि सुधास्निग्धमुग्धशास्त्रीयप्रवचनानां पथ्यतथ्यवचनानां प्रोद्यत्प्रचण्डमार्त्तण्डस्वरूपब्रह्मलीनसनातनधर्मसम्राट्-विश्ववन्द्यपूज्यपादप्रातःस्मरणीयानन्तश्रीविभूषितस्वामिश्रीकरपात्रिप्ररणाचामुत्तराधिकारिप्रियशिष्याणां तदनु-रूपाणां धर्ममहायज्ञयूपानां श्री श्री १००८ श्रीमतां लक्ष्मणचैतन्यब्रह्मचारिणामघहारिणां विरचित प्रवचनरत्नाकरनामकोऽयं ग्रन्थो भगवद्रसरसिकजनानां सनातनधर्मरक्षणसक्षणविलक्षणविचक्षणानां भक्ति-भाववर्धनपुरस्सरं समुपादेयो भवितेति दृढ़तरो मम विश्वासः। विशेषरूपेणानन्दकन्दशुद्ध-बुद्धसच्चिदानन्द-मुनिजनवन्दितश्रीकौशल्यायशोवर्धनश्रीदशरथनन्दनश्रीमद्भगवतो रामचन्द्रस्य परमाद्भुतदिव्यचरितामृतं पाययितुं परमनिधिस्वरूपेण ग्रन्थरत्नमधिकाधिकाह्लादजनकं भूयादिति भृशमाशास्महे।

उत्तरगुर्जरप्रान्तीयसिद्धपुरस्थस्वनामधन्य श्रीमान् कान्तिभाईपटेलस्तथा च सर्वपरिवारद्वारा भक्तशिष्यजनानां विशेषसाहाय्येन प्रकाशितः भवदीयकरकमलेषु प्रस्तुतोऽयं ग्रन्थः।

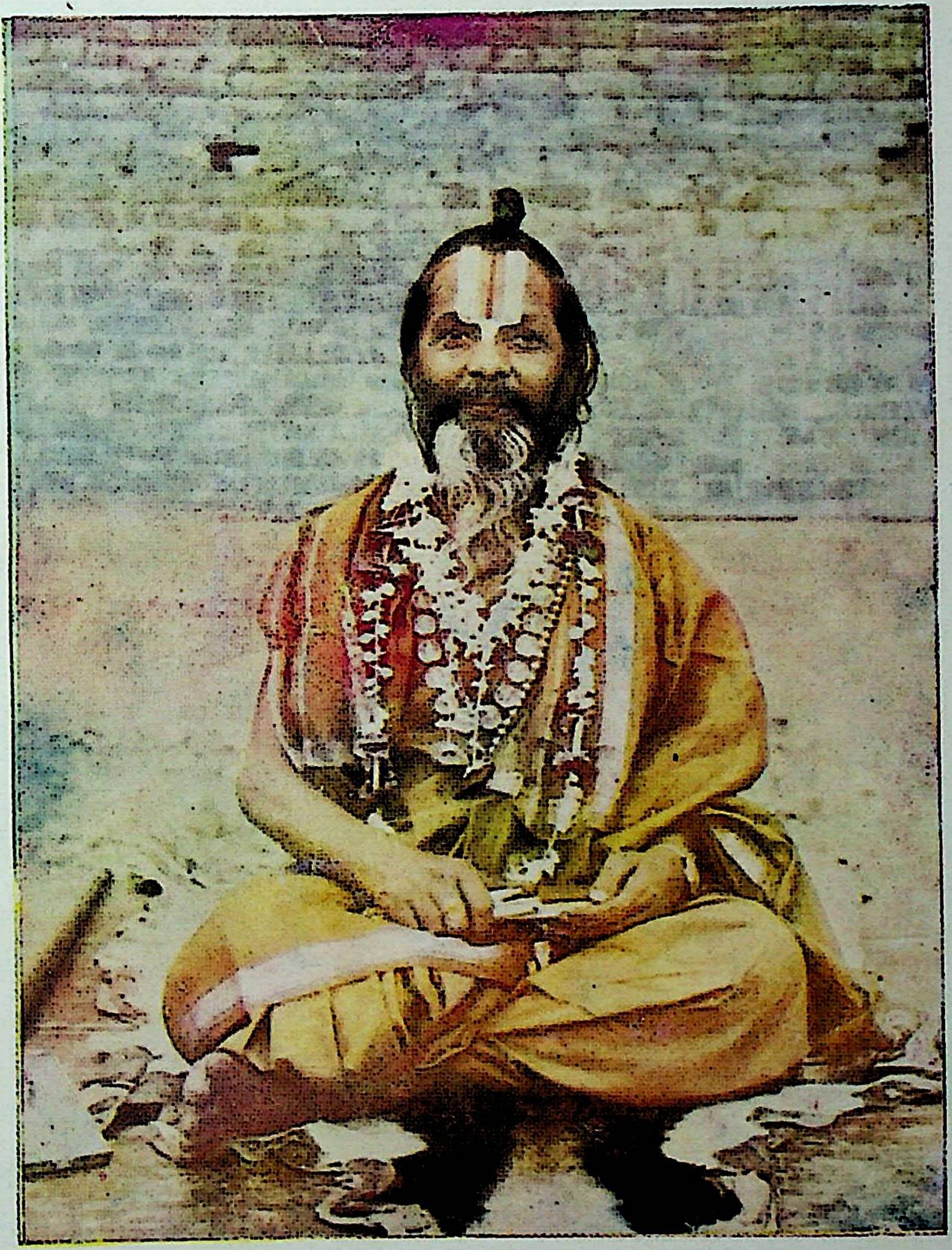
श्रीतीर्थराजप्रयागस्थस्वनामधन्यस्वर्गीयश्रीजगमोहनलालश्रीवास्तवात्मज श्रीसतीशचन्द्र श्रीवास्तव (बाल भाई महोदय) मुद्रणालये प्रकाशितोऽयं ग्रन्थः। भगवान् भूतभावनाशुतोषश्रीकाशीपतिविश्वनाथः समेषां यशःपुण्यधनधान्यपुत्रपौत्रादीनां सदासद्वृद्धिं कुर्वाणः सपरिवारस्य सप्रेम संरक्षण करोतु सततमेवमेव सप्रश्रयं वयं सर्वे सम्प्रार्थयामहे।

बहुविधरचनात्मककार्यबाहुल्येन स्वल्पसमयत्वात् संशोधने यत्र तत्र संजातत्रुटिं निश्चप्रचं विज्ञपाठ-कजनाः क्षमेयुरित्यलमतिशयेनेति शम्।

समेषां विदुषां-वशंवदः—

सीतारामाचार्यो दिव्यधाम श्रीजनकपुरवास्तव्यः

व्याकरणाचार्यः साहित्यशास्त्री श्रीनिधिपदविभूषितश्च



श्री स्वामी पं० सीतारामाचार्य शास्त्री

व्याकरणाचार्य साहित्यशास्त्री, श्रीजनकपुरधाम निवासी

मुख्य न्यायाधीश उत्तर प्रदेश	सील सत्यमेव जयते	उच्च न्यायालय इलाहाबाद

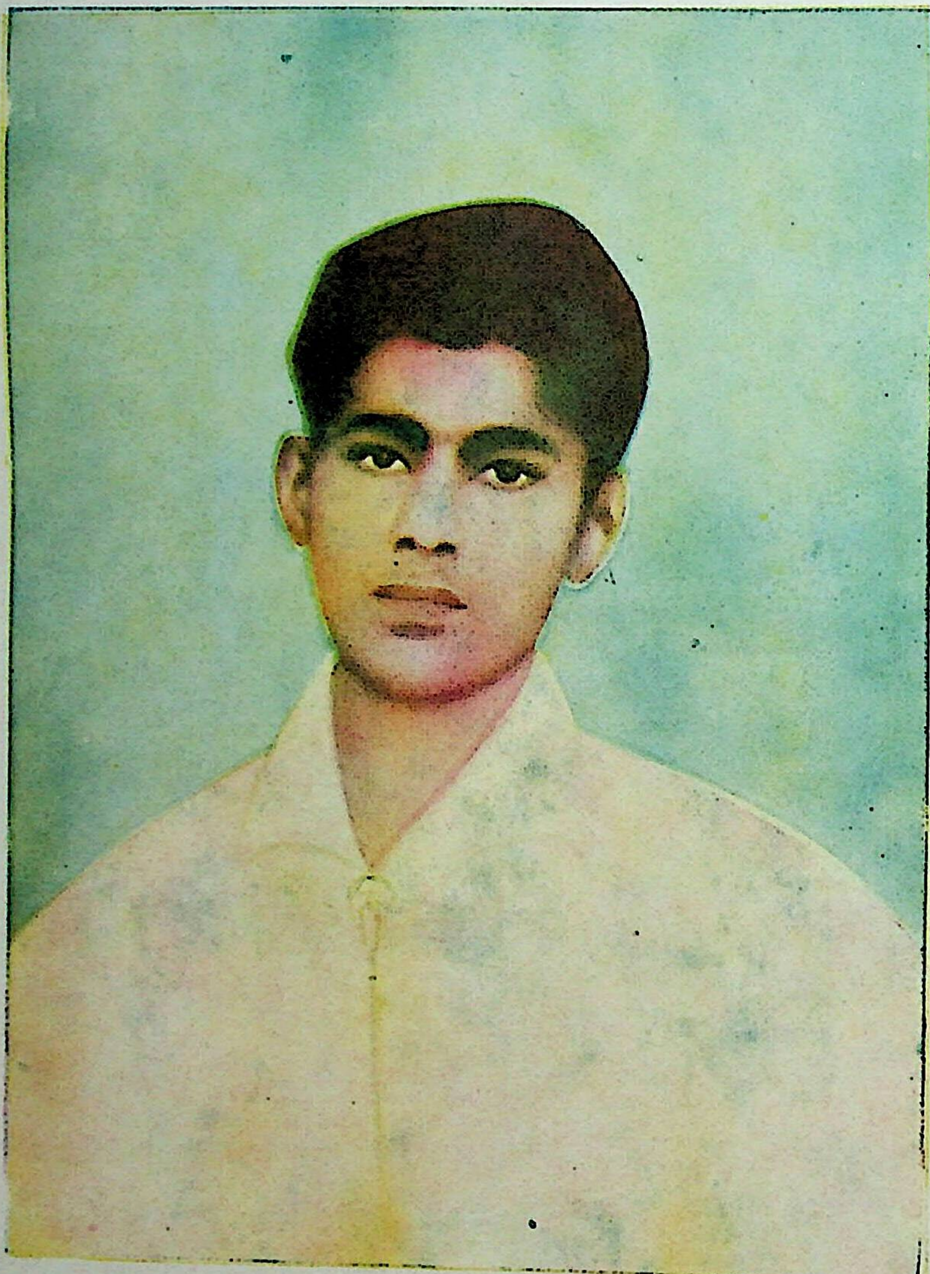
स्वामी लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी का विराट व्यक्तित्व असंख्य भक्तजनों को प्रभावित कर चुका है। जिन महानुभावों ने उनके प्रवचनों का श्रवण किया है, उनके मानस पटल पर उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्य सदैव अंकित रहेंगे। उनकी विशाल काया, सिंह के समान गरजती वाणी तथा परिमार्जित एवं अलंकृत भाषा श्रोताओं को मुग्ध कर लेती है और उन पर एक अमिट छाप छोड़ती है। हिन्दू संस्कृति के स्तम्भ स्वामी करपात्री जी ऐसी महानविभूति की मंगलमयी प्रेरणा से श्री लक्ष्मण चैतन्य की प्रतिभा अपने चरम विकास को प्राप्त हुई और उन्होंने अध्यात्मिक जगत में एक विशिष्ट स्थान अर्जित कर लिया है।

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" शीर्षक ग्रन्थ उनके गहन अध्ययन; प्रखर तपश्चर्या तथा दीर्घकालीन साधना की ही परिणति है। इन निबन्धों में पावन रामकथा के सर्वथा नवीन एवं अनूठे पक्ष उभर कर सामने आये हैं। बाल्मीकि रामायण, महानाटक, उत्तर रामचरित आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों के अंश उद्धृत कर लेखक ने रामगाथा की तुलनात्मक समीक्षा भी प्रस्तुत की है।

मेरा विश्वास है कि श्री लक्ष्मण चैतन्य जी की पुस्तक न केवल जन साधारण में राम साहित्य के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करेगी वरन् उनकी भक्ति-भावना को भी सुदृढ़ करेगी तथा आज के नीरस और शुष्क वातावरण में ईश्वर प्रेम और सरसता की अनवरत धारा प्रवाहित करेगी।

ह० महेश नारायण शुक्ल

दिनांक ११-६-१६८५



स्वर्गीय तिभूति भूषण मिश्र (टुल्लू बाबू)

श्रीहरिः

समर्पण

॥ नियत — करुणा को ॥

दुल्लू बाबू (विभूति भूषण मिश्र) तुम्हारे सहसा स्वर्ग पधार जाने से तुम्हारे माता-पिता (श्रीमती ममता मिश्रा, श्री श्रीप्रकाश मिश्र) अपार दुःख महा समुद्र में तब से ही डूबे हुए हैं। तुम्हारे समस्त कुटुम्बी एवं विद्यालयी मित्र-मण्डली तथा हम और हमारे श्री धर्मसंघ परिसर के सभी लोग मात्र किनारे पर खड़े उन्हें दुःख समुद्र में डूबते देख रहे हैं, कुछ कर ही नहीं पा रहे हैं। थोड़ा जो भी कुछ किया है। वह तुम्हीं को समर्पण कर रहे हैं।

उस स्वर्ग लोक में वत्स इस श्रीराम कथा, "श्री प्रवचन रत्नाकरः" को देवताओं को उनकी सभा में बड़े उत्साह से सुनाना और वत्स जब यह ग्रन्थ समाप्त हो जाय तो एक बार अपने श्री माता-पिता को दुःख समुद्र से उद्धार हेतु जरूर से जरूर आना। हम सबको तुम्हारा बहुत बेसब्री से इन्तजार है!

हे श्री प्रभु जी जल्दी भेजना!

इन्तजार में—

लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी

स्थाई अध्यक्ष

धर्मसंघ शिक्षा मण्डल

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

श्रावणी
२०४२

श्रीहरिः

अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज के निर्मित मार्ग पर चलने वाले ब्रह्मचारी लक्ष्मण चैतन्यजी के द्वारा लिखित ग्रन्थ "श्री प्रवचन रत्नाकरः" अपने में अद्वितीय है। लेखन का कार्य प्रारम्भ कर श्री स्वामी जी महाराज की परम्परानुसार जो कार्य श्री ब्रह्मचारीजी द्वारा किया गया है; वह बहुत ही प्रसंशनीय और सराहनीय है। श्रीसीतारामचरित की आधारशिला पर प्रणीत यह ग्रन्थ रत्न समाज के हर वर्ग के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा; क्योंकि ग्रन्थकार ने स्वतः कल्याण की भावना से आविर्भूत होकर इस ग्रन्थ का प्रणायन किया है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। ऐसा महनीय कार्य करने वाले ब्रह्मचारी श्री लक्ष्मण चैतन्य जी महाराज के त्याग तपस्या की सराहना करते हुए यह भी कहना चाहते हैं कि सही अर्थों में धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के उत्तराधिकारी भी हैं। यह भी आशा करते हैं कि इसी प्रकार के कार्य आजीवन उसी प्रकार करते रहेंगे जैसे की मेरे पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज ने किया। ऐसा ही कार्य आपके द्वारा किया जाता रहे। इसी शुभकामना के साथ "श्री प्रवचन रत्नाकरः" के लेखक श्री ब्रह्मचारीजी को हृदय से आशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

श्री वेदान्ती स्वामी जी

व्यवस्थापक

श्रीराम कृपेश्वर ट्रस्ट, केदारघाट, वाराणसी

श्रीहरिः

卐

दानवीर



श्रीमान् कान्ति भाई विट्ठल भाई पटेल
(गुलाब छाप वाला)
सिद्धपुर (उ० गुजरात)



श्रीमती इन्दुमती बेन पटेल
पत्नी श्रीमान् कान्ति भाइ पटेल
सिद्धपुर (उ० गुजरात)

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" ऐसा मौलिक ग्रन्थ रत्न संसार का आध्यात्मिक कल्याण करेगा।

श्री गुरु महाराज के चरणारविन्दों में

सादर नमित।

केशव भाई विट्ठल भाई पटेल

कान्ति भाई विट्ठल भाई पटेल

सिद्धपुर - गुजरात

श्रीहरिः

श्रीमती दयालु, परोपकारिणी

श्रीमती इन्दुमति वेन पटेल

पति-श्रीमान् कान्ति भाई पटेल

श्री महाराज श्री मेरे श्री गुरुदेव हैं। उनके श्री चरणों में कोटिशः नमन।

श्रीहरि:

"श्री प्रवचन रत्नाकर:" अब प्रकाशित हो चुका है।
इसके प्रकाशन में थोड़ा-थोड़ा सबका सहयोग मिला है।

अतः महान् सनातन धर्मी-परोपकारी-उदार-परम गुरु भक्त स्वनाम धन्य श्रीमान् सेठ (रा०बा०) श्रीराम दुर्गा प्रसाद सर्राफ, तुमसर-महाराष्ट्र को श्री अनंत शुभाशंशातराम् मंगल कल्याण कामना सहित—

स्वामी श्रीसीतारामाचार्य शास्त्री
उपाध्यक्ष—श्री स्वामी करपात्री आदर्श गोशाला
अध्यक्ष—धर्म संघ पण्डाल हरिद्वार
—सम्पादक

श्रीहरिः

स्वनाम धन्य महाभागा स्वर्गीय

नाथी बा विट्ठलदास पटेल

सिद्धपुर - गुजरात

(गुलाब छाप वाले)

जिनके पुण्य प्रताप से सम्प्रति समस्त परिवार उदार धार्मिक परोपकारी है। दानी है। यशस्वी है।

पं० मोहन भाई जिवा जी दुबे

सिद्धपुर - गुजरात

श्रीहरिः



शुभाशंसा-विश्वनाथ मन्दिर की ओर से

यह जानकर प्रसन्नता है कि हमारे गुरु भ्रातृवर श्री १००८ लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी का श्री प्रवचन रत्नाकरः प्रकाशित होने जा रहा है।

भगवान् श्रीविश्वनाथ एवं माता अन्नपूर्णा से प्रार्थना है कि श्री प्रवचन रत्नाकरः सहृदय भावुक भक्तों के हृदय में दिव्य ज्योति प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ हो।

स्वामी सदानन्द सरस्वती (वेदान्ती स्वामी)
महन्त
श्री नया काशी विश्वनाथ मन्दिर
मीर घाट, (विश्वनाथ घाट)
वाराणसी

श्रावण शुक्ल १० मी
१५ अगस्त १९८५

श्रीहरिः

अखिल भारतीय धर्मसंघ के कार्यवाहक अध्यक्ष की ओर से–

॥ शुभकामना ॥

यह जानकर अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के उत्तराधिकारी श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज का "श्री प्रवचन रत्नाकरः" नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

जिस प्रकार श्री ब्रह्मचारी जी की वाणी प्रभावोत्पादक है, उसी प्रकार उनकी वाणी का मूर्तिमय शब्द विग्रह श्री प्रवचन रत्नाकरः भी जन-जन में धार्मिक, आध्यात्मिक, पारमार्थिक और धर्मसापेक्ष राजनैतिक भावनाओं तथा रामराज्य के आदर्शों को जगाने में पूर्ण सफल हो, श्रीमन्नारायण से मेरी यही शुभ कामना है।

जगद्गुरु रामानुजाचार्य
आचार्य गोपालदत्त शास्त्री
बलराम पीठ
राजेन्द्रनगर, आरा (बिहार)

श्रावण शुक्ल ११ श्री
२६ अगस्त' ८॥

श्रीहरिः

अ० भा० धर्म संघ शिक्षा मण्डल एवं रामराज्य परिषद्

धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के उत्तराधिकारी शिष्य श्री श्री १००८ ब्रह्मचारी श्री लक्ष्मण चैतन्य जी महाराज श्री भगवती भागीरथी की तरह अप्रतिहत गति से प्रवाहित वाणी का रसास्वादन न केवल हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के जनमानस को आकर्षित करता है, अपितु अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र की जनता भी उनकी रसमयी ओज माधुर्य्य प्रसविनी-वाणी को श्रवण पुटों से पानकर मन्त्र मुग्ध होती है।

श्री ब्रह्मचारी जी महाराज सम्पूर्ण भारत में अनेक धर्म प्रचार यात्रायें एवं अनेक विराट् धार्मिक आयोजनों के संचालन में अग्रणी हैं। यह कौन नहीं जानता कि गुजरात में ब्रह्मचारी जी के कोटि चण्डी महायज्ञ के विराट् आयोजन को वहाँ की तत्कालीन सरकार और सरकारी चाटुकारों ने उक्त आयोजन को विफल बनाने में अपनी बहादुरी प्रदर्शित किए हैं।

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के अभाव में उनकी संस्थाओं के संचालन का गुरुतर-दायित्व ब्रह्मचारी जी पर है। उक्त दायित्व का निर्वाह करते हुए भी स्वाध्याय, लेखन, धर्म प्रचार यात्रा, आदि कार्य सुचारु रूप से चला रहे हैं।

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" पुस्तक को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुयी। वस्तुतः यह प्रवचन का रत्नाकर ही है। कथा मधुरिमा, कथा लालित्य, कथा रस, कथा महिमा, कथा माधुरी के साथ ही पृथिव्यादि तत्वों पर सुन्दर विवेचन किया गया है। श्रीराम स्तवराज का सानुवाद वर्णन और श्रीसीता राम के दिव्यस्वरूप माधुर्य एवं रामराज्य का वर्णन संस्कृत एवं हिन्दी के पद्यों से सलंकृत सुन्दर सुललित हृदयाकर्षक शैली में कथारस को प्रवाहित किया गया है। किं वहुना—"किं वा काव्य-रस-स्वादुः किं वा स्वादीयसी सुधा" संस्कृत साहित्य की इस सूक्ति का तात्पर्य बोध "श्री प्रवचन रत्नाकरः" के स्वाध्याय चिन्तन मनन से निश्चित ही होगा।

वासुदेव शास्त्री 'अतुल'
महामन्त्री
अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्

श्रावण शुक्ल १०मी
दिनांक २५ अगस्त १९८५
स्थान—वाराणसी

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" स्वयं में ही एक पूर्ण अन्वेषण परक ग्रन्थ है।

विशेष कर श्रीरामचरितमानस की समयोचित कोटियाँ मनोहर हैं।

लगता है महाराज "श्री" ने उचित उत्तराधिकारी नियुक्त किया है।

पावनपूत श्री रघुपति चरित्र वर्णन होने से ग्रन्थकर्त्ता श्रोता प्रकाशक सब परम धन्य हो गये हैं।

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गौ पद इव भव निधि तरहीं॥

श्रीचरणों में अनंत वंदन के साथ

श्री पं० श्याम नारायण मिश्र (श्रीभगवन जी)

अध्यक्ष : अखिल भारतीय धर्मसंघ मानस मण्डल

श्री रामायनम् (वाराणसी)

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" आज प्रकाशित होकर हाथ में प्राप्त हो गया है। यह महान् हर्ष की बात है।

श्री चरणों में कोटिशः नमन्।

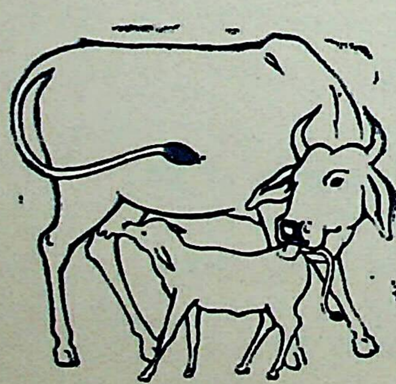
बाबा ताड़क नाथ, एम.ए.,
मन्त्री
श्री स्वामी करपात्री स्मृति कीर्ति
श्री मद्भागवत् मन्दिर
धर्म संघ, वाराणसी

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" को प्रकाशित करके हमारे श्री गुरु महाराज ने समस्त जगत् के जिज्ञासुओं को बहुत अमर रत्न प्रदान किया है।

अतः श्री चरणों में कोटि-कोटि वंदन।

शंकर देव चैतन्य ब्रह्मचारी
प्रधान गोपाध्यक्ष—दासानुदास
श्री स्वामी करपात्री आदर्श गोशाला
धर्म संघ, वाराणसी



श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" को प्रकाशित कराके श्री गुरु महाराज ने नवीन धर्म वक्ताओं को वाणी प्रदान किया है।

अखिल भारतीय धर्मवीर दल

अध्यक्ष—आचार्य बटुक देव चैतन्य ब्रह्मचारी

श्रीहरिः

महाराज श्री ही मेरे ध्येय ज्ञेय आराध्य हैं और पूज्य गुरुदेव अपने में एक हैं। उनके द्वारा रचित यह द्वितीय ग्रन्थ रत्न "श्री प्रवचन रत्नाकरः" अलौकिक अनिर्वचनीय हैं। हमारे लिए तो सर्वस्व एवं अनन्त कल्याणकारी है।

श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन !

इन्दिरा कुमारी भार्गव शास्त्री (भुवनसोम)

उपाध्यक्ष

अ० भा० धर्म संघ महिला मण्डल

वाराणसी

श्रीप्रकाश मिश्र
मन्त्री
श्री धर्म संघ, शिक्षा मण्डल
दुर्गाकुण्ड–वाराणसी

श्रीहरिः

श्री धर्मसंघ शिक्षा मंडल एवं प्राध्यापक की ओर से

साहित्य की अन्यान्य विधाओं में जिस प्रकार की सर्जन शक्ति परिलक्षित होती हैं, उस तुलना में आध्यात्मिकता के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण साहित्य सृजित एवं प्रकाशित किया जा रहा है। श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी द्वारा प्रणीत प्रस्तुत ग्रन्थ "श्री प्रवचन रत्नाकरः" इसी अभाव की पूर्ति का द्वितीय प्रयास है। इस ग्रन्थ रत्न में भगवान राम एवं जनकनन्दिनी श्रीसीतादेवी के लोकोत्तर चरित का अवलम्बन करते हुए आज के सन्तप्त मानव समाज के लिए एक आध्यात्मिक सम्बल प्रदान करने का सफल प्रयास किया गया है। आशा है सुधी जनों में यह ग्रन्थ रत्न समाहित होगा। महाराज जी के श्रीचरणों में अपना यह हार्दिक श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए मुझे ग्रन्थ के प्रकाशन पर अपार हर्ष हो रहा है।

श्रीप्रकाश मिश्र
एम० ए०, एल० एल० एम०
प्रवक्ता आधुनिक विषय
धर्मसंघ महाविद्यालय

श्रीहरिः

श्री स्वामी करपात्री स्मृति कीर्ति श्रीमद्भागवत मन्दिर की ओर से—

धर्म सम्राट् अनन्त श्री विभूषित श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के उत्तराधिकारी शिष्य श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज सम्प्रति भारतवर्ष के गणमान्य विद्वानों में से एक हैं। आप धर्म सम्राट् पूज्यपाद श्रीस्वामी जी महाराज के पदचिन्हों पर चलते हुए सनातन धर्म का प्रचार अपने अद्भुत प्रवचन एवं दिव्य महाभिषेक के द्वारा भारत के कोने-कोने में करने में निरन्तर व्यस्त रहते हैं तथा उसी व्यस्तता में धर्मप्रेमीजनों के लिए पूर्व में 'प्रवचन-पाटल' नामक अद्भुत ग्रन्थ आशीर्वाद स्वरूप दिया; जिससे सनातन धर्म को बहुत बड़ा बल मिला।

पूज्यपाद धर्म सम्राट् श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज ने अपने ब्रह्मलीन होने के पूर्व पूज्य श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज को धर्मसंघ शिक्षा मण्डल-दुर्गाकुण्ड, वाराणसी का उत्तराधिकारी एवं संस्थाओं का स्थायी अध्यक्ष मनोनीत किया था तथा उसका सम्पूर्ण अधिकार एवं दायित्व सौंपा था। उसी अधिकार एवं दायित्व को वहन करते हुए पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ने पूज्यपाद श्रीस्वामी जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने के बाद उनके प्रथम वार्षिकी में ही कीर्ति मन्दिर के निर्माण का योजना प्रस्तुत की थी। तदनन्तर तृतीय वार्षिकी में श्रीस्वामीकरपात्री स्मृति कीर्ति श्रीमद्भागवत मन्दिर का शिलान्यास काशीनरेश डॉ० विभूति नारायण सिंह शर्मदेव के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न कराया। यह मन्दिर विशाल पाँच खण्डों का एवं सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत अट्ठारह हजार श्लोक संगमरमरी दीवालों पर लिखित एवं चित्रित लिए हुए रहेगा। पूरे विश्व में यह मन्दिर अपने ढंग का एकमात्र अनोखा रहेगा। इस मन्दिर की न्यूनतम ऊँचाई वर्तमान में २७५ फीट निर्धारित की गई है। यह मन्दिर ७०००० वर्ग फीट क्षेत्रफल में निर्मित होगा। धर्मसंघ शिक्षामण्डल एवं श्रीस्वामी करपात्री स्मृति कीर्ति श्रीमद्भागवत मन्दिर के सम्पूर्ण रूपरेखा बनाकर निर्माण कराने का कार्य पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ने मुझे सौंपा है। मैं उनके

इस आदेश को आशीर्वाद स्वरूप स्वीकार कर पालन कर रहा हूँ। इसके साथ ही तृतीय वार्षिकी के पूर्व गोशाला, यज्ञशाला, श्रीस्वामी करपात्री राममन्दिर पथ का निर्माण पूज्य श्री ब्रह्मचारी जी ने पूरा करा लिया था। सम्प्रति मुख्यद्वार का निर्माण चल रहा है। अभी निकट भविष्य में प्राचीन गोशाला, यज्ञशाला एवं नवीन धर्मशाला निर्माण एवं जीर्णोद्धार कार्य प्रारम्भ होने वाला है। प्राचीन राममन्दिर के प्रवचनहाल का नवीनतम ढंग से जीर्णोद्धार भी पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी ने पूरा करा लिया है।

इसी धर्म प्रचार के क्रम में संस्था के सभी दायित्वों को वहन करते हुए पूज्यपाद श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज ने धर्मप्रेमी जनता के लिए 'प्रवचन रत्नाकर:' ग्रन्थ के रूप में नवीन अनुपम भेंट आशीर्वादस्वरूप प्रकाशित किया है। आशा है सभी धर्मप्रेमी इससे पूर्ण लाभ उठाकर अपने को धन्य बनावेंगे।

मेरी काशी विश्वनाथ बाबा से नित्य प्रार्थना है कि वे पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी महाराज को यशशाली एवं दीर्घायु बनावें जिससे कि सभी लोगों का कल्याण होता रहे।

शिवानन्द पाठक

(स्थापत्य कला विशेषज्ञ)

धर्मसंघ शिक्षा मण्डल एवं

श्रीस्वामी करपात्री स्मृति कीर्ति

श्रीमद्भागवत मन्दिर

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

कुलपति
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१ ००२

दूरलेख :— 'श्रुतम्'
दूरभाष { कार्यालय - ६४०११
आवास-६२२४२
पत्र संख्या ....
दिनाङ्क

श्रीहरिः

ब्रह्मलीन अनन्त श्री करपात्री जी के प्रधान शिष्य श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी द्वारा प्रणीत प्रबंध "श्री प्रवचन रत्नाकरः" का अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के आत्मगुणों का एवं उनके जीवन चरित के सभी उदात्त पक्षों का जिस आकर्षक शैली में संकलन किया गया है, वह हम सभी के लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद है। प्रत्येक पृष्ठ में श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी का वैदुष्य इसमें प्रतिबिम्बित होता है। आज के इस युग में जब सारी परम्परागत उदात्त मान्यताएँ अपहृत-सी होती जा रही है, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के आत्मगुणों के स्मरण, चिन्तन करने की एवं उनसे प्रेरणा ग्रहण करने की अत्यधिक आवश्यकता है। श्री श्री १००८ श्री लक्ष्मण चैतन्य जी का इस दिशा में यह पावन प्रयास अत्यन्त प्रेरणाप्रद सिद्ध होगा। आशा है, आस्थावान जिज्ञासु एवं विद्वान् इस ग्रन्थ का अभिनन्दन करेंगे।

११-७-८५

(रामकरण शर्मा)
कुलपति

श्रीहरिः

भारतीया वैदिकी संस्कृतिः मानवमात्रस्य कर्मण उपदेष्ट्री मोक्षसाधिका चेति नाविदितं विदुषां तदनुयायिनीनां भारतीयजनतानां च। अस्याः विप्लवे भगवान् गोविन्दोपि जनार्दनायते। अत एवानेकेऽवतारा: सञ्जाता:। अस्या रक्षायै भगवन्तः शङ्कराचार्या अवतीर्णाः भारतस्य चतुर्षु तीर्थेषु चत्वार, पीठाः धर्मरक्षायै अवस्थापिताः। ततः परतन्त्रताकाले म्लेच्छशासकैर्विप्लाविते वैदिकशासने भगवान् एव अनन्त श्री स्वामि हरिहरानन्द सरस्वती (श्री करपात्र स्वामि) रूपेणावतीर्णः। अनेन वेदभाष्याणां, रामचरितस्य, संस्कृतेरङ्गेषु प्रौढ़या भाषया तर्केण पुराणवचनानां समन्वयेन, यज्ञेन आचरणेन प्रचारेण च संस्कृतेः रक्षायै नवीनं कवचं निर्मितं स्वेषु शिष्येषु प्रचारभारं निक्षिप्य स्वधाम प्रतिपन्नम्'।

अधुना तेषां प्रधानशिष्येण व्याकरणाध्ययनकाल एव मयानुभूतोदग्रप्रतिभाप्रकाशेन अधुनाधर्मशास्त्राध्ययनपरेण। प्रवचन पटीयसा, विद्वद्धौरेयेण श्री करपात्रस्वामिमहाराजानां कीर्तेः कृतेश्च संरक्षणसंपोषणसंवर्धनपरेणसमुचितेनोत्तराधिकारिणा श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मणचैतन्य ब्रह्मचारिमहाराजेन व्याकरणाचार्यविद्यावरिध्यादिविरुदलङ्कृतेन प्रवचनपाटलग्रन्थानन्तरजः प्रवचनरत्नाकरः सरलया सुबोधया मनोहारिण्या, हिन्दीभाषया मनोरमो रामचरितवर्णनपरः भारतीयसंस्कृतेः जीवातुभूतः पञ्चशतपृष्ठात्मकः अपूर्वग्रन्थो निर्मितः। यः पाठकानां हस्तगतः अपूर्वां शान्तिं विधास्यतीति मे दृढा विश्वासः।

रामगोविन्दशुक्लाः
अध्यक्षः
धर्मशास्त्रविभागस्य
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालये
वाराणस्याम्

गुरुपूर्णिमा
२०४२ विक्रमान्दः

श्रीहरिः

प्रशस्तिपत्रम्

मनीषिमानसमरालानां भक्तवृन्दालिकुलकलितललितपादपाथोजपांसूनां विद्याविगीतवाक्पतीनां गुणगणनिलयानां नमदनेकराजन्यशिरोमुकुटमणिमण्डित पादपद्मानां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां प्रातःस्मरणीयानामभिनवाद्यशङ्कराचार्याणामनन्तश्रीविभूषितानां स्वामिहरिहरानन्दसरस्वतीकरपात्रमहाराजानां मेधाविना शिष्येणोत्तराधिकारिणा कोविदकुमुदकुलकलाधरेण न्यायव्याकरणादिशास्त्रपरिशीलनप्राप्तपाटवेन प्रवचनपाटवविपाटितविपक्षवर्गेण भाषामाधुरीमुग्धमनीषिमधुपेन सदस्यसमुदायसमुद्गत 'जय, जय' कोटिघोषसम्भावितेनावर्णनीयगुणगणेन वर्णिना श्रीलक्ष्मणचैतन्यमहाराजेन विरचितं 'श्रीप्रवचनरत्नाकराख्यं तद्विदग्धताविख्यापकं व्याख्यानसंग्रहं दर्श-दर्श मोमुदीति मे मनः।

अस्य प्रवचनरत्नाकरस्य' सारस्वतसौरभेण भृशं तृप्ता निर्मत्सरा निर्मलशेमुषीका शास्त्रपारावारपारीणा विपश्चितोऽपि मनस्याकलयन्ति; किमयं वर्णी साक्षाद व्यासः, शुकः, वाग्देवताया अपरोऽवतारो वा।

वस्तुतो रत्नाकर इवास्मिन् 'श्रीप्रवचनरत्नाकरे', वेदेषु शास्त्रेषु चातीव निगूढाः सिद्धान्ता आञ्जस्येन तथा निरूपिताः सन्ति, येन साधारणमतिभिरपि जनैरनायासेनावगन्तुं शक्यन्ते। पुराणप्रवचनप्रसङ्गे सरलमतीनां जनानामापाततो मिथोविरुद्धा लोकविरुद्धाश्च विषयास्तथा समन्विता यत् तं समन्वयं समवलोकं समवलोकं स्वमनसैव स्वां मन्दमतितां विगर्हन्ति पण्डितवर्याः। महाभारतकथावस्तुनिरूपणप्रस्तावे तत्र वर्णितानां विषयाणां रहस्यभेदनेऽपरो लक्ष्मण इव प्रतिभाति श्रीलक्ष्मणचैतन्यब्रह्मचारी।

इमामेवास्य वर्णिनः शास्त्रनैपुणीं विचारचातुरीं व्याख्यानविदग्धताञ्चाकलय्य, 'सनाद्यन्तधात्वथ विमर्शः', इति विषयमधिकृत्य, मन्निर्देशने प्रस्तुतं शोधप्रबन्धं पाण्डित्यपूर्णं परीक्षकद्वारा सम्यक् परीक्ष्य च वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयाधिकारिभिः 'विद्यावारिधिः' (पी-एच० डी०) इति वैदुष्यविख्यापकेनोपाधिना सत्कृतोऽयं श्रीलक्ष्मणचैतन्यब्रह्मचारी।

कालिकाप्रसाद शुक्लः

अध्यक्षचरः

८-७-८५

व्याकरणविभागस्य, वेदवेदाङ्ग संकायस्य च
संपूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये,
वाराणस्याम्

श्रीहरिः

श्रीः प्रशस्तिः

प्रातःस्मरणीयाः विश्ववन्द्याः परमकारुणिकाः लोकहितैषिणः सर्वशास्त्रविचक्षणाः धर्मरक्षार्थं भगवत्स्वरूपेणावतीर्णाः अनन्तश्रीविभूषिताः यतिचक्रचूडामणयः धर्मसम्राजः श्रीस्वामिकरपात्रमहाभागाः ।

तेषां स्वामिपादानां प्रधानशिष्याः उत्तराधिकारिणश्च डॉक्टरपदभाजः श्री श्री १००८ श्रीलक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारिमहोदयाः । एभिः पूज्यचरणैः विद्योभवनविलासशीलैः करपात्रस्वामिसंस्थापितसंस्थानाम् संचालकैः ब्रह्मचारिमहोदयैः अपूर्वोऽयंग्रन्थ, प्रवचनरत्नाकरः विरचितः अस्मिन् अधर्मबाहुल्ये समये धर्म संस्थापनाय सर्वजनहिताय चास्य प्रवचनरत्नाकरस्यात्युपयोगिता वरिवर्त्ति प्रवचनरत्नाकरं धर्मग्रन्थमधीत्य श्रुत्वा च विज्ञाः मोमुदति हर्षश्च वोभवीति स्वनिर्मितप्रवचनरत्नाकरग्रन्थद्वारा पूज्यपादैः ब्रह्मचारिमहोदयैः सनातनधर्मप्रचाराय महान् श्रमःकृतः एतर्थं वयमीश्वरं नुमः स्तुमः पूज्यचरणाः ब्रह्मचारिमहोदया धन्यधन्याः पूज्यपूज्याः महन्महन्तो भवन्तः ब्रह्मचारिमहाभागाः नैरुज्यारोग्यसंवलितेन सुखेन संज्जविनमनुभवन्तः चिरंजीविनो भूयासुः । ब्रह्मचारिविरचितस्यास्य प्रवचनरत्नाकरस्य धर्मग्रन्थस्य उपयोगित्वं सर्वैरनुभूयेत ।

मुक्तिनाथ ओझा
प्रधानाचार्यः
धर्म संघ शिक्षा मण्डल सं० म० विद्यालयस्य
दुर्गाकुण्ड, वाराणसीस्थस्य ।

श्रीहरिः

प्रशस्ति-पत्रम्

अधर्मप्रवाहरोधसेतूनां, धर्मकेतूनां, विद्वन्मानसमोदहेतुवाक्चातुर्ययुक्तानां, श्रुतिशिरःसमुद्भूत-सिद्धान्तसरोवगाहकुशलानां, माद्यन् विपक्षपक्षक्षपणहेतुकर्कशतर्कचातुरीमादधताम्, रामकथासु बाल्मीकेरिव कृष्णकथासु च द्वैपायनमिव संशयोच्छेत्तृपरम्परामविच्छिन्नाम् कुर्वताम्, स्वामिपादानाम्, आबाल्यादेकमनसोपासितसरस्वतीकानाम् श्रीहरिहरानन्द सरस्वतीनाम्, हरिहरयोरिव पारेसहस्र' भक्तजनचेतोविकर्षकविग्रहवताम्, 'भगवच्छंकरमिव सर्वविद्यासम्प्रदायाविच्छेदनियमार्थं धृतविग्रहवताम्, तपः समाधिस्वेष्टदेवतासम्प्रसादादिलब्धविद्यानाम्, अनन्तश्रीविभूषितानां करपात्रस्वामिनाम्, शिष्यैरुत्तराधिकारिभिर्विद्वत्सुमधुरकथकपाटवप्रदर्शनजनितश्रोत्राह्लादकदम्बैः, प्रवचनपाटलसंसूचितारिष्टविनष्टविपक्षवर्गैः, वाक्चातुरीप्रदर्शनजनितश्रोतृहासोल्लासवितानेन दिङ्मण्डलान् धवलीकुर्वद्भिः, हृष्टश्रोतृजनमुखोच्चारितानन्त 'जय' 'जय' घोष सम्भावितैर्वर्णिभिः डॉ० लक्ष्मणचैतन्यमहाराजैः विरचितं श्रीप्रवचनरत्नाकाराख्यं ग्रन्थं, तदीयवैदुष्यप्रदर्शकम् दर्शं-दर्शं समुल्लासमेति मे मनः।

अस्य प्रवचनरत्नाकरस्य विविधरत्नानामिव कथाप्रसंगानाम् अवलोकनेनाकृष्टचेतसो विपश्चितोऽपि तृष्णजो भवन्ति समवलोक्य च 'विविधान् प्रसंगान् व्यासशुकादिपरम्परामद्याऽप्यविरतां मन्वाना परमां मुदमाप्नुवन्तीति किमधिकं वेदनोयमेतद्वैशिष्ट्यविषये। अन्वर्थनामाऽयं प्रवचनरत्नाकरः वक्तुर्गुणैः स्वां शोभां द्विगुणीमिव कुर्वाणो विराजते। अत्र च वर्णनानैपुण्यं संशयोच्छेदप्रकारश्चान्यत्रादृष्टविधम्। षडङ्गेषु वेदेषु, वेदवर्त्मानुयायिषु पुराणेषु, धर्मशास्त्रेतिहासयोश्च निगूढाः सिद्धान्ताः आधुनिकदृष्टान्तैरापामरजनमनोमोदवोधकारकैः सम्यगुपवर्ण्य तथोपनिबद्धा, आपाततः प्रतीयमाना विरोधाश्च तथा परिहृता येन संशयनिवहाः समूलघातं हता भवन्ति।

महाभारतकथावस्तुनिरूपणप्रस्तावे तत्र वर्णितानां विषयाणां रहस्यस्फोरणे च रामानुज लक्ष्मण इव क्रान्तदर्शिनः प्रतिभान्ति डॉ० लक्ष्मणचैतन्यब्रह्मचारिणः। एतस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रचारप्रसारयोः सम्यगवगाहनाय च जनाः सोत्साहाः सन्तः शास्त्ररहस्यान् शुकमुखोद्गीतभागवतमिव पायं-पायं रमां मुदं प्राप्नुयुरिति शिवयोः प्रार्थ्य विरमामि।

नरेन्द्रनाथपाण्डेयः
प्राध्यापको वेदान्तविभागे
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

श्रीहरिः

प्रशस्ति-पत्रम्

(१)

'प्रवचनरत्नाकर' इति सद् ग्रन्थोऽयं प्रकाशितो दिव्यः ।

श्रीलक्ष्मणचैतन्यैर्डाक्टरवर्यैर्विनिर्मितः शुभदः ।

(२)

ते धार्मिकजनताहृदयाऽनन्दं वितन्वन्तः ।

श्रीब्रह्मचारिवर्या विजयन्ते निखिलभूवलये ।

(३)

प्रमाणिकसद्ग्रन्थप्रकृष्टसन्दर्भसद्व्याख्याम् ।

गूढं रहस्यभावं विलोकयन्त्वत्र धीघनाः सर्वे ।

(४)

धार्मिकसम्राजामथ निखिलश्रीमण्डितानां वा ।

श्रीकरपात्रस्वामिप्रवराणामात्मशिष्यास्ते ।

(५)

श्रीब्रह्मचारिलक्ष्मणचैतन्याः स्वैर्यशोघोषैः ।

उन्नमयन्ति समस्तं विमलतरं धर्मसाम्राज्यम् ।

(६)

कलिकालेऽस्मिन् घोरे विध्वस्ताचार्यमर्यादे ।

एतादृशसद्ग्रन्थावरदानो भूतरूपाः स्युः ।

(७)

श्रीब्रह्मचारिवर्याः प्रवचनरत्नाकरं विनिर्माय ।

धार्मिकजनताहृदये नूतनमानन्दमाह्वयन्त्येव ।

(८)

धन्यास्ते मान्यास्ते सद्ग्रन्थस्यास्य कर्तारः ।

लोकोपकारयज्ञप्रवर्तकास्ते कुतो न धन्यतमाः ।

डॉ० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
रीडर साहित्य
संस्कृत विद्या संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

१४-७-८५

श्रीहरिः

॥ श्रीः ॥

अशेषविपश्चिद्वृन्दशिरःसमर्च्यचितचरणरजसां मेखलायितचतुरुदधिभूयतिचक्रचूडामध्यमणीनां धर्मसम्राजां विहितानेकप्रशस्ताध्वरसन्तर्पितविबुधव्रजानां विमानीकृतप्रशासकराजहंसानां ब्रह्मस्वरूपाणां साङ्गवेदादारभ्यासाहित्यपर्यन्तं सूक्ष्मेक्षिकयालोडिततत्त्वोपदर्शितनवीनपथां चेतनमात्रमोदास्पदप्रवचनसुगन्धिसुरभितदिगन्तरालामानां लोकहिताय, संस्कृतेन राष्ट्रभाषया वा विरचितानेकोपयोगिबृहद्ग्रन्थानां संस्कृतसंस्कृतिसनातनधर्माभ्युदयायानेकत्रस्थापितधर्मसंघसंस्थानां किमधिकं वचसाऽगोचरप्रभावाणां प्रातःस्मरणीयानां अनन्तश्रीविभूषितस्वामिश्रीकरपात्र इति विश्रुतयशसां श्रीहरिहरानन्दसरस्वतीपादानामुत्तराधिकारिभिः शिष्यवर्यैरनवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतसमाधिकहृदयैर्बिहितानेकवृहत्तराध्वरैर्द्योतितस्वगुरुगरिमभिर्गोविप्रसंरक्षणसक्षणैः स्वगुरुसंस्थापितकाशीस्थधर्मसंघमध्यध्ययनरतशतशतच्छात्राणां भोजनदानादिनविहितव्यवस्थैरुद्घाटितानेकनैचिकीपालनपरायणगोशालैरेवञ्चानेकागतकार्यभारमुदवहद्भिरप्यतन्द्रचेतोभिः डॉ० श्री श्री लक्ष्मणचैतन्यब्रह्मचारिभिः लिखितोऽयं बृहद्वपुः प्रवचनरत्नाकरनामा ग्रन्थो दृष्टिपथमुपगतो भृशं स्मारयति ब्रह्मलीनं गुरुं जगद्गुरुं स्वामिश्रीकरपात्रचरणम् ।

मन्ये डॉ० ब्रह्मचारिणां कीर्तिस्तम्भोऽयं ग्रन्थो जनानां चेतसि भक्तिभावमापूरयन् धर्माचरणे जनान् प्रेरयन्न केवलं भूतलमेव द्रावयत्यपि तु नवीनब्रह्मद्रवाय ब्रह्मीभूतं गुरूणामादर्शं स्वामिश्रीकरपात्रचरणमपीति मे दृढो विश्वासः ।

विदुषामाश्रवः
डॉ० चन्द्रमौलिद्विवेदी
साहित्याचार्यः, एम०ए०, पी-एच० डी०
प्रवक्ता, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः

श्रीहरिः

शुभाशंसा

योगाभ्यासजनितेन तेजसा क्षपिताखिलकल्मषाणां वेदशास्त्रादिपयोधिपारङ्गतानामनेकशिष्य-परिवारितानां विद्वन्मूर्द्धन्यानां सततशास्त्रपरिशीलनतत्पराणामनन्तश्रीविभूषितानां स्वामि श्रीहरिहरानन्द सरस्वतीकरपात्रमहाराजानां शिष्येणोत्तराधिकारिणा 'विद्यावारिधिः (पी-एच० डी०) इत्युपाधिभूषितेन व्याख्यानविशारदेन व्याकरणादिशास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रमेण विद्याविनयदयादाक्षिण्यादिगुणगणमहितेन शिष्यमण्डलमण्डितेन वेदशास्त्रपरिशीलनपरेण ब्रह्मचारिणा श्रीलक्ष्मणचैतन्यमहाराजेन कृतानां प्रवचनानां सद्रूपं श्रीप्रवचनरत्नाकरनामकं विशिष्टं लोकोपकारकं त्थं परितो विलोक्य प्रसीदति तमम्मेमनः।

वर्णिना श्री लक्ष्मणचैतन्य महाराजेन 'शब्दशास्त्रे' सम्यक् परिश्रम्य स्वप्रतिभोत्कर्षेण सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य 'विद्यावारिधिः' (पी-एच० डी०) इत्युपाधिः समधिगतः। अयं हि ब्रह्मचारी महा-भारते भागवते पुराणादिषु प्रतिपादितानां विषयाणां विवेचनं सरलया सुबोधया च शैल्या विदधत् विदुषामपि मनांसि बलादावर्जयति। किं बहुना, श्री लक्ष्मणचैतन्यमहाराजस्य निखिलमपि जीवनं लोकोपकाराय गोविप्रसाधुशास्त्रसंरक्षणाय प्रतीयते। श्री ब्रह्मचारिणो जीवनस्येदमेव प्रथमं कर्तव्यं यत् स्वगुरूणा अनन्त श्रीविभूषितानां करपात्र स्वामिनां धार्मिक संस्थानां प्राणपणेनापि रक्षणं सदुपयोगश्च स्यात्।

चन्द्रदेवद्विवेदी

सिद्धान्तफलितज्योतिषाचार्यः

ज्योतिषवाचस्पतिः, साहित्याचार्यः

ज्योतिषविभागाध्यक्षः,

प्रथम श्रेणिस्थ संन्यासि संस्कृत महाविद्यालयः

अपारनाथमठः ढुण्ढिराजगली वाराणस्याः।

भोद्गारः

पुण्यश्लोकानां पूज्यपादस्वामिश्रीकरपात्रयतीनां ततच्छास्त्रनिरंन्तरपरिशीलनपरिष्कृतमानसाना काश्यामन्यत्र वा लब्धप्रतिष्ठानां विपश्चितां पुरतः समुपस्थितेन मया साध्वससंमिश्रो महान् हर्षः समनुभूयते। महदानन्दास्पदमिदं यदितः कति वर्षेभ्यः प्राक् संस्थापितेयं दर्शनपरिषन्निरन्तरं स्वकीये कर्मणि प्रवर्तमाना दृश्यते। जगति समुपलभ्यमानेषु सर्वेष्वपि प्राचीनवाङ्मयेषु विपुलतमं विचित्रतमं च संस्कृत वाङ्मयमिति कथने काचिदत्युक्तिर्न स्यात् य एते पुराकृत भारतीयसंस्कृत्याधारशिलान्यासा मन्त्रद्रष्टारो महर्षयः येन वेदाङ्गानां प्रतिष्ठापका आचार्याः ये वायुर्वेदादिदृष्टप्रयोजकशास्त्रप्रणेतारो महापुरुषाः चरकसुश्रुतप्रभृतयः ये चास्तिकदर्शनषट्कस्य नास्तिकदर्शनषट्कस्य च प्रतिष्ठा पका महाचार्याः तदन्वये प्रादुर्भूतास्तन्मतस्यैवाप-पादका उपोद्वलका महाव्याख्याकारा विद्वान्सश्च ते सर्वे साक्षात्परम्परया वा दार्शनिका एवासन् तत्र प्रतिपादितानां तत्वानां गाम्भीर्येण सर्वेषां जनानां भारतीय संस्कृतरुत्कर्षे महत्यादरबुद्धिः प्रादुर्भवतातं सर्वविद्वज्जनप्रत्यक्षमेनत्। अधुना तेषां प्रधान शिष्येण व्याकरण न्यायाध्ययनकाल एव मयानभूता विश्रुतप्रतिभासंवलितेनप्रवचनचातुर्येण सर्वप्लावितेन श्री १००८ डा० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारिमहाराजेन अनेकानेकपदवीं अलङ्कुर्वता समुचितेनोत्तराधिकारिणा श्री ब्रह्मचारि महाभागेन निर्मितोऽयंप्रवचनरत्नाकर-नामा ग्रन्थः रामचरितसम्बधे अपूर्वां प्रवचनशैलीं भावाभिव्यक्तिक्षमतां मनस्तोषं भक्तिं च भगवती दृढ़ी करिष्यतीति मे दृढो विश्वासः। अहमेभिः वाक्प्रसूनैः महाराजानां चरणोयरञ्जलिबन्धं प्रणमामि।

भावत्कः
रविशंकरशुक्ल
व्याकरण शास्त्री
उपाध्यक्षो धर्मवीरदलस्य

श्रीहरिः

श्रीस्वामी करपात्री आदर्श गोशाला की ओर से

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" के प्रकाशन पर—

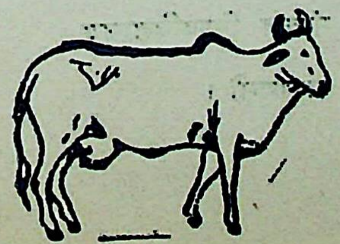
परम पूज्यवर महाराज श्री ने भगवान श्रीसीतारामजी की कथा लिखकर एक ऐसी बहुमूल्य देन दी है जो ईश्वरीय वरदान स्वरूप है। यह एक पूज्य और प्रेरक ग्रन्थ है। जीवन की प्रयोगशाला को सत्य बनाने का अर्थ है आत्म दर्शन की साधना। यह कार्य सिद्ध साधकों द्वारा ही सम्भव है। ऐसे सिद्ध साधक ऋषि परम्परापूत विश्वात्मा में परमात्मा का दर्शन करते हुए सम्पूर्ण सृष्टि के साथ एक रूप हो जाते हैं। वास्तव में सत्यान्वेषण के द्वारा ही मनुष्य सबका हित चिन्तक और मित्र बन जाता है।

इसी क्रम में भगवान का परम पुनीत चरित्र जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए 'प्रवचन रत्नाकरः' के लेखक महाराज श्री ने जो भगीरथ प्रयास किया है, उसके परिणामस्वरूप अत्यन्त सरल, सुबोध भाषा में 'सब जन सुखाय सब जन हिताय' यह ग्रन्थ आपके कर-कमलों में आया है।

विविध शीर्षकों में वर्णित कवि कुल कलाधर कविता कानन केशरी गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की उक्ति "कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई॥' को चरितार्थ करती है। यों तो भगवान के जीवन दर्शन सम्बन्धी विश्व में असंख्य पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं। किन्तु; भगवान के जीवन दर्शन की पद्धति विकसित करने के लिए आवश्यक था कि सामान्य जन भाषा में श्रीसीतारामजी का चरित्र सुलभ हो। 'श्री प्रवचन रत्नाकरः' ग्रन्थ ऐसा ही है और ऐसा ग्रन्थ आज के वातावरण में हृदय परिवर्तन के लिए महौषधि के समान है। इसे रचकर महाउदार मना महाराज श्री ने हिन्दी की महत्वपूर्ण सेवा तो की ही है, साथ ही जनता के लिए एक ऐसी रचना प्रस्तुत कर दिया है कि सबके लिए उपयोगी हो।

सज्जनो! आप लोगों के हाथों में यह 'प्रवचन रत्नाकरः' ग्रंथ है। इसके अध्ययन से रामायण की ग्रन्थियाँ सुलझेंगी ही साथ ही यह ग्रन्थ प्रत्येक घर में विद्यमान होकर भगवदाकारित वृत्ति उत्पन्न करते हुए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

मैं अपने परम पूज्य परमाराध्य महाराज श्री (श्री श्री १००८ श्री डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज) के 'प्रवचनरत्नाकरः' के प्रकाशन पर बार-बार प्रणामाञ्जलि करते हुए लेखक के श्री चरणों में नतमस्तक होता हूँ।



चरण चंचरीक
बाबा ताड़क नाथ, एम०ए०
मन्त्री
श्रीस्वामी करपात्री आदर्श गोशाला
श्रीधर्म संघ शिक्षा मण्डल,
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

श्रीहरिः

॥ श्रीः ॥

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठान के द्वारा शुद्धान्तःकरण, वेदवेदाङ्ग पारङ्गत, अखिल भारतीय धर्मसंघ के संस्थापक अनन्त श्रीविभूषित ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्री स्वामी) के उत्तराधिकारी शिष्य श्रीलक्ष्मणचैतन्य ब्रह्मचारी जी द्वारा विरचित 'प्रवचन रत्नाकरः' के विहंगमावलोकन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थरत्न के अवलोकन करने पर मुझे यह मालूम हो रहा है कि सम्पूर्ण वेद, पुराण, और शास्त्रों का निष्कर्ष इस ग्रन्थ में रख दिया गया है। ऐसी सुबोध एवं सरल भाषा में विषय का स्पष्टीकरण किया गया है जिससे ब्रह्मचारी जी का पूर्ण वैदुष्य एवं उनकी विलक्षण प्रतिभा का भान सहज ही हो जाता है इस ग्रन्थ से साधारण जन भी पूर्ण लाभ उठा सकते हैं।

इस समय दुरूह आकार ग्रन्थों का प्रतिपादन करने वाला, इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने के स्वभाव वाले बहुत कम लोग दृष्टिगत होते हैं। निष्कर्ष यह है कि इस ग्रन्थ के अभ्यास से भारतीय सिद्धान्तों का बोध साधारण व्यक्ति को अनायास ही हो सकता है।

इसके लिए मैं श्रीकरपात्री जी महाराज के उत्तराधिकारी शिष्य एवं धर्म संघ शिक्षा मण्डल के स्थायी अध्यक्ष धर्मवीर डॉ० लक्ष्मणचैतन्य ब्रह्मचारी जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और भूतभावनी भगवान विश्वनाथ से यह प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसे भविष्णु व्यक्ति को दीर्घायु एवं यशस्वी बनावें।

रामसहोदर पाण्डेय
अनुसन्धान अधिकारी
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी।

श्रीहरिः

सर्वतन्त्र स्वतन्त्राणां सन्मार्गप्रवर्तकानां सनातन धर्म मर्यादा विध्वंशकारिणि करालेय्यस्मिन्-कलिकाले वर्णाश्रमधर्म वैदिकमर्यादापरिपालकानां वेदशास्त्रपारङ्गतानां वीतरागाणां गोब्राह्मणं भक्तानां संस्कृतच्छात्राध्यापकानुरागिणां धर्मसम्राजां पूज्यपाद श्री स्वामिकरपात्र चरणानां कृतज्ञसच्छिष्यत्वेन न केवलं तत्संस्थापित संस्थानामपितु विद्यायाःविनयस्य सदाचारस्य विद्वत्तायाः गोब्राह्मणभक्तेः प्रवचन लेखन शक्तेः प्रभावोत्पादकतायाः संस्कृताध्ययनाध्यापन परतायाः विद्वत्प्रियतायाश्चोत्तराधिकारिणां अनंत श्रीमतां डॉ० ब्रह्मचारि लक्ष्मणचैतन्यमहाभागानां "प्रवचनरत्नाकरः" अकारणकरुणकरुणावरुणालयस्य सर्वज्ञसर्वेश्वरसर्वनियन्तृसर्वान्तर्यामिनः आनन्दकन्दकौशल्यादशरथहृदयनन्दनस्य रामभद्रस्य कथासुधा वर्षणेन कलिमलमलिनमस्तिष्कान् ईर्ष्यालोभाहंकारादितृषि तानाप्याय्याह्लादयिष्यतीति मे बलवान् प्रत्ययः।

कृतज्ञतायाश्च नवावतारे,
अस्मिंस्तुसच्छिष्य गुणे न पूर्णे।
आधायतेजः स यतीन्द्रवर्यः,
शिवंगतो ह्यर्पित सर्व भारः॥
तस्मिन् क्रमे लेखनमालिकायां,
पुष्पं द्वितीयं परिगुम्फितं हि।
रामद्विरेफेणविराजमानं,
सीता सुगन्धिप्रतिलोभितेन ॥
रत्नाकरोयंवचनामृतस्य,
विष्णोर्निवासोऽयम्र बल्लभस्य।
रत्नानुरागि जनमज्जनतामवश्यं,
गत्वा भविष्यति सदा हरि तोषणाय॥

सत्यनारायण मिश्रः
व्याकरण प्राध्यापकः
काशीस्थ श्रीदक्षिणा मूर्ति संस्कृत
महाविद्यालयस्य।

श्रीहरिः

प्रशस्ति पत्र

भगवान शंकराचार्यावतार धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर काशी में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि महाराज श्री के बाद कौन ? इस प्रश्न का उत्तर आज "श्री प्रवचन रत्नाकरः" नामक ग्रन्थ के लेखक परम पूज्य ब्रह्मचारी श्री लक्ष्मण चैतन्यजी महाराज के रूप में आ गया। सदियों से यज्ञों की विलुप्त वैदिक परम्परा को भारतवर्ष में यदि महाराज श्री ने पुनर्जीवित किया है तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी कि ब्रह्मचारी जी महाराज ही आज देश में ऐसे एक सन्त हैं जिन्होंने उस परम्परा के अन्तर्गत करोड़ों की लागत से यज्ञ कराके भारतीय संस्कृति की रक्षा की है। हम सभी धर्म परायण जन उनके चिर ऋणी रहेंगें। विश्वनाथ जी महाराज उन्हें इस दिशा में आजीवन प्रेरित करते रहें, यही मेरी शुभ कामना है।

शिव प्रसाद मिश्र

एडवोकेट

हाईकोर्ट, इलाहाबाद

श्रीहरिः

मुद्रक की ओर से

यह मेरा एवं प्रेस का परम सौभाग्य है कि परम पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज द्वारा लिखित "श्री प्रवचन पाटल" एवं "श्री प्रवचन रत्नाकर:" पुस्तकों को छापने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

महाराज 'श्री' से मेरा सम्बन्ध मेरे स्वर्गीय पिता बाबू जगमोहन लाल श्रीवास्तव के जीवनकाल में हुआ था। हर्ष एवं सौभाग्य की बात है कि विगत २५ वर्षों से स्वामी जी महाराज की सेवा करने का सुअवसर मुझे मिलता रहा है।

स्वामी जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तक "श्री प्रवचन रत्नाकर:" के विषय में कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना होगा। इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण वेद, पुराण, रामायण के बहुमूल्य रत्न ही रत्न विद्यमान हैं, यह ग्रन्थ संसार के अनंत प्राणियों को तत्त्वरूपी मणि-माणिक्य से परिपूर्ण करेंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

सेवक

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव (बाल भाई)

जगमोहन प्रिन्टर्स

२९, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

श्रीहरिः

सादर आभार

पूज्य महाराज श्री ने प्रवचन रत्नाकर: ग्रन्थ में भगवान् श्रीराम प्रभु तथा आदिशक्ति भगवती श्रीसीता जी का बड़े ही मार्मिक तथा सरल ढंग से वर्णन किया है। आशा है कि यह ग्रन्थ सर्व साधारण को भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

सेवक—
आचार्य पं० विवेकानन्द मिश्र (प्यासी)
श्रीधर्म संघ शिक्षा मण्डल दुर्गाकुण्ड
वाराणसी—(उ० प्र०)

श्रीहरिः

जिसकी चिरकाल से प्रतीक्षा थी। आज उस "श्री प्रवचन रत्नाकरः" को पूर्ण रूपेण प्रकाशित देख कर हमको हमारे सकुटुम्ब को तथा हमारी इस औद्योगिक नगरी सिरपुर, कागज नगरवासियों को अपार हर्ष प्राप्त हुआ। कुछ कारण ही ऐसे आ गये थे। नहीं तो इसके प्रकाशित करने का गौरव इस नगरी को ही मिलना था। अस्तु प्रभु की जैसी इच्छा। महाराज "श्री" ने इस रत्नाकर में हमारे "सिरपुर कागजनगर" का नाम अमर किया। हम सब कृतज्ञ एवं आभारी हैं।

भवदीय

ओम प्रकाश तिवारी

C/o शर्मा मेडिकल स्टोर्स

सिरपुर, कागज नगर

जिला—आदिलाबाद (आ० प्र०)

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" श्रीराम कथा पर यह अद्भुत ग्रन्थ है।

इसका स्वरूप ही ग्रन्थकर्ता के महान् परिश्रम को उजागर कर रहा है। "श्री महाराज श्री" (श्री स्वामी करपात्री जी महाराज) की असीम कृपा हमारे "श्री" गुरु महाराज पर रही हैं। हम सब धन्य हैं।

॥ हर हर महादेव ॥

श्री गुरु चरणों में विनत।

"विप्र कुल भूषण"

छोटेलाल पाण्डेय
गोपालपुर, वाराणसी

श्रीहरिः

यह "श्री प्रवचन रत्नाकरः" संसार के अनंत प्राणियों को आत्म तत्त्वरूपी मणि माणिक से परिपूर्ण करेगा।

महाराज श्री के चरण कमलों में दास।

चमनलाल जी धींगरा
श्रीमती राजरानी धींगरा
जमुना नगर, हरियाणा

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकरः" ऐसा सरल सुबोध रसयुक्त प्रामाणिक आख्यानों से भरपूर ग्रन्थ रत्न सबका मङ्गल करेगा।

॥ हर हर महादेव ॥

श्री चरण रेणु किंकर !
इन्द्रचन्द्र चाननमल खारियावाला
श्री गंगानगर, राजस्थान

卐

श्रीहरिः

"श्री प्रवचन रत्नाकर:" के प्रकाशन से हमें महान् प्रसन्नता हुई। क्योंकि श्री गुरुमहाराज जब सावन में बैतूल पधारे थे तब रात दिन एक करके यह ग्रन्थ रचा जा रहा था। वैसे "श्री प्रवचन पाटल" की भांति इसका भी प्रकाशन यहीं की धरणी की प्रेरणा से होना था। परन्तु उस समय जल्दी में ही नहीं हो सका था। अब यह ग्रन्थ हाथ में आने से इसका गौरव समझ में आया है। अस्तु अब कोई तीसरा ग्रन्थ आयेगा तो बैतूल से ही छपेगा।

सेवक

सुभाष अहूजा

पू. पू. सांसद

बैतूल (म० प्र०)

॥ प्रशस्ति पत्रम् ॥

(१)

बिना प्रमाणपत्रेण प्रतिष्ठा नैव जायते ।
विशेषतोऽधुनाकाले तस्मादावश्यकं हि तत् ॥

(२)

विकिरत्येव लोकेषु प्रतिभा सर्वतोमुखी ।
महर्घरत्नकल्याणमञ्जूषा संस्फुरन्महः ॥

(३)

अनुद्घाटितसर्वस्वं सौन्दर्यं न प्रकाशते ।
अनावृतं रसाभासं भजते दुर्दुरूढताम् ॥

(४)

सहकारितया तस्य लावण्यं सर्वविश्रुतम् ।
स्वाध्यायस्य प्रवचनम् वेदेषु बहुधा श्रुतम् ॥

(५)

प्रत्नरत्नप्रवचनरत्नाकरनिबन्धनम् ।
विद्योततां सदा लोके कृतिर्लक्ष्मणवर्णिनः ॥

(६)

उत्तीर्याचार्यपदवीम् पी एच डी यो गृहीतवान् ।
एम् ए परीक्षामक्राम्यत् स्थिरःसंस्कृत वाङ्मये ॥

(७)

संगीतशास्त्रमालोड्य महत्सागरसन्निभम् ।
निष्कृष्य तत्सारतमम् राध्नोत्येव सरस्वतीम् ॥

(८)

तस्य लक्ष्मणचैतन्य कृतिनः सर्वतोरसा ।
रत्नाकरसमाख्याना राजतामतुलाकृतिः ॥

मार्कण्डेयस्य

श्रीहरिः

आज "श्री प्रवचन रत्नाकरः" को प्रकाशित देखकर मन अपार हर्ष सागर में निमग्न हो गया है। कारण यह ग्रन्थ हमारे घर के इसी कमरे में लिखा गया है।

महाराज श्री जब सोहागपुर पधारे थे। तब प्रवचन के बाद रात में लिखते थे। हमारा तो सम्पूर्ण परिवार ही महाराज श्री का शिष्य है और इस ग्रन्थ रत्न में यह याद-गारी भी आ गई। इसलिए महान् हर्ष सपरिवार को हो रहा है।

पाद पद्मों में नमन् !

प्रोफेसर आर० एन० खण्डेलवाल

डिग्री कालेज, सोहागपुर-होशंगाबाद (म०प्र०)

श्रीहरि:

यह महान् ग्रन्थ "श्री प्रवचन रत्नाकरः" का प्रारम्भ स्थल और दिन समय सब सेमरी हरचन्द (होशंगाबाद) में ही हुआ था। परम सौभाग्य है कि अब सम्पूर्ण सजधज के साथ प्रकाशमान ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो गया है।

इसके लिए हम और हमारा नगर दोनों भाग्यमान हैं। हमारे नगर का नाम महाराज श्री ने अपने ग्रन्थ में उजागर किया। हम सब सभी नगरवासी आपके प्रति आभारी हैं।

श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम!

भवदीय:

हर गोविन्द अग्रवाल

ग्रेन मर्चेन्ट एण्ड कमीशन एजेन्ट

एवम् समस्त सेमरी हरचन्द नगरवासी।

श्रीहरिः

श्री रघुनाथ जी महाराज के पवित्र गुण गणों का वर्णन तो महाराज श्री के मुखारविन्द से सुनने का अवसर तो हमें प्राप्त होता रहता है। किन्तु इस सारगर्भित ओजपूर्ण प्रवचन को लिपि-बद्ध करके महाराज श्री ने हमें एक ऐसी विरासत प्रदान की है जिसका रसास्वादन हमारी वंश परम्परा के लोग भी करके अपना ज्ञान सम्वर्धन तो करेंगे ही इसके साथ ही साथ आध्यात्म की सनातन परम्परा से भी जुड़े रहेंगे। अस्तु इस ग्रन्थ 'प्रवचन रत्नाकरः' के प्रकाशन पर मैं अपने आराध्य श्रीसद्गुरुदेव भगवान के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए श्रीगुरु चरणारविन्दो का अर्चन वन्दन करता हूँ।

सेवक

बाबू शिवाधार सिंह

सासाराम, रोहतास (बिहार)

श्रीहरिः

जीवन की जटिल समस्याओं को निर्मूल कर देने की इच्छा बहुत दिनों से चली आ रही थी। किन्तु उसकी उचित औषधि के अभाव में मन सदा विकल विश्रान्त रहा करता था। इसी बीच मेरे मन में यह बात उठी कि महाराज श्री जो प्रवचन हम लोगों को सुनाते हैं। अगर वह बार-बार देखने पढ़ने को मिले तो कुछ कठिनाई दूर हो सकती है।

अन्तर्यामी मेरे पूज्य गुरुदेव ने मेरी उस मनोकामना को मूर्तरूप प्रदान कर "प्रवचन रत्नाकरः" नामक ग्रन्थ विरचित कर बड़ा ही उपकार किया। इस कृपापूर्ण कार्य के लिए हम लोग सदा आपके प्रति कृतज्ञ हैं। ग्रन्थ रचना का कार्य अनवरत चलता रहे ऐसी शुभकामना भगवान विश्वनाथ से करते हुए हे गुरुदेव! आपका यह अकिंचन सेवक नतमस्तक होता है।

बलवन्त भाई डोसी
अफ्रीकन ट्रेडर्स बम्बई
७५ खान बाजार, बम्बई

श्रीहरिः

बड़े सौभाग्य का विषय है कि जगदाराध्या जगत जननी श्रीसीता जी और परम पिता परमेश्वर भगवान श्रीराम की जो कथा, श्रीगुरु मुखारविन्द से श्रवण कर कर्ण तृप्त होकर एक नया जीवन प्रदान करते थे। वहीं कथामृत 'प्रवचन रत्नाकरः' ग्रन्थ के रूप में आज हमारे हाथों का अलंकरण बन गया है। यह ग्रन्थ रत्न अब हम सभी शिष्य भक्तों को चिरकाल तक स्थाई आनन्द प्रदान करते हुए इह लोक और परलोक में सुख समृद्धि प्रदान करेगा। महाराज श्री के शिष्य भक्तों और प्रत्येक धर्म परायण व्यक्तियों को ग्रन्थ रत्न की उपादेयता को देखते हुए त्रिविध ताप हारी, सर्व कल्याणकारी इस प्रेरक पूज्य ग्रन्थ को घर में रखने की शुभ सलाह दिए बिना नहीं रह सकता। ग्रन्थ के प्रकाशन पर मुझे इतनी अधिक प्रसन्नता हो रही है। 'जिसका वर्णन करने में मैं अपने को अक्षम पा रहा हूँ। फिर गुरुदेव की प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रकाश्यमान ग्रन्थ 'प्रवचन रत्नाकरः' का हृदय से स्वागत करता हूँ।

ओम प्रकाश खण्डेलवाल
अपर बाजार, राँची, बिहार

श्रीहरिः

ज्ञान गंगा में स्नान करने से प्रत्येक मानव की मुक्ति हो जाती है। इसमें अवगाहित करने के दो साधन प्रमुख रूप से है। पहला तो यह है कि विद्वान महापुरुषों द्वारा उनकी वाणी, श्रवण करके, दूसरा परम पवित्र विचारों को पढ़कर के। किन्तु पढ़ने के लिए यह आवश्यक होता है कि उस विचार को पुस्तकाकार रूप में विचारक लिखे। ऐसा जो विचारक होता है वह समाज के कल्याण को ध्यान में रखकर करता है। इसी कल्याण की भावना से द्रवित होकर परम कारुणिक मेरे सद्गुरु देव ने अपने प्रथम प्रयास में 'प्रवचन पाटल' नामक ग्रन्थ की रचना की। जिसके प्रकाशन का स्वर्णिम अवसर मुझे प्राप्त हुआ। उसके बाद द्वितीय प्रयास भी चलता रहा, जिसकी रूप रेखा मेरे नगर में ही तैयार की जा रही थी। वही द्वितीय प्रयास आज 'प्रवचन रत्नाकरः' नाम के रूप में आज हमारे सामने है। इस महा ग्रन्थ के प्रकाशक 'श्रीकेशव भाई विट्ठल भाई पटेल' को हार्दिक बधाई देते हुए अपने पूज्यवर गुरुदेव की भी असीम कृपादृष्टि एवं शुभाशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

चरण रेणु उपासक

रघुवर दयाल उदय राम अग्रवाल

बैतूलगंज, बैतूल (म० प्र०)

श्रीहरिः

हे पूज्य गुरुदेव भगवान आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का आलोक आज हम लोगों को आपकी कृति "प्रवचन रत्नाकर:" से प्राप्त हो रहा है। यह चिरस्थाई कार्य आपने हम लोगों के कल्याण के लिए किया। इसके लिए आपका यह लघु सेवक सदा कृतज्ञ रहेगा।

हीरा भाई, हरी भाई पटेल
श्रीलक्ष्मी सा मिल्स
बैतूल (म०प्र०)

श्रीहरिः

सतत् प्रयत्नशील अक्षम्य उत्साही परमाराध्य हमारे पूज्य गुरुदेव की कृति 'प्रवचन रत्नाकरः' के प्रकाशन के शुभ पर्व पर हम सपरिवार हार्दिक उत्साह के साथ आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और समस्त परिवार सहित समर्पित भाव से आपके पादपद्मों में नतमस्तक होता हूँ ।

आज्ञा शिरोधार्य

बाबू लाल बघेल

सिवनी रोडवेज स्टेशन

सिवनी (म० प्र०)

श्रीमद्रामकथासुधारसमयो

रत्नाकरो राजताम्

निरन्तरभक्तभृङ्गावलिमञ्जुजयगुञ्जनाभिनन्दितपादाम्बुजपरागाणां, परमवीतरागाणां, निगमागममर्मोन्मीलनपेशलानां, विजितविबुधवृन्दवन्दितवाचस्पतिव्याख्यानकौशलानां, चतुर्दशविद्यानिधानानां-प्रतिपलसदाचारसञ्चारप्रचारैकतानानां, धन्यधन्यानां मनीषिमूर्धन्यानाम्, अनन्त श्रीविभूषितप्रातः स्मरणीय-ब्रह्मनिलीनसनातनधर्मचक्रवर्त्तिरुद्रावतारस्वामिकरपात्रिमहात्मनामुत्तराधिकारिभिः प्रमुखान्तेवासिभिर्निश्शेष-शास्त्रमर्मज्ञैः, अप्रतिमौदार्यपुरस्सरसम्पादितानेकमहायागविविधदानविद्याव्रतिपोषणगोसंरक्षणादिसत्कार्या-र्जितचारुकीर्तिभिर्धर्ममूर्तिभिः, अखिलभारतीयधर्मसङ्घाध्यक्षपदप्रतिष्ठामण्डितैः, १००८ श्रीसमन्वितडॉक्टर-लक्ष्मणचैतन्यब्रह्मचारिभिर्विरचितं शाश्वतधर्मान्तस्तत्त्वसंवलितं प्रकामप्रशस्यं, सुचिरयशस्यं रामकथासुधा-रसराशिरञ्जितं प्रवचनरत्नाकरं वीक्ष्य मोमुद्यमानमानसोऽयं जनो मालिनीत्रयमुपहरति ।

बुधजननमनीयो माननीयो मनस्वी,
श्रुतिपथपथिकौघामोददानप्रवीणम् ।
प्रवचनपटलानां पाटलं सृष्टवान् यः,
स जयति वसुमत्यां लक्ष्मणः कोऽपि वर्णी ॥

अथ विमलमतीनां श्रेयसे भक्तिभाजां,
शुभचरितनुतश्रीलक्ष्मणाचार्यवर्यैः ।
व्यरचि सुरुचिवृन्दैर्वन्दनीयो निकामं,
प्रवचनरचनाया रम्यरत्नाकरोऽयम् ॥

कलिकलुषकुलानां मूलमुन्मीलयन्ती,
निगमनिहिततत्त्वं भावुकान् बोधयन्ती ।
हरिचरणनिलीनान् सन्ततं नन्दयन्ती,
दिशि-दिशि विकसन्ती भातु रत्नाकराभा ॥

विदामाश्रवः

आचार्य कामताप्रसाद त्रिपाठी
(पियूषः)
व्याख्याता,
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालयः, खैरागढम् ।

श्रीहरिः

श्री प्रभु कृपा से ही ऐसा खोज पूर्ण अद्भुत प्रसाद प्रमाणयुक्त ग्रन्थ रत्न "श्री प्रवचन रत्नाकरः" महाराज श्री के द्वारा विश्वमंगल हेतु अवतरित हुआ है ।

अतः मैं अपने परमाराध्य विश्ववंद्य श्रीगुरु जी महाराज के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ । जिनके द्वारा विश्वमंगल कामना से आविर्भूत यह ग्रन्थ रत्न इतने अल्प समय में इतनी सरल, स्पष्ट, समान्य जनग्राही भाषा में लिख दिया गया । उन परम कृपालु दया निधान अपने सर्वगुण समलंकृत गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में सादर नतमस्तक होता हूँ ।

श्री चरण रेणु किंकरः

शिव कुमार शुक्ल, (एम. ए. द्वय)

प्रवक्ता

राजकीय इन्टर कालेज, गोन्डा

SEAL

Department of Library and Information Science
Bhagvandas Central Library
Kashi Vidyapith

VARANASI—221002.

Ref : Cent. Lib. 2/85 Date 25-8-198?

Dr. B. N. Misra,

M.A., D.L.Sc., Ph. D. (Tuebingen)

Head of the Department of Library

and Information Science,

Kashi Vidyapith,

Varanasi.

(OPINION)

I had the privilegc of going through the pages of the work entitled "The Pravachana Ratnakara" by Sri Sri 1008 Dr. Laksamana Chaitanya Brahmachari Ji Maharaja, a closest desciple and the successor of Late His Divine Swami Karapatri Ji Maharaja of Dharmasangha Siksamandala, Durgakund, Varanasi.

Prior to, I have had the chances of personally attending to his eloquent discourses and discussions on spirituality. religion and morality etc. He is not only, as one should say, a master orator and scholar but a **sadhaka** par excellènce.

The Pravachan Ratnakara, as it is obvious, is an epitome of his discourses and discussions given to the public from time to time in course of his lecture tours in different parts of the country, and is centred around the Vaisnavaite theme on the life and deed of the Lord Rama and the goddess Janaki.

To provide access to his spiritual discourses and discussions for the common masses through an alternate medium too, was long contempleted by some of his enthusiastic and fervent followers. As such, the work is now being published at a very moderate cost to enable the readers to have it in material and matter alike so easily.

Spiritual and moral guidance is our present day vital need with which the work is saturated. In an imbalanced human environment, as it presently stands, the work, I am confident, will undoubtedly earn the readers accord and acclaim in finding ample spiritual consolation in it, as needed.

The work, in its present form, would be confined only to readers in Hindi regions, needs translations in other languages to encompass other sections of the readers too within its orbit.

The work is indeed a most welcome and invaluable contribution to the cause of propogation and establishment of spiritual and material hormony lacking in human society of the age.

B. N. Misra

श्रीहरिः

प्रणामांजलि

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री श्री १००८ डॉ० लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज—अध्यक्ष, धर्मसंघ शिक्षामण्डल। इस समय भारतवर्ष के चोटी के विद्वानों में अग्रगणीय हैं। आपने धर्म प्रेमीजनों के लिए 'प्रवचन रत्नाकरः' रूपी अपूर्व, अद्भुत ग्रन्थ प्रदान किया है। हम सभी को इस रत्नाकर (अमृत समुद्र) में पूरा-पूरा डूबकर आनन्द लेना है। पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी ने

'विश्व का कल्याण हो'

नारे को बुलन्द करते हुए सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों का इस ग्रन्थ के द्वारा एक अद्भुत प्रभु की सत्ता में प्रवेश कराने का आवाहन किया है। तदर्थ हम सभी उनके ऋणी हैं।

मेरी आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द प्रभु श्रीराम से प्रार्थना है कि वे पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी जी महाराज को यशस्वी एवं दीर्घायु बनावें जिससे हम सभी को मार्गदर्शन एवं सनातन धर्म को प्रबल बल मिले।

राम नारायण मिश्र

दिनांक २७ अगस्त १९८१

एम० कॉम० शोध छात्र

मानस के अनोखे वक्ता—रामायनम्

वाराणसी

श्रीहरिः

ग्रन्थ लेखन में सहायक ग्रन्थों के प्रति आभार

ग्रन्थ लेखन में जिन महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक पौराणिक महाकाव्यों तथा आधुनिक काल में लिखे गए महापुरुषों के ग्रन्थों का सहारा लिया गया है उसे भुलाने की धृष्टता मुझ जैसे कृतज्ञ वृत्ति के द्वारा कैसे सम्भव हो सकती है। इनका क्रमानुसार संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१. वाल्मीकि रामायण आदि से लेकर अन्त तक आधारशिला के रूप में महर्षि वाल्मीकि प्रणीत वाल्मीकि रामायण का योगदान सबसे अधिक रहा है।

२. महाभारत—विश्व का अद्वितीय ग्रन्थ महाभारत से ही इस "प्रवचन रत्नाकरः" ग्रन्थ को रत्न प्राप्त हुए।

३. आध्यात्म रामायण-चरित विस्तार में यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ।

४. रामायण मीमांसा श्रीसीता राम जी महाराज जी का चरित किन-किन ग्रन्थों में प्राप्त हो सकेगा इसके अन्वेषण में हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा प्रणीत ग्रन्थ रामायण मीमांसा का योगदान सबसे अग्रणी एवं जीवनदायी रहा है।

५. भक्ति सुधा भक्ति परक ग्रन्थ लिखने की शैली एवं शिक्षा हमें पूज्य महाराज श्री के इसी ग्रन्थ से प्राप्त हुए।

इसके अलावा अपने भावों को प्रमाणों द्वारा सम्पुष्ट करने एवं चरित लेखन में विस्तार हेतु जो अन्य ग्रन्थ संजीवनी शक्ति प्रदान कर हमारे उत्साह को संवर्धित किया है, वे इस प्रकार हैं।

६. श्री आनन्द रामायण।
७. श्री योगवाशिष्ठ।
८. मूल रामायण।
९. श्रीमद्भागवत पुराण।
१०. श्री ज्ञानेश्वरी गीता।
११. श्रीरामचरितमानस।
१२. कल्याण के विशेषांक।
१३. कृतवास रामायण।
१४. श्री मैथिली रामायण।
१५. श्री शिव पुराण।
१६. श्री आलवन्दार स्तोत्र।

अनुक्रमणिका

—०—

॥ मंगलाचरण ॥

॥ श्रीहरिः ॥

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहोनालदण्डः ।
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।
ज्योतिश्चक्राक्षिदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः ।
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥१॥

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिः ।
तरुणतिमिरनीलव्यालयज्ञोपवीती ।
क्रतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतु ।
जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥२॥

युष्माकं काचिदन्या जगदुपरिसमुद्भूतलावण्यवन्या ।
धन्या शैलेन्द्रकन्या त्रिभुवनजननी विश्वमान्या वदान्या ॥
निश्शंकं शङ्कराङ्के तडिदिव लसिता प्रोल्लसन्ती हसन्ती ।
रक्षादक्षाविपक्षावलिविलयकरी शाङ्करी शङ्करोतु ॥३॥

जयति रघुवंशतिलकः कौशल्याहृदयनन्दनो रामः ।
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥४॥

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥५॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥६॥

(२)

नारायणसमारम्भां शङ्कराचार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥७॥
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥८॥
नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय ।
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीमद्रामचन्द्राय ॥

धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।

प्राणियों में सद्भावना हो ! विश्व का कल्याण हो ॥

गौ माता की जय हो । गौ हत्या बन्द हो ।

धर्म सम्राट् श्री गुरु महाराज श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की जय जयकार हो ।

दोनों हाथ उठाकर बोलो ?
हर हर महादेव ।

श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीसियावर रामचन्द्र महाराज की जय ॥

॥ श्री हरिः ॥

कथा मधुरिमा

सज्जनों !

यस्यामलं नृपसदस्सुयशोधुनापि, गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तन्नाकपाल-वसुपाल-किरीटजुष्ट-पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥

अपनी वाणी लेखनी तथा इस वातावरण को एवं उपस्थित आप सब सज्जनों के कानों को परम पवित्र तथा महान् कल्याण को प्राप्त श्रीरघुनाथ जी महाराज के मङ्गलमय चरित्र से यह प्रवचन प्रारम्भ करूँगा। क्योंकि, स्वयं श्रीरामचरितमानस के अद्वितीय वक्ता एवं महान् दार्शनिक परम भक्तवर श्री तुलसीदास गोस्वामी जी महाराज ने अपने लोक-कल्याणकारी श्रीरामचरितमानस में उसकी रचना का हेतु बताया है।

निज गिरा पावनि करन कारन, राम जस तुलसी कह्यो ।
रघुबीर चरित अपार बारिधि, पारु कवि कौनें लह्यो ॥
उपबीत ब्याह उछाह मंगल, सुनि जे सादर गावहीं ।
वैदेहि राम प्रसाद ते, जन सर्वदा सुखु पावहीं ॥

क्योंकि; इस वाणी के भूषण तो श्रीराम ही हैं। वे ही जब स्वयंसेवक पर अत्यन्त अनुग्रह करते हैं तो उसकी वाणी मुखरित होती है और अजस्र वाहिनी गङ्गा की भाँति सतत्, प्रवहमान कल्याणकारिणी हो जाती है।

चौ०—''जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी ॥''

अपना जन जानकर निकट दास जानकर वे श्री प्रभु पुरुषोत्तम अनुग्रह रूप वाणी अमर कर देते हैं। क्योंकि, उनका परम विराट् संयुक्त रूप भी वाणी और अर्थ की भाँति नित्य सनातन है। यथा—

''गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दउँ सीता राम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न।''

शब्द और अर्थ की भाँति श्री आनन्द कन्द सच्चिदानन्द निरंजन परम प्रभु श्री सीताराम ही भक्तों के एक मात्र ज्ञेय-ध्येय सर्वस्व हैं। उन्हीं की प्रदत्त कृपा ही जब अन्तःकरण में आती है, तभी वाणी का बोध होता है और वाणी कृतार्थ कृतकृत्य एवं भूषित होती हैं। यथा—

जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीभ समाना ।।

श्रीराम ही निरंजन निराकार पूर्णतम पुरुषोत्तम परम विराट् अनिर्वचनीय अलौकिक परब्रह्म हैं। वे ही अणोरणीयान् महतो महीयान् हैं। वे ही सबके परमप्रिय अन्तरात्मा हैं। वे ही जड़ चेतन के भी चेतन हैं।

दोहा—जो चेतन कँह जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य ।।

वे परम धन्य शुभ सुयश कल्याणकामी—बड़भागी प्राणी ही श्रीराम से प्रीति कर पाते हैं। साधारण गृहस्थ नहीं। साधारण अज्ञ प्राणी तो सोच-विचार भी नहीं सकता है। सबसे प्रथम जिस पर जब श्रीरामभद्र की कृपा होती है, उनको तब ही कोई जान सकता है। यथा—

चौ०—जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी ।।

जभी आनन्द कन्द शुद्ध-बुद्ध सच्चिदानन्द कौशल्या यशवर्धन दशरथनंदन भक्तभयहारी अवध-बिहारी साकेतवासी रामचन्द्र प्रभु श्री रामभद्र जी की पूर्ण कृपा हो, तभी उनको कोई जान सकता है; अन्यथा नहीं।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई ।।
तुम्हरी कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन। जानहिं भगति भगत उर चन्दन ।।

जिस पर कृपा करते हैं वे ही उनको जानते हैं तथा आप सब सज्जन श्रोताओं को जैसे उनकी कथा सुनने की चेष्टा उत्पन्न होती है। फिर कथा में रस उपजता है। वास्तव में, मन में तन में रोम कूप कूपों में बाहर भीतर जल, थल, आकाश, पवन पानी धरणी दिग्-दिगन्त में समस्त पारावार में राम ही रम रहे हैं। श्रीराम के बिना किसी को भी गति मति मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। अतः यथाः—

श्रीरामः शरणं, समस्त जगतां, रामं बिना का गती—
रामेण प्रति हन्यते कलिमलं, रामाय कार्यं नमः ।।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो, रामस्य सर्वं वशे।
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे, राम ? त्वमेवाश्रयः ।।

सारा दृष्ट अदृष्ट समस्त ब्रह्माण्ड श्रीराम पर ही आश्रित है। श्रीराम ही आदि ब्रह्म हैं। तथा शक्ति स्वरूपा श्रीभगवती जनकनन्दिनी आदि—सिद्धि, शान्तस्वरूपा ही चिद्ब्रह्म की—कार्यरूपा परम शक्ति है। श्रीराम ही ब्रह्मा विष्णु, महेश के क्रिया कलाप जन्म-मृत्यु पालन-पोषण-संहार के ही शक्तिदाता तथा प्रेरणा के अजस्र स्रोत हैं।

यथा—ब्रह्मा विष्णु महेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः।
नमामि देवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ॥

जिनके एक अंश मात्र से ये सब लोक साधक हुए हैं, वे ही चिद्रूप परम-विशुद्ध शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूप अखण्ड ब्रह्म ही श्री सीताराम हैं।

चौ०—राम सच्चिदानन्द दिनेसा, नहिं तँह मोह निसा लवलेसा।

वहाँ मोह, ममता, दीनता, परतन्त्रता परवशता नादान प्राणी को ही दिखाई देती है।

दोहा—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ममता ग्रसे पिसाच।
पाखण्डी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न साँच ॥

पाखण्डी, झूठ-साँच से भी अतिरिक्त साधारण समझ भी जब नहीं होती, तब उन कर्तुम-कर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ परम पिता परमात्मा को समस्त साधारण जनगण कैसे जान सकते हैं? उनके जानने-सुनने समझने की प्रेरणा भी गुरु एवं प्रभु कृपा से ही सम्भव है। तभी आत्मारूप प्रभु को समझ होती है। क्योंकि मृत्युलोक में मानवमात्र को आदर्श मानव बनाने के निमित्त ही उत्तमोत्तम शिक्षा देने हेतु उनका मंगलमय अवतार होता है। अपितु केवल, रावणादि राक्षसों के बध के लिए परमात्मा मनुष्य रूप में सदा सर्वदा युग-युग में अवतार लेते हैं ऐसी बात नहीं, जानकार ज्ञानवान् गुरुभक्तों को आदर्श मार्ग दर्शनि, कल्याण निःश्रेयस तथा अभ्युदय कराने आते हैं। तद्यथा श्रीमद्भागवत महापुराण का वचन।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः। आदि-आदि।

समस्त आदर्श मूर्तरूप तथा समस्त धर्मरूप है। यथा—रामोविग्रहवान् धर्मः। धर्म कर्म उपासना का क्या स्वरूप हो सकता है? यह श्रीराम का मंगलमय चरित्र, उदात्तस्वरूप, उनका कुशल मंगल सम्पूर्ण जीवन वाङ्मय ही वही स्वरूप है। श्रीराम ही निर्गुण, सगुण आदि मध्य अन्त जन्म-मृत्यु पालन के शक्ति पुंज हैं।

यथा—सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य स भूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तदा स्रष्टुं, शक्तो रामो महायशाः ॥

अर्थात् सब लोकों के सब प्राणी चराचर सहित नष्ट करके पुनः उनको नूतन निर्माण करने में श्रीराम ही समर्थ हैं। वे श्रीराम ही वेदान्त प्रतिपाद्य खँ ब्रह्म हैं। यथा वेदान्त दर्शन द्वितीय सूत्र में कहा गया है—जन्माऽद्यस्य यतः अर्थात् उत्पत्ति स्थिति प्रलय जिसमें, जिससे, जहाँ—पर, वह चिद्घन शक्ति परब्रह्म ही श्रीराम हैं। सम्पूर्ण प्रमाण परब्रह्म होने के कारण श्रीराम प्रभु के समान तीनों लोकों में कोई भी नहीं है। वे ही अजर-अमर अखण्ड निरञ्जन निराकार पूर्ण ब्रह्म हैं।

यथा—ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा, रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा, स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥

अर्थात् स्वयं चतुरानन स्वयंभूव-इन्द्र तथा त्रिनेत्रधारी त्रिपुरान्तक शिव, अथवा बज्रधर-इन्द्र-सुरनायक भी युद्ध-में श्रीराम के सामने कोई ठहरने में समर्थ नहीं हैं। सर्वज्ञ सर्व समर्थ सर्वाधार सर्व प्राणी पालक श्रीराम ही हैं। इसी धरणी का भार उतारने तथा धर्म की पुनर्मङ्गलव्यवस्था करने का जो पूर्ण दायित्व प्रभु पर है तथा सन्तजनों की रक्षा तथा दुष्टों की दुष्टता का अन्त करने के लिए जा स्वयं गदाधर भगवान् अवतार लेते हैं वे ही लक्ष्मीपति गरुड़ागामी सुपर्णध्वज परमात्मा श्रीराम ही हैं।

यथा—व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः,
अनादि मध्य निधनो महतः परमो महान्।
तमसः परमोधाता शंख चक्र गदाधरः,
श्री वत्स वक्षा नित्य श्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ॥
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।

अर्थात् परमात्मा ये महायोगी सनातन अनादि मध्य निधन शंख चक्र गदाधर नित्य श्री वत्स लक्षण शोभा सम्पन्न ही श्रीविष्णु हैं। जो मनुष्य के रूप में संसार में मानव धर्म स्थापना तथा विश्व के प्राणी मात्र के कल्याण के लिए श्रीरामरूप में विचरण कर रहे हैं। श्रीसच्चिदामय आनंद पूर्णमय पूर्ण विज्ञानमय मनोमय समस्त प्राणों के प्राण भी श्रीराम ही हैं।

दोहा—यथा—प्रान-प्रान के जीव के जिव सुख के सुखराम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह, तिन्हहि विधाता बाम ॥

प्रान के भी प्राण जीव के भी जीव सुख के भी परम सुख आनन्द के भी परमानन्द स्वयं श्री राम ही हैं।

(७)

यो दैत्यहन्ता नरकान्तकश्च भुजाग्रमात्रेण च धर्मगोप्ता ।
भूभार-संघात-विनोद-कामं नमामि देवं रघुवंशमीशम् ।।

जो भुजाग्र मात्र से ही धर्म के एक सनातन शाश्वत धर्म गोप्ता हैं, जिनका मंगलमय श्री विग्रह धर्म का सचल अचल मूर्तमान स्वरूप ही है । जो इस शुचिधरणी पर चतुर्व्यूह अर्थात् चार अंशों में कपि परिवार के साथ ही अवतीर्ण हुए ।

आविर्भूतश्चतुर्धा यः कपिभिः परिवारितः ।
हतवान् राक्षसानीकं रामं दाशरथिं भजे ।।

जो श्री दशरथनन्दन कौशल्या यशवर्धन मंगलमूर्ति आनन्द सिन्धु सुखराशी श्रीराम राक्षसों के अनन्त समूहों का बध किया, वे ही दाशरथि राम ही परब्रह्म हैं । आप सज्जन सुशील श्रोता जनों को आज श्री रघुनाथ जी महाराज का पावन चरित्र प्रारम्भ करता हूँ । भाई ? श्रीराम ही सनातन पूर्ण ब्रह्म हैं । यह बात ऊपर आपने सुनी । आजकल, कुछ अपने को बहुत ज्यादा विद्वान् बुद्धिमान् समझने वाले एक नया नारा लगा रहे हैं । श्रीराम राजा थे समस्त प्रजा के पालक थे । कोई कहता है कि ईश्वर तो हैं परन्तु; बड़े वाले नहीं । परब्रह्म ऊपर रहते हैं । तमाम बातें, उठाई जाती हैं । व्यर्थ विवाद छेड़े जाते हैं । कोई कहता है कि श्रीकृष्ण पहले हुए श्रीराम बाद में हुए । कोई कहता है कि लंका चण्डीगढ़ के पास है, कोई कहता है कि नहीं, लंका पूना शहर के पास, कोई कहता है कि लंका दिल्ली के पास है । अस्तु ! जितनी मुँह उतनी ही बातें होती हैं ।



॥ श्रीहरिः ॥

कथा लालित्य

चौ०—"बातुल भूत बिबस मतवारे। ये नहिं बोलहिं बचन संभारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना॥"

अर्थात् बात रोग ग्रसित व भूत प्रेत के आवेश से मतवाले एवञ्च महामोह रूपी मदिरा पान करके उन्मत्त बुद्धि अंध ज्ञान दग्ध वाचाल बहुभाषी प्राणियों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। वे स्वार्थ परार्थ का बोध भी नहीं रखते। उनको कुछ शास्त्र ज्ञान तथा गुरुजनों की कृपा भी नहीं रहती। इसलिए उनका प्रमाण भी नहीं माना जाता है। एक व्यक्ति कहता है कि सूर्य में प्रकाश नहीं है। सूर्य क्या हैं, कहाँ हैं, कुछ नहीं हैं, हम साक्षी देकर कहते हैं। अब आप कहने वाले कौन हैं। पता लगाइए तो कहने वाले हैं उल्लू पक्षी और साक्षी हैं चमगादड़ राम। क्योंकि दोनों को सूर्य से नफरत हैं। या दुर्भाग्यवश सूर्य रश्मि से वंचित हैं।

अतः उन्हीं के समान कायर एवं भीरू नास्तिक पुरुष ही श्रीराम को कुछ कहने का दुःसाहस करते हैं। सज्जन-कुलीन-आस्तिक पुरुष नहीं। आपको एक बात जानकर आश्चर्य होगा कि समस्त विश्व में जितना विशाल विराट् व्यापक विस्तीर्ण श्रीरामचरित है, उतना किसी का भी नहीं है। यथा—

यथा—चरित्रं रघुनाथस्य, शतकोटि-प्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातक-नाशनम्॥

शत कोटि प्रविस्तर चरित्रवान् श्रीराम हैं। आगे भी कहा गया है।

यथा—ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जिय जानि॥

यथा—रामायन सत कोटि अपारा।

जिनका चरित्र इतना विशाल है, उनके गुण कितने विशाल हैं आप सज्जन ही इसकी कल्पना कर सकते हैं।

(६)

महामुनि वाल्मीकि ने अपनी मंगलायतन कल्याणकारी लोकोपकारी उस महान् ग्रन्थ की रचना ही इस आधार पर किया है। तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी, वाग्विदांवरम्। श्री महामुनि वाल्मीकि मुनि पुंगव ने देवर्षि नारद से अपने चित्रकूट तमसा तट पर स्थित आश्रम में सर्वप्रथम यही प्रश्न किया कि—

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो, द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च - जातरोषस्य संयुगे॥

इतने गुणगण सम्पन्न कोई मनुष्य पृथ्वी पर क्या हो सकता है? इतने तो क्या इनमें एक गुण का भी सहस्रांश जिसको प्राप्त हो जाय वह सिद्धों का सिद्ध परम सिद्ध एवं पीरो का पीर हजरत पीर हो जायगा। इस महान् प्रश्न का उत्तर त्रिकालज्ञ सर्वत्र अव्याहतगति, परमभगवद्भक्त, महान्यायवादी स्वयं मुनि नारद ने दिया, जिनसे प्रश्न किया गया था। वे थोड़ी देर ध्यानमग्न होकर बोले कि मुनि ये गुण तो —

यथा—बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।

हे मुने ? आपने जितने गुण तथा गुणवान् पुरुष के विषय में पूछा है वह दुर्लभ है तथापि मैं, यथा –

तथा—मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वातैर्युक्तः श्रूयतां नरः।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतम्।
नियतात्मा महावीरो श्रुतिमान् धृतिमान् वशी॥८॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रु निवर्हणः।
विपुलांशो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥९॥
महोरस्को महेष्वासौ गूढ़जत्रु ररिंदमः।
अजानबाहुः सुशिरः सुललाटः सुविक्रमः॥१०॥
समः सर्वविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीन वक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥११॥

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हितेरतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिवान् ।।१२।।
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परि रक्षिता ।।१३।।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ।।१४।।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स्मृतिवान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्व समश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।
स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानंदवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया च पृथ्वीसमः ।।
धनदेन समः त्यागे सत्ये धर्म. इवापरः ।
तमेव गुणसम्पन्नं, रामं सत्य पराक्रमम् ।
ज्येष्ठं ज्येष्ठ गुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् ।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रिय काम्यया ।।

महर्षि बाल्मीकि ने इतने गुणगण भूषणभूषित अनंत सद् निलय समस्त गुण अपने को गुणवान् बनाने के लिए श्रीरामभद्र के श्री अंग में सबका मानो उदय हुआ है। सत्यसंध, सत्य पराक्रम धर्म, दया, क्षमा, करुणा, शील, पावन स्नेह पर ही श्रीरघुनाथ जी का जीवनाधार है ।

"राम कथा कलि पावन करनी"

उनकी मंगलमयी कथा ही दुःख, दारिद्रय, दीनता, परतन्त्रता को भगाने वाली अमृत के समान हितकारिणी मंगलकारिणी है ।

यथा—चौ०— रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुःख भागा।।
लागी सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहुँ तें सब कथा सुनाई।।

यथाः—रामायणं नाम परं तु काव्यं सुपुण्यदं वै श्रृणुत द्विजेन्द्राः।।
यस्मिञ्छ्रुते जन्म जरादिनाशो। भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात्।।
वरं वरेण्यं वरदं तु काव्यं, संतारयत्याशु च सर्वलोकम्।
संकल्पितार्थप्रदमादिकाव्यं, श्रुत्वा च रामस्य पदं प्रयाति।।

अर्थात् संसारसागर से उद्धार होने के लिए श्रीराम कथा संतारिणी नौका है।

चौ०—भव सागर चह पार जो पावा। रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा।।

संसार से दीनता दरिद्रता परतन्त्रता भगाने वाली सरल श्रीराम कथा है। वास्तव में, अखण्ड, अनन्त, अजर, अमर शाश्वत सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म श्री अवधराज रघुराज ही हैं।

चौ०—सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।।

आजानुबाहुमरविंददलायताक्ष-माजन्म शुद्ध रस हास मुखप्रसादम्।
श्यामं गृहीतशरचापमुदाररूपं; रामं सराममभि राममनुस्मरामि।

आजानु बाहु कमल लोचन श्रीराम का मंगलमय चरित्र भगवती भागीरथी से अनंतगुण श्रेष्ठ तथा परम पवित्र है। चारों युगों में ही नहीं अनन्त कल्पों से परम्परा प्राप्त श्रीरामचरित्र सजीवनमूरी है। संसार के कल्याण के लिए भक्तों को वाञ्छित फल प्रदान के हेतु गौ, ब्राह्मण के निष्काम कल्याण के हेतु, धरित्री का भार हल्का करने के हेतु, सनातन धर्म के मंगलस्थापन तथा अधर्म विनाशन के लिए ही श्रीराम का अवतार हुआ।

दोहा—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निजश्रुतिसेतु।
जगविस्तारहिं विसद जस, राम जनमकर हेतु।।

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

अर्थात्—जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी ।।
तब-तब प्रभु धरि मनुज सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

अनादि मर्यादा व्यवस्था, व्यवस्थापन हेतु, समस्त प्राणियों के कर्ण कुहरों में अमृत वर्षा करने के लिए ही श्रीराम का प्रादुर्भाव हुआ था और होता है।

यः पृथ्वीभर वारणाय दिविजैः, संप्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथ्वीतले रवि कुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हत राक्षसः पुनरगाद्, ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां, तं जानकीशं भजे ।।

माया मनुष्य रूप में रावण के वरदान तथा देवताओं की प्रार्थना पर ही वे ही नारायण जगदाधार पूर्णब्रह्म परमात्मा ही श्री दशरथनंदन श्रीराम के रूप में अवतरित हुए और पूर्ण कीर्ति प्रकाशित किया। जिसकी किरणें यावद् चन्द्रदिवाकरौ रहेंगी। अनन्त प्राणी इस अमृत सिन्धु में निमग्न होते रहेंगे। संसार में धर्म की रक्षा ही प्रभु का प्रधान उद्देश्य है। धर्म प्रभु को प्रिय है, और आप सबको भी प्रिय है। कोई भी प्राणी धर्मात्मा बनना, सुनना पसन्द करता है। बेधर्मी, बेईमान होने पर भी सुनना धर्मात्मा ही पसन्द करता है। जो धर्म आपको इतना प्रिय है, वही धर्म के मूर्तिमान स्वरूप श्रीराम ही हैं।

धर्मो वै भगवान सतामधिपतिः धर्मं भजेत् सर्वदा।
धर्मेणैव निवार्यतेऽपनिवहो, धर्माय कार्यं तस्मै नमः।
धर्मान्नास्ति परं पदं त्रिभुवने, धर्मस्य शान्तिः प्रिया।
धर्मे तिष्ठति सत्यमेव शुभदं, माधर्मं ? मां वर्जय ।।
आदि देव महावाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः।
साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः. शेषो लक्ष्मण उच्यते ।।

श्रीराम और लक्ष्मण ही परब्रह्म व शेष हैं।

बन्दउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता ।।

यथा—सेष सहस्त्र सीस जग कारन । जो अवतरेउ भूमि भय टारन ॥
सदा सो सानुकूल रह मोपर । कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर ॥

वे ही शेष रामावतार में लक्ष्मण जी थे। जो ब्रह्मदत्त प्रचण्ड शक्ति अनन्त उर लागी सही। अनन्त शेष ही लक्ष्मण हैं।

तुम कृतांत भक्षक सुनु भ्राता ।
एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति । एकं सत्यं बहुधा समुपयन्ति ॥

उन्हीं को नानारूप उपाधि से समग्र भक्ति के जन मन-का कल्याण चाहते हैं। वास्तव में श्रीराम के साथ सम्पूर्ण दैवी सम्पत्ति का ही प्रादुर्भाव हुआ था। समस्त बानर, भालू समस्त रामसखा सभी पर-ब्रह्म के ही अंश थे।

यथा—देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः, स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः ।
महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः, प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम् ॥

यथा—बनचर देह धरीक्षिति मांही । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ।
नख तरुगिरि आयुध सब वीरा । हरि मारग चितवहिं मति धीरा ॥

यथा—अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लैहऊँ दिनकर बंस उदारा ॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा । तिन्ह कहँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दशरथ कौसल्यारूपा । कोसलपुरी प्रगट नर भूपा ॥
तिन्हके गृह अवतरिहउँ जाई । रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥

यथा—भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे,
लोकाः पूज्यतयाङ्घ्रि पद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः ।
नाना ज्ञानविशेष मन्त्रवितर्तिं, त्वक्त्वा सुदूरेभृशम्,
रामं श्यामतनुं स्मरामि हृदये, भान्तं भजध्वं बुधाः ॥

सकल गुण निधान समस्त गुणगण निलय, समस्त सुषमा सकेलि श्रीराम की आज संसार में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित कथा है। इस पावन चरित्र को सुनकर अनन्त संत कवि भक्त पुंगवों को अलभ्य मुक्ति भक्ति गति की प्राप्ति हुई है।

०:०:०

श्रीहरिः

कथा मणि

यह मंगलमय कल्याणमय अभिमत फलदातार शुभ प्रवचन कथा चार साल तक बन्द रही है, इस बीच बहुत परिवर्तन भी हो गए हैं। जिम्मेदारी बहुत बढ़ गयी है। महान् राष्ट्रीय क्षति हमारे पूज्य श्री गुरुदेव प्रेरणाके स्रोत शक्तिके प्रवाह,भक्ति मुक्ति, गतिदायक समस्त प्राण जीवन मूलधनवाणी के शब्द- शब्दके अर्थ-अर्थ के मूर्तमान साक्षात् फल परम साक्षात् शिवस्वरूप महाराज श्रीस्वामी जी इस नश्वर शरीर से संसार में नहीं रहे। उनकी शक्ति दिव्य ज्योति, उनका वह परमतेज, उनकी वह प्रखर गंगाप्रवाहवत् अमृतवाणी उनका वह विशाल सरस्वती का वाङ्मय और उनकी मंगल कृपा इस सेवक पर सदा ही रही थी और आज भी पग-पग पर है। उनका यह सेवक इस कृपा बल से ही इस पावन श्रीरामकथा में प्रवचन करने को आज फिर अग्रसर हुआ है। श्रीरामकथा वही है। सज्जनों ! श्री मंगलमय श्रीरघुकुल भूषण श्रीराम का आप सब हम मिलकर फिर एक बार स्मरण करते हैं। उन्हीं की कृपा से इस जड़वाणी को शक्ति प्राप्त होती है।

यथा—ध्रुवभक्त श्रीमद्भागवत में क्या प्रार्थना करते हैं ?

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां, संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वनाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्, प्राणान्नमोभगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

(श्री०भा०पु० ४।९।६)

जो अन्तःकरण में प्रवेश करके इस सोई हुई वाणी को संजीवित करते हैं। अखिल शक्तिधर अपने तेज से ये प्रभु ही इस वाणी को रस माधुर्य प्रासाद ओज अलंकार व्याकरण परिमार्जित करते हैं, वे ही इस वाणी को शक्ति देते हैं।

चित्रकूटालयं राममिन्दिरानंदमन्दिरम्। बन्दे च परमानन्दं भक्तानामभयप्रदम्॥

श्री चित्रकूट में निवास करने वाले भगवती लक्ष्मी सीता के आनन्द निकेतन और भक्तों को अभय देने वाले परमानन्द श्रीरामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

इस नमस्कारफल स्वरूप श्रीरामकथा को भागीरथी तट पर आप सब सज्जनों को भी साथ लिए चलता हूँ। क्योंकि इष्टं धर्मेण योजयेत्—ऐसा महामनीषियों का वचन है। अपने साथ ही अपने इष्टजनों को भी पुण्य में साथ रखना चाहिए, जैसे गंगा नहाने जाते समय संगी सम्बन्धी, इष्ट मित्र कुटुम्बीजन चलते हैं, उसी भाँति श्रीरघुकूल भूषण, सर्व समर्थ भक्त वांछा कल्पतरु श्रीराम की यह कथा श्रीगंगा के समान पतित पावनी, पुण्यकारिणी है। भगवान् आशुतोष महादेव शिव इसी प्रश्न पर श्रीगौरी जी पर मुग्ध होकर धन्य-धन्य कह उठे और प्रेम-प्रेम पुलकित हो उठे।

धन्य-धन्य गिरिराज कुमारी । तुम समान नहि कोउ उपकारी ।।
पूंछेउ रघुपति कथा प्रसंगा । सकललोक जग पावनि गंगा ।।

सकल लोक जग पावनि गंगा जैसे गंगा जी बहुत दुर्लभ हैं, पुण्यवानो को ही सुलभ होती हैं। वैसे राम कथा भी दुर्लभ है। पुण्यवानों को ही सुलभ है।

भनित भदेस वस्तु भल बरनी। रामकथा जगमंगल करनी ।।
मंगल करनि कलिमल हरनि । तुलसी कथा रघुनाथ की ।।
गति कूर कविता सरित की । ज्यों सरित पावन पाथ की ।।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहिं सुजन मन भावनी ।
भवअंग भूतिमसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ।।
प्रिय लागिहिं अति सबहिं मम भनितिराम जस संग ।
दारु विचारुकि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग ।।
स्याम सुरभि पयबिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिराग्राम्य सियराम जस गाँवहिं सुनहिं सुजान ।।

इसी भाँति मंगल कथा-राम नाम, तोता मैना के मुख से भी प्यारा कर्ण प्रिय लगता है। फिर वेद-शास्त्र प्रतिपादित पुराणेतिहास परमपुरुष काव्य, कोष, निरुक्त, निघण्टु चम्पू व्याकरण शास्त्र धर्म प्रति समर्पित श्रीराम चरित्र गंगा के समान है। जैसे भगवती गंगा इस पार वाले को उस पार वाले को बीच वाले को जल छिड़कने वाले को तथा नाम लेने वाले का भी सदा ही तरण-तारण करती आई हैं। उसी भाँति मंगल श्रीरामकथा सदा ही किसान, नाविक, धनी, निर्धनी, पंडित, मूर्ख सबको सुख सन्तोष मनोकामना पूर्ण करती चली आ रही युगों से जैसे श्री गंगा की धार प्राणिमात्र को सुख सुविधा गति मुक्ति करती चली आ रही है। इसी प्रकार यह श्रीराम कथा कहने वाले, सुनने वाले, सुनने सुनाने की सुव्यवस्था करने वाले, आने वाले, साथ लाने वाले, बैठने को कहने वाले तथा इस आयोजन की सराहना करने वाले इन सभी का कल्याण श्रीराम कथा मन्दाकिनी करती हैं।

मन कामना सिद्ध नर पावा । जो यह कथा कपट तजि गावा ।।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । तो गोपद इव भवनिधि तरहीं ।।

ये सभी साधक इस संसार सागर को गोपद के समान लाँघ जाते हैं। उनको कोई कठिनाई नहीं पड़ती। यह राम कथा उनके लिए दृढ़ नाव बन जाती है। यथा

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकहुँ दृढ़ नावा॥

यह कथा जीवनी शक्ति की जननी है। अमरत्व की सीमा का अन्त है। यहाँ जीवन को शक्ति-गति देती है। श्रीराम की यह कथा स्वयं की कथा है। स्वयं ही श्रीराम पुराण पुरुष हैं। उनका स्वरूप साधारण नहीं है। वह अप्रमेय हैं। अद्‌भुत है अकथनीय हैं, अनिर्वचनीय हैं, मनवाणी चित्त से भी परे परम विराट् दिव्य हैं। वे ही घट-घट व्याप्त हैं। वे ही अन्तरयामी हैं। सबके जननी, जनक भगिनी, भ्राता हितकारी हैं। वे ही सबके हन्ता भी है। वे ही कालों के महाकाल भी हैं। वे ही कलिकाल के क्रूर रूप को कुल्हाड़े के समान हैं। वे ही प्राणों के भी प्राण हैं। यह सब श्री शिव जी एवं श्री रघुनाथ जी तथा परमपावन श्री गुरुमहाराज की ही असीम कृपा से सेवक को अर्थवान वाणी मिली है। अतः श्रोताओं को भी थोड़ा विराम देता हूँ।

वैसे यह श्रीराम कथा अथाह है, अपार है। हम अल्पमति इसमें प्रवेश स्वबल पौरुष से करें तो असम्भव है। परन्तु जैसे कठोर निष्ठुर-पर्वत खण्डमणि किसी बुद्धिमान कारीगर द्वारा वेधीं गई हो पूर्व में ही। तो उससे एक अल्प निर्जीव पतला-दुबला डोरा आता जाता रहता है "मुनिहिं प्रथम हरि कीरति गाई तेहि मग चलत सुमग मोहिं भाई॥ पूर्व में महान् मुनियों ने राम कथा गाकर सेतु बना दिया है। उसी द्वारा इस अपार सागर को हम भी पार कर जाएंगे। जैसे महान् जन्म से अपार सागर हजारों भयंकर जल चरों से भरे हुए होने के कारण सबको दुरूह, अगम्य है, परन्तु कोई धर्मात्मा यदि उसमें सुदृढ़ सेतुनिर्माण कर दे तो अति अल्प प्राण लघुकाय चीटी भी पुल के सहारे अपार सागर तर जाती है। यथा—

अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलकउँ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं॥

अर्थात् बिना श्रम के ही पिपीलिका सागर तर जाती है।

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब सन्ता॥

राम अनंत अनंत गुन; अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरज न मानिहैं; जिनके विमल विचार॥

विमल विचार वाले ही श्रीराम कथा का पूर्णरस ग्रहण करते हैं।

—::००::—

श्रीहरिः

कथा रस

श्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास।
पाय उमा अति गोप्यमति, सज्जन करहिं प्रकास ॥

आप सब रसिक श्रोताओं का उत्साह, अनुराग देखकर और अपने अन्तर्मन में उमंग की हिलोर देखकर उसका रसस्वाद आप सब तक पहुँचाने के पहले अपने परम पावन शक्ति, बुद्धि के केन्द्र श्री गुरु महाराज का स्मरण करना चाहता हूँ। जिस प्रकार दिव्य चिन्तामणि प्राप्त हो जाने पर फिर कुछ शेष नहीं रहता, उसी भाँति सागर में स्नान कर लेने से फिर शेष कोई स्नान नहीं रहता, जिस प्रकार वृक्ष के मूल सिंचन करने पर उसके शाखा प्रशाखा फूल दल अपने आप सिंचित एवं विकसित हो जाते हैं अथवा महा रसवान् अमृत रस पी लेने पर फिर कोई रस शेष नहीं रहता। जिस प्रकार शारदा भगवती के कण्ठ पर आ जाने से कोई शब्द शेष नहीं रहता। इसी भाँति यह धर्म सम्राट् विद्यामहार्णव त्याग तपो मूर्ति, उदार करुणा सागर अनन्त 'श्रीस्वामी हरिहरानन्द सरस्वती, श्री स्वामी करपात्री जी महाराज का यह लघु सेवक जीवन में पूर्णकाम हो चुका है। एवं भूरि-भूरि कृत-कृत्य हो चुका है। उनका अनन्त कोटि ऋणी है सदा ही उन्हीं का जय-जयकार करता है। अभय निर्भय शोक रहित विचरता है। उन्हीं का स्मरण करके आप अब एक प्रौढ़ कथा गम्भीरता से अपना मन, बुद्धि चित्त लगाकर प्रभु सुयश सुनें।

यह कथा सम्पूर्ण जगत की कला विलासों की जन्मभूमि है। अथवा अपार सुख की जननी है। विवेक रूपी महावृक्ष का केन्द्र स्थान है। समस्त प्रौढ़ सिद्धान्तों की पाताल पर्यन्त महानींव है। समस्त नौ रसों, व्याकरण साहित्य का सार है। वाणी का महान् अक्षुण्ण भूषण है और यह मंगल कथा सभी महाविद्याओं की आदि पीठ है। सज्जनों का कुल कवि पुंगवों का प्राण जीवन धन ही है। यही मंगल पावन करनि रघुनाथ कथा सभी वेद शास्त्रों पुराणों का आदि निवास स्थान है। भगवती सरस्वती वीणावादिनी हंस वाहिनी का प्रचुर सुषमा सौन्दर्य रूपी अपार भण्डार राशि है। अब यह कथा काव्यों की राजराजेश्वरी तथा महान् आर्यग्रन्थों का महामूल है। अथवा श्रीराम कथा कामधेनु के समान महान् पयस्विनी है। जिनका नाम लीला गुणधाम, एक शब्द मात्रा का स्मरण ही कल्याणकारी है। अथवा उलटानाम भी मुक्तिभक्ति दायक है।

कूजन्तं रामरामेति, मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता-शाखां, वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् ॥

महर्षि बाल्मीकि अजर-अमर हो गए।

"उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।"

श्रीराम कथा के महान् अग्रणी वक्ता श्रीराम का मरा-मरा नाम ही तो जपा था। इसलिए सज्जनों! यह कथा अलौकिक तथा अद्भुत है। यह महासागर है, जिसमें जितनी शक्ति भक्ति है, उतना रस मोती खोज लेता है। धर्म ही कल्याण का परम सेतु है। यह राम कथा ही धर्म का जाज्वल्यमान, मूर्त्तिमान् स्वरूप है। श्रीराम स्वयं ही धर्म के मंगलमय पावन स्वरूप हैं। यथा—बाल्मीकि रामायण में मारीच स्वयं रावण से कहता है।

"रामो विग्रहवान् धर्मः, साधुः सत्यपराक्रमः। राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः।।

अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा। न त्वं समर्थस्तां हर्तुं, रामचापाश्रयं वने।।

श्रीराम मूर्त्तिमान् धर्म ही हैं। सज्जन साधु शिरोमणि हैं, उनका पराक्रम परम सत्य है। जैसे देवताओं के राजा इन्द्र हैं, वैसे ही वे सब लोकों के राजा हैं। उनका तेज अप्रमेय है। जिनकी पत्नी जनकनंदिनी जानकी हैं। रावण राम के बाणों से सुरक्षित उन्हें तुम हरण करने में समर्थ नहीं हो। अतः ऐसा आत्मघाती, महान् कुत्सित विचार छोड़कर लंकागढ़ चले जाओ—"सत योजन आयउँ छनमाहीं, तिन्हसन वैर किए भल नाहीं। जिन्ह राम कथा के अग्रणी महर्षि की वाणी अजस्र गंगा प्रवाहवत् चली, यह किसी साधारण मनुष्य के वश की बात नहीं थी, जिन्हें सृष्टिकर्त्ता विधाता ब्रह्मा ने स्वयं उनके आश्रम पर आकर क्रौंच वध से दुःखी मुनि को सस्नेह आशीर्वचन दिया हो।

स्वच्छन्दा भारती देवी, जिह्वाग्रे ते भविष्यति।

कृत्वा रामायणं काव्यं, ततो मोक्षं गमिष्यसि।।

जिनकी वाणी पर सौंदर्य अलंकार से विभूषित स्वयं भारती देवी विराजमान हों, उस कथा का अपूर्व रस धीर गम्भीर उदार, आस्तिक श्रोता ही समझ सकते हैं। स्वयं चतुरानन कहते हैं—हे मुने!

"न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति"

जिसमें अमृतरस सार ही भरा है। यह कथा लोक परलोक की कल्याणदायिनी है। तन-मन वाणी से कृत पाप को तत्काल समूलोन्मूलन कर देने वाली है। यह कथा ही कलिकाल में एक सरल गति मुक्तिदायिनी है। संसार जानता है कि राजा परीक्षित को मुनि शापवश तक्षक नाग डँसा था। नरेश को पहले ही बता दिया गया था कि आज के सातवें दिन भोगावति पाताल से महान् बलशाली तक्षक

नाग आएगा और आप को डसेगा, बचाव का उपाय जितना भी बन सके कर लीजिए। राजा को साँप डसने का उतना भय नहीं था, जितना मरने पर प्रेतगति का महान् भय उपस्थित हो गया था। परन्तु उदारमना नरेश ने प्रतिरक्षा का कोई भी उपाय नहीं किया। वैद्य, डाक्टर, हकीम, झाड़-फूँक या सर्पवध का आदेश नहीं दिया, अपितु; भगवती मंदाकिनी गंगा के तट पर एकान्त में मन, बुद्धि, चित्त एकाग्र कर स्थिर होकर जगदाधार नारायण की केवल मंगलमय कथा सुनीं और महाराज फिर चमत्कार ऐसा हुआ कि मत पूछिये। तक्षक राज आए और नरेश को डसा, परन्तु नरेश की प्रेतगति न होकर परम प्रभु श्री नारायण के परम धाम चले गए। प्रभु में मिल गए, उन्हीं के स्वरूप हो गए। धन्य है प्रभु की मंगल-कारिणी कथा।

वास्तव में कथा ही पाप मोचिनी है। "मन क्रम वचन जनित अघजाई। जो यह कथा सुनै मन लाई। मन लगाकर सुनने का हेतु यह है कि कथा के बिना बेचैनी बढ़ जाय, भोजन, पानी, नींद अप्रिय हो जाय। जो गति लौकिक व्यसन से ग्रस्त व्यसनी की होती है। अफीमची को अफीम न मिले तो बेकरार हो जाता है चाय वाले को समय पर चाय न मिले तो खिन्न हो जाता है। मन में महान् उच्चाटन हो जाता है, उसी भाँति श्रीराम कथा श्रवण का व्यसन हो जाय, महान् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मा के पुत्र बाल योगी सनकादि ज्ञानी मुनियों को भी एक महान् व्यसन था। आप श्रोता चकित मत होइए। इन ज्ञानियों को एक महान् व्यसन था। वह क्या था ?

आसा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होय तहँ सुनहीं ॥

अर्थात् आशा यानी दिशा ही जिनके वस्त्र हैं, मानो दिगम्बर हैं, उन्हें भी व्यसन है। जहाँ-जहाँ श्री रघुनाथ जी का कीर्तन होता, दौड़-दौड़ कर धाय-धाय कर जाकर बैठते सुनते हैं। महाराज परम श्रीराम भक्त वीर शिरोमणि महावीर बजरंगी श्री हनुमान जी महाराज इस प्यारे व्यसन के कारण श्री रघुकुल भूषण श्रीराम जानकी को अपने मन मन्दिर में सदा विराजमान रखने को विवश रहते हैं। यही रामकथा का ही मंगल व्यसन है।

यत्र-यत्र रघुनाथ कीर्तनं, तत्र-तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम्।

वाष्प वारि परिपूर्ण लोचनं, मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

जहाँ-जहाँ श्री रघुनाथ जी महाराज का नाम लीला गुणधाम होता है, वहाँ-वहाँ दोनों हाथ की अंजलि बाँधकर मस्तक पर लगाकर करुणा सुख के आसुओं से भर कर प्रभु महावीर रस-विभोर होकर कथा मन्दाकिनी में आकण्ठ डूबे रहते हैं।

राम चरित सुनबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया ॥

पहले रामचरित सुनने को रसिया, तब श्री राम लखन सीता मन बसिया।

बन्दउँ पवन कुमार खल वन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चापधर ॥

हृदय मन्दिर में इष्ट को सदा विराजमान करने के लिए उनका नाम, मंगल चरित चिन्तन पूजन ध्यान सभी अनिवार्य है। वह कान-कान नहीं है अपितु; भुजंग काला विषधर महानाग का बिल है, जिसमें दोनों ओर से निंदा, चुगली, फटकार, दहाड़ सुनते-सुनते अब हम समझते हैं कि सबके कान ओवर लोड हो चुके हैं। ये संसार में जबसे जन्मे हैं, परनिंदा, परभेद, परछेद निंदा सुख ही ग्रहण किया है। वैसे भी कानों का स्वभाव ही परनिन्दा श्रवण में अतिरुचि रखते हैं। तर्क करके बार-बार उत्सुक कान पूछते हैं। कुछ तो महाराज छिप-छिप कर सुनते हैं। परनिन्दा रस ही ऐसा है, परन्तु; जब इन कानों का भाग्य जगे, तब ये राम कथा प्रभु चर्चा वेद शास्त्र पुराण संयुक्त सन्तवाणी सुनने को मिलती है। यथा श्रीमद् भागवत के दशमस्कंध के अध्याय ३१ में गोपीगीत प्रकरण में आया है।

तव कथामृतं तप्त जीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

ये कथामृत पान करने वाले लोग कृतकार्य और धन्य हैं। महान् चक्रवर्ती नरेश धर्मात्मा राजा पृथु ने जिनसे यह धरत्री धरिणी पृथ्वी कहलाई। ईश प्रभु नारायण भगवान को प्रसन्न करने के लिए बहुत घनघोर तपस्या किया।

श्री नारायण प्रभु प्रसन्न होकर बोले—नरेश हम प्रसन्न हैं। वरदान माँगो। राजा ने करबद्ध नतमस्तक होकर कहा। यदि प्रभु प्रसन्न हैं इस सेवक पर, तो इस हमारे शरीर में दश हजार कान लगा दीजिए। श्री नारायण मुस्कुराये और बोले—नरेश इतने कान लेकर क्या करोगे। इकाई, दहाई, सैकड़ा तक ले लो। नरेश बोले—हे परम प्रभु दो कानों से आपका चरित्र समाता नहीं हैं। तृप्ति नहीं होती।

"जिन्हके श्रवन समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे, तिन्हके हिय तुम कहुँ गृह रूरे ॥

स्वाभाविक है, जब मधुर अमृतरस बह रहा हो तो कौन अभागा छोटा पात्र ले जाना चाहेगा। जहाँ पानी मुफ्त बटें तो लोग घड़ा, लोटा, बाल्टी लेकर दौड़ते हैं फिर दूध बटे तो ड्राम खोजते हैं। फिर अमृत के लिए तो वृहत्पात्र खोजना ही चाहिए। अतः नरेश ने दश हजार कान माँगा तो कोई अतिशयोक्ति

नहीं है। हम होते तो दश लाख कान भी कम ही बताते। समुद्र को भरने के लिए कितने बड़े पात्र की जरूरत हो सकती है, इसकी कल्पना आप शीलवान् बुद्धिमान् श्रोता जन कर सकते हैं। वास्तव में, प्रभु कथा अमृत का सार है। वास्तव में कथा क्या है—प्रभु का मंगलमय विराट रूप ही है।

यहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥

अथवा—वेदे रामायणे पुण्ये, भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥

कथा के आदि मध्य अन्त में स्वयं नारायण ही बसते हैं। अर्थात् गाये जाते हैं।

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं,
पीतं वासो बसानं नवकमलदलस्पर्धि नेत्रं प्रसन्नम्।
वामाङ्कारूढ़-सीतामुख-कमल-मिलल्लोचनं नीरदाभं,
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरु जटा-मण्डलं रामचन्द्रम् ॥

जिनका तेज रवि शशि अनल धरणी में समान व्याप्त हैं। जो सब तेजो के परम तेज उद्गम हैं। यथा—

बंदउ रामनाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

जैसे सूर्य मण्डल का तेज सम्पूर्ण पृथ्वी पर व्याप्त है। कोई इसे इन्कार नहीं कर सकता। जैसे अग्नि का तेज प्रगट है, कोई इसे झुठला नहीं सकता, उसी भाँति तेजस्वी, वर्चस्वी राम कथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। देवराज इन्द्र की सभा में, ब्रह्मा की सभा में, वरुण की सभा में, लोकपाल कुबेर, राम की सभाओं में भी नित्य रामकथा होती है। जिसे सब सुरजन सुनकर संतुष्ट, तृप्त होते हैं। स्वयं कैलास में देवाधिदेव महादेव के यहाँ नित्य दिन-रात कथा मय वातावरण बना रहता है। उसी में निमग्न रहते हैं।

"तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहुँ अनंग अराती ॥"

इतना ही नहीं सती वियोगजन्य ताप से तप्त होने पर प्रभु महादेव समस्त ब्रह्माण्ड में विरक्त विचर रहे थे।

प्रथा—मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥
दच्छ जग्य तब भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहुँ तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥
तब अति सोच भयउ मन मोरे। दुःखी भयउँ वियोग प्रिय तोरे ॥
सुन्दर वन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ विरागा ॥

इसी विराग से शिव जी घूमते-घूमते—

गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुन्दर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाये। चारि चारु मोरे मन भाए ॥
तिन्ह पर एक-एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला ॥

नीलगिरि पर्वत पर पहुँचकर महान् अद्भुत दृश्य देखा और देखकर परम चकित हो गए। ऐसा शान्तदान्त निर्मल पावन स्थान देखकर शिवजी महाराज के प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा।

सीतल अमल मधुर जल, जलज विपुल बहुरंग।
कूजत कलरव हँस गन, गुंजत मंजुल भृंग ॥

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। जासु नास कल्पान्त न होई ॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका ॥
रहे ब्यापि समस्त जगमाहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहि जाहीं ॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥
पीपर तरु तर ध्यान सो करई। जाप जग्य पाकर तर करई ॥
आँब छाँह करि मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहिं दूजा ॥
वट तर कह हरिकथा प्रसंगा। आवहिं सुनहि अनेक विहंगा ॥
रामचरित्र विचित्र विधिनाना। प्रेम सहित कर सादर गाना ॥
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा ॥

(१३)

सुनहि सकल अति विमल मराला । बसहिं निरन्तर जे तेहि काला ।।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा । उर उपजा आनन्द बिसेषा ।।

तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास ।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास ।।

श्रीराम कथा रस रसिक महादेव शरीर से कथा लोभ वश मरालपक्षी तनु धर कर भी काग के मुख से इस राम कथा को सादर सम्मान पूर्वक सुनते रहे । यह कथा ही ऐसी है । चमत्कार भावपूर्ण ! इसमें कहीं सन्देह नहीं है ।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा । मैं जेहि समय गयऊँ खग पासा ।।
बिनु सत्संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनुराम पद, होइ न दृढ़ अनुराग ।।

हरि कथा ही सत्संग का मूलधन है ।

''राम कथा सो कहइ निरंतर । सादर सुनहिं विविध विहंगवर ।।''

निरंतर कथा ही जीवनी शक्ति को प्रभावित करती है । कथा ही जीवन के हर अंग को भर देती है । दिनचर्या सुधर जाती है । लोक व्यवहार का ज्ञान कराती है । परलोक का सोपान बनाती है । सन्त लोग एक कथा कहते हैं । आप सब बुद्धि समृद्ध श्रोताजन सुनें । एक बार एक महात्मा जी कहीं श्री रामायण की कथा कह रहे थे । प्रेमी श्रोता आनन्द ले रहे थे कि बीच कथा में ही एक बाबूजी किस्म के सज्जन उठ पड़े और उधर स्त्रियों के समाज में बैठी अपनी पत्नी की तरफ देखकर इशारा किया और बोले कि चलो सुन लिया सब रामायण चलो ट्रेन पकड़ना है । बीच सभा में दोनों श्रोताओं को प्रथम पंक्ति से उठता देखकर सहसा महात्मा बोले । भक्तराज पूरी कथा सुनकर जाओ, बीच में क्यों जाते हो ! कथा के बीच में नहीं जाना चाहिए ।

बाबूजी बोले, महाराज मैंने कथा बहुत सुन रखी है । ट्रेन पकड़ना है गाड़ी छूट जायेगी तब कथा क्या करेगी । महात्मा जी बोले बाबूजी उसी गाड़ी से हमको भी जाना है । अभी देर है । बाबूजी बोले, अरे महाराज, आपको क्या है । दण्ड-कमण्डलु- चिमटा उठाया, बैठ गए । हमारे साथ फेमली है, परिवार है, स्त्री है, अटैची, सूटकेस थर्मस भी है, अतः पहले ही जाना चाहिए और जाना भी पड़ेगा । महात्मा जी बोले, जैसी आप की मर्जी, वैसा ही करिये । दोनों प्राणी कथा बीच में ही छोड़कर उठ खड़े हुए । महात्मा जी भी कथा बन्द करके स्टेशन पहुँचे । गाड़ी आई, और महात्मा जी बैठ गए । संयोग ही कहिए कि वे

(२४)

बाबूजी भी उसी डब्बे में ही आगए, जिसमें बाबाजी पहले से ही बैठे थे। कोई कुछ बोला नहीं। गाड़ी जब चल दिया और जरा तेज हो गई तो बैठे हुए बाबूजी आकुल व्याकुल हो गए और चकित दृष्टि से कभी इधर कभी उधर ताकने लगे। कभी इस खिड़की की तरफ देखते, कभी उस खिड़की की ओर देखते। कभी इस स्त्री का मुंह देखते, कभी उस स्त्री का। डब्बे में हर सीट के मुसाफिरों को ताकते, झाकते डब्बे में पागल सरीखे दौड़ने भागने लगे। बड़ी देर तक बाबाजी सब देखते रहे, फिर गम्भीर वाणी में बोले—बाबूजी साहब क्या बात है। क्यों पूरे डब्बे में कबड्डी मचा रक्खी है। क्यों, अति चिंतित हो ? निराशा क्यों छाई है ? ठीक से एक स्थान पर क्यों नहीं बैठ जाते ? किस बात की परेशानी चेहरे पर है। बाबूजी साहब बहुत निराशा के स्वर में बोले। महाराज ? महान् अनर्थ हो गया है। जब गाड़ी आयी थी, तो हम तो जल्दी में धक्का मुक्का खाकर जोर जबरदस्ती से घुस आये, परन्तु, महाराज श्रीमती जी, वहीं स्टेशन पर ही छूट गयीं। विचारी पर महान् संकट उपस्थित हो गया होगा। न जाने विचारी पर क्या बीती होगी, इसी चिन्ता से दुःखित किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहा हूँ। उसी को ही चारों ओर चकित खोज रहा हूँ। देख रहा हूँ, महाराज; संकट में आ गया हूँ। महात्मा जी भी बहुत दुःखी हुए और बोले। आप घबड़ाओ नहीं, सब ठीक होगा। आपकी पत्नी शीलवती सज्जन भक्त है। प्रभु सब रक्षा करेंगे।

अगले स्टेशन पर उतर कर जल्दी खोज खबर ले लेना परन्तु; बाबूजी साहब ? आपने तो बहुत बड़ी गलती किया, जो कथा बीच में ही छोड़ कर चले आए थे। यदि आप मेरी पूरी कथा सुन लेते, तो ऐसी गलती कदापि नहीं करते। क्योंकि उस समय मैं वही कथा ही सुना रहा था कि परदेश में, यात्रा में भाई पत्नी परिवार यदि साथ में हों तो किस तरह चलना, उठना, बैठना, चढ़ना उतरना चाहिए, परन्तु; दुर्भाग्य ही था जो आप प्रभु कथा छोड़कर ट्रेन लोभ से चल दिये थे। बाबूजी जरा चिढ़कर खीजकर बोले। महाराज मैंने रामायण बहुत सुनी है, कथा भी और सुनी है। परन्तु; पत्नी के ट्रेन में चढ़ाने उतारने की कथा तो हमने रामायण में कभी सुनी नहीं। यह कहाँ है ? महात्मा जी बोले। अरे भक्त मैं यही कथा उस समय सुना रहा था, फिर सुन लो और सुन कर कभी ऐसी गलती नहीं करना। नहीं तो इसी भाँति रोना, पछताना, घबड़ाना पड़ता है। हाथ से बाजी निकल जाती है। सुनो कथा—जिस समय श्री रघुकुल भूषण श्रीराम लक्ष्मण के सहित शृंगवेरपुर श्री गंगा के तट पर आए और नाव माँगा। यथा—

"माँगी नाव न केवट आना।" और वह भक्त नाविक विना पद धोये नाँव लाना नहीं चाहता था। अतः श्रीराम प्रभु ने श्रीचरण पखरवाया और कहा भाई अब तो खुश हो जाओ और नौका लाओ। वह केवट भक्त नौका लाया। भगवती प्रबल वेगवती श्रीगंगा की धार में जब नाव लाया और नौका पर चढ़ने का अवसर आया तो प्रभु ने पहले भगवती श्रीसीताजी को नौका पर चढ़ाये यथा—

राम सखा तब नाव मंगाई। प्रिया चढ़ाय चढ़े रघुराई॥

पहले नांव पर भगवती सीता को चढ़ाया, अपने स्वयं या श्री लक्ष्मण जी नहीं कूद कर चढ़ गए। पहले प्रिया चढ़ाय-फिर प्रभु आप बाद में चढ़े और बाद में श्री लषण लाल जी सावधान होकर चढ़े।

(९५)

यथा—लषन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ।।

सावधान लक्ष्मण धनुष पर वाण रखकर प्रसन्न सावधान मन से चढ़े। यह तो चढ़ने वाली बात हुई।

और अब उतरने वाली बात सुनें। जब नौका उस पार पहुँची तो पहले ही श्रीसीता जी को उतारा।

यथा—उतरि ठाढ़ि भए सुरसरि रेता। सीयराम गुह लखन समेता ।।

सुरसरि रेत में पहले श्रीसीता जी, फिर श्रीराम, निषादराज वीर लक्ष्मण आदि उतरे बाद में।

केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभु सकुचे यहि नहिं कछु दीना ।।

आशा है आप रामायण में चढ़ने उतरने की कथा सुन लिये। अब गलती न करना। आप तो वार्क्सिग सीखे थे, सिनेमा टिकट के शुभ समय का धक्का-मुक्का बहुत खाये थे तो धांधां-गर्दी करके दो-चार मुक्का खाया। एक दो लगाया मूड़ घुसेड़ कर घुस गए। वह बेचारी शीलवती कुलीन स्त्री धक्का-मुक्का भीड़-भाड़ में, लाजवश नहीं चढ़ सकी और आप शूरमा पीछे देखा तक नहीं। इसीलिए सब परेशानी पड़ी। तो सज्जनो! सार यह है कि प्रभु कथा जीवन के रिक्त स्थानो की मंगलमय पूर्ति करती है। यही जीवन की भी जीवनदायिनी है। श्रीप्रभु की यह सुषमा सकेलि कथा त्रिवेणी की भाँति मनोवांछित फल देने वाली है। यथा-

हरिहर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ।।

और सुनने पर ही इसका फल श्रीत्रिवेणी माधवराज श्रीप्रयाग की भाँति धर्मार्थ काम मोक्ष की देने वाली है। यथा :—

कवि कोविद रघुवर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होऊँ कृपाल ।।

यहाँ श्रीरघुनाथ चरित्र की ही महिमा है। महान् सन्त श्रीरामचरितमानस के शुभ रचना पर परम भक्त सन्त कवि गोस्वामी जी महाराज भी कथा की पावन परम्परा को अपने श्री गुरु जी महाराज से अत्यन्त बाल्य-काल में सुना था।

यथा—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अतिरहेउँ अचेत ।।

दो०—श्रोता वकता ग्यान निधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलिमल ग्रसित विमूढ़ ।।

चौ०—तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।

अपनी-अपनी मति शक्ति-भक्ति साधना से ही सन्त महात्मा विज्ञानी ज्ञानी इस पावन कथा को कहकर अपना तथा संसार का सदा ही मंगल कल्याण करते हैं। यह श्रीराम कथा यथा—

दो०—राम चरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विसेषि बड़ लाहु ।।

चौ०—जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई ।।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरज करहिं अस जानी ।।
जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई ।।
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखुमानी ।।

यह कथा अनादि परम्परा अजस्र मंदाकिनी की धारवत सततगति मान प्रवाह मान है। संसार के महामोह रूपी वृक्ष के मूल को नाश करने वाली है।

निज सन्देह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी ।।
बुध विश्राम सकल जनरंजनि। राम कथा कलि कलुष विभंजनि ।।
राम कथा कलि पंनग भरनी। पुनि विवेक पावक कहुँ अरनी ।।
राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई ।।
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि ।।
असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि ।।
संत समाज पयोधि रमासी। विस्व भार भर अचल छमा सी ।।
जमगन मुँह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ।।

(९७)

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसिदासहित, हियँ हुलसी सी ।।
सिवप्रिय मेकल सैल सुतासी । सकल सिद्धि सुख संपति रासी ।।
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी । रघुबर भगति प्रेम परमितिसी ।।

दो०—रामकथा मंदाकिनी ; चित्रकूट चित चारु ।।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर विहारु ।।

राम चरित चिन्ता मनि चारू । संतसुमति तिय सुभग सिंगारू ।।

सज्जनो ! जिसका हृदय, मन, बुद्धि, चित्त, वाणी क्रिया-कलाप आचार-विचार, व्यवहार, पवित्र, निश्छल, निष्कपट, दयासहित क्रूरता, निष्ठुरता, बर्बरता रहित होगा, यह दिव्य अचिन्त्य अलौकिक, अनंतमहार्णव के समान अमृत कथा इतनी ही सरस, सुहावनी मनलुभावनी, दुःख हारिणी, सुख वर्धिनी होगी । मति में कुतर्क का पहाड़ भरा है । माता-पिता श्रीगुरुचरणों में पावन दृढ़ प्रीति का सर्वथा अभाव है । भड़भूजे के भड़सार के समान ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट पाखण्ड-झूठ की अग्नि हृदय में जल रही है । उसमें, कोमल, सरस मधुर अमृत, रस कथा भला बताओ, कितनी देर ठहर सकती है ?

सज्जनो ! आप हमारे उदार कथा रसिक गुण जौहरी श्रोता हैं । आप का उत्साह, लगन कथा की आतुरता को देखकर मैं आपको एक बात और बताना चाहता हूँ कि जैसी वस्तु है, वैसा ही पात्र चाहिए । संरक्षण के निमित्त देखो-कण्ठहार, कंकण मूल्यवान् वस्तु तिजोरी में कठोर सुरक्षा में रखे जाते हैं । परन्तु; झाड़ू अनाथ की भाँति रखा जाता है ।

घी, दूध, दही रखने की पात्र की ही महिमा है । जैसे सिंहिनी का दूध रखने के लिए शुद्ध हेम कुन्दन स्वर्ण पात्र ही चाहिए । बकरी का दूध कहीं भी रख सकते हैं । सिंहिनी का दूध सब पात्रों की धातुओं का बेधन करके फाड़ के फोड़ के निकल जायगा । निर्मल स्वर्ण पात्र ही उसकी दिव्य गरिमा का भार वहन कर सकता है । कोयला इस्पात नहीं कर सकता । इसी भाँति प्रभु की निर्मल कथा, अमित गुण, अनन्त रूप लावण्य माधुर्य का विमल विचार वाले ही पूर्ण रस लेते हैं ।

श्रीहरिः

कथा गंगा

महाम्भोधेस्तीरे-विमलरुचिरे नील शिखरे ।
वसन्ते सानन्दं सहज बल भद्रेण बलिना,
सुभद्रा मध्यस्था-सहजसुरसेवालिरतया,
जगन्नाथ? स्वामी नयन पथगामो भवतु मे ॥

सज्जनो ! आज रथयात्रा का महान् महोत्सव है। ऐसी पुण्यमयी बेला में हम आप सब मिल कर एक बार श्रीवलराम, सुभद्रा सहित श्रीजगन्नाथ स्वामी का स्मरण करते हैं। आज लाखों लोग श्रीजगन्नाथ स्वामी के रथ को खींचने में लगे होंगे। हरि बोल शब्द के नाम से दिग्दिगन्त अवनीं-अम्बर गूंज रहा होगा। ऐसी ही शोभा है।

इसके वाद आगे का प्रवचन आप सब सज्जनों के कर्णसागर में संगम कराने के पहले हम फिर वहुत नम्रतापूर्वक आदर सहित अपने श्री गुरु महाराज जी की उस कृपादृष्टि का स्मरण करना चाहते हैं।

जिसके वल पर हम कृत संकल्प सफल मनोरथ हो चुके हैं। वह महिमामयी कृपादृष्टि ही अखण्ड आनन्द की अनवरत वर्षा करने वाली प्लावित करने वाली सदा ही आनन्द से ही सिंचन करने वाली है। वह कृपादृष्टि ही भवभीम भुजंग से डसे हुए पुरुष को संजीविनी है। श्री गुरु की कृपादृष्टि ही वाणी को प्रसाद रंजित करके शव्द की हिलोरें उठाती हैं और अपने आश्रित परम भक्तों की आशा कामना सतत पूरी करती है। वही श्री गुरुचरणों की कृपादृष्टि ही योग की सिद्धि है। उनकी कृपा आत्म साक्षात्कार ऐसी कठिन दुरूह दुष्प्राप्य तत्त्व को सुगम सरल सटीक कर देती है। वही कृपादृष्टि, संसार-सागर से भी पार उतारती है। अद्भुत कवित्व-कला-शक्ति-वाग् वैखरी ओज-माधुर्य सब उसी का दिव्य चमत्कार है। वही सद्गुरु की दया-कृपादृष्टि जिसे प्राप्त हो जाय, वह सभी शास्त्रों का सार जान जाता है। वह कृपादृष्टि यदि चाह लेती हो। तो सेवक व्रह्मा हो जाय। "हे श्री गुरु कृपादृष्टि; तेरी जय जयकार हो। तेरी ही कृपा से यह सेवक इस महान् प्रवचन में प्रवृत्त हो रहा है। तूं ही हे मंगलमयी कृपादृष्टि ? सारे संसार को ओत-प्रोत कर रक्खा है। आपको बहुत-बहुत नमस्कार है। हां, तो सज्जनों ? अव आप आगे की कथा पर चित्त लगावें। यह कथा ही वांछा मनोरथ कल्प लतिका है। यथा—

(१८)

जग मँगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुत धन धरम धाम के।।
सद्गुर ज्ञान विराग जोग के। बिबुध वैद भव भीम रोग के।।
जननि जनक सियराम प्रेम के। बीज सकल व्रत धरम नेम के।।
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के।।
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जनमन वन के।।
सचिव सुभट भूपति विचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के।।
अतिथि पूज्य प्रियतमपुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के।।
मंत्र महामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से।।
अभिमत दानि देवतरु वर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से।।
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। राम भगत जनजीवन धन से।।
सकल, सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधु लोग से।।
सेवक मनमानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से।।

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि-कपट दंभ पाखण्ड।
दहन राम गुन ग्रामजिमि-इंधन अनल प्रचण्ड।।

यह मंगलकथा-काम-क्रोध मद लोभ मत्सर ईर्ष्या जनित समस्त पापों-दोषों को सद्यः निवारण करती है। हृदय मन्दिर में आनंद की सुख की हिलोरें पैदा करती हैं। यथा—

मन क्रम बचन जनित अघजाई। जो यह कथा सुनैं मन लाई।।

श्रीहरि।

कथा-महिमा

श्रोताओं ? आप सब को श्री प्रभु की चरण प्रीति प्रवाह में अति प्रवाहित देख कर ही हम को उन श्री गुरु की कृपा से बहुत कुछ नया-नया सूझ रहा है। लगता है, श्री गुरु महाराज हम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं और अपनी पूरी कृपादृष्टि की बर्षा कर रहे हैं। भाई ? जैसे सावन-भादों के कारे कजरारे उजियारे मेघ गरज-गरज कर सारी अपनी संपत्ति पिपासे चातकों के आगे ही उड़ेल देता है, बर्षा कर देता है। जैसे यदि भाग्य अनुकूल हो तो मिट्टी बालू भी रत्न हो जाता है।

यदि जगदीश्वर प्रभु विश्वम्भर अपने मन में किसी प्राणी की क्षुधा शान्त करना चाह लें—तो सिकड़ी चूल्हे पर चढ़ी हुई बटलोई के गरम पानी अर्थात् अदहन में कंकड़-पत्थर भी डाल दें तो उनकी कृपा से वे मधुर अमृत समान दाल भात बन जाते हैं। ठीक उसी प्रकार श्री गुरुदेव की कृपादृष्टि जिस पर पड़ जाय, या जो उसे अंगीकार कर लें, तो सारा संसार ही मोक्षमय बन जाता है। यथा—

श्री गुरू पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

इस संसार सागर से जो नौका-नाविक बनकर अपने भक्त को पार लगाते हैं, ऐसे दयालु उदार परम पावन श्री गुरु चरणों की कृपा से जो, बंचित है, परम अभागा है। सज्जनों। उन्हीं की कृपा डोरी के सहारे अब कथारूपी भागीरथी की धार में आप सबको लिये चलता हूँ।

श्री प्रभु कथा कहते, सुनते-सुनाते समझाते भी कथा के नायक का साक्षात्कार हो जाता है। यही इस कथा का सबसे विलक्षण सुलक्षण गुण है। देखो ? आपको इस शुभ सम्बन्ध में एक दिव्य दृष्टान्त कथा को सुनाता हूँ। आप सब सावधानीपूर्वक इष्ट स्मरण करते हुए मन, बुद्धि, चित्त को एकाग्र करके इस मंगलमयी वार्ता को सुनो जी।

एक प्रजापालक नेक-हृदय, उदार-दयावान गोब्राह्मण मन्दिर प्रति पालक, निष्कपट सज्जन राजा थे। जिनकी नित्य की दिनचर्या में प्रधान क्रिया यह थी कि नरेश नित्य श्रीरामायण की कथा सुना करते थे, कभी आलस्य प्रमाद नहीं आने देते थे। श्रद्धा, उत्साह, लगन आदर से नित्य सुनते थे।

इस कथा सुनने में खास विशेषता यह थी कि धर्मात्मा नरेश वही कथा सुनते थे, जितने में श्रीराम को कोई भी पीड़ा व्यथा, परेशानी नहीं आती थी। अर्थात् श्रीराम जन्म और श्रीराम विवाह की मात कथा सुनते थे।

आनन्द से श्रीअयोध्या का वर्णन सुनते, महोत्सव का आनन्द सुख लेते और फिर श्रीजनकपुर में क्या-क्या नया सुख उपजा और कैसा स्वागत सत्कार हुआ। श्रीजनकराज ने कैसा-कैसा शील सम्पन्न उदार व्यवहार किया। श्रीजनकपुर की मिठास भरी कथा, वह पहुनाई, वह विदाई बस इतनी ही कथा सुनते थे। बहुत दिन सुनते-सुनते बीत गए। आयु ८० वर्ष के लगभग होने को आई, परन्तु; कथा प्रवाह में

कभी भी व्यवधान नहीं उपस्थित होने दिया। क्रम चल रहा था कथा को सुनने का। एक दिन एक घटना घट गई। क्या हुआ कि जो अभ्यासी वक्ता थे, वे आवश्यक कार्यवशात् कहीं अन्यत्र चले गए। एक दिन दैवात् ही उनके पुत्र आ गए, श्रीराम कथा सुनाने। पुत्र जी को नहीं मालूम था कि कितना सुनाना है, कितना नहीं सुनाना। उन्होंने प्रारम्भ किया तो एक दिन में श्रीराम जन्म सुनाकर दूसरे दिन व्याह की कथा सुनाई और तीसरे दिन ही कैकेयी दशरथ संवाद प्रारम्भ कर दिया, नरेश ने पहली बार यह घोर षड्यन्त्र दारुण वार्ता सुनी। अतः व्याकुल हो गए और कथा बन्द करा दिया, और गरज कर बोले कि ऐसी नादानी वाली बात कैकेयी कैसे कह रही है, अरे महाराज भी बुद्धिमान, राजनीतिज्ञ होकर भी ऐसा वैसा वरदान के लिए वचनवद्ध हो रहे हैं। महान् अनुचित है, अन्याय है। कथा बन्द करो। परन्तु; जिज्ञासा ने रात्रि में बेचैन कर दिया। सोचा कैकेयी दशरथ कोपभवन में ही है। आगे क्या हुआ। बेचैनी बढ़ गयी। तुरन्त वक्ता पुत्र को जगाया और कहा अच्छा, बताओ अब क्या हुआ ? वक्ता ने श्रीराम वनवास सुना दिया और श्रीराम लक्ष्मण जानकी को रथ पर बैठाकर श्रीगंगा तट पर पहुँचा दिया है। गंगा पार करा दिया।

नरेश कथा सुनकर खिन्न चकित थकित व्यथित दुःखी हो गए और सोचा श्रीराम वनवासी उदासी जटिल तपस्वी हो गए हैं और अभी चार ही दिन व्याह कर आए हुए हैं, तो भला, हम बूढ़े हैं यह राजसुख श्रीराम के बिना कैसे भोग सकते हैं ? अतः राजा ने भी सब त्याग दिया, बलकल पहन लिया, भोजन भोग, शय्या शृङ्गार, शोक त्याग कर धरणी पर ही सोने लगे। श्रीराम के दुःख से सदा मन, वच क्रम से दुःखी रहने लगे। सब राजकाज, माया-मोह छोड़कर कथा को ही सुनने लगे। उधर वक्ता महोदय श्रीप्रभु को चित्रकूट से पंचवटी गोदावरी तट पहुँचा दिया और वह अति दारुण प्रसंग भी सामने आया। सुर्पनखा अंग-भंग, खरदूषण बध और श्रीसीता हरण का प्रसंग आते ही नरेश बेहोश हो गए। ८० साल से श्रीराम सीता चरित्र में इतने डूब चुके थे कि अब वियोग असह्य हो गया। होश में आते ही यह सुना कि रावण भगवती सीता को आकाश मार्ग से श्रीराम लक्ष्मण से सूनी कुटी से चुराकर श्वान की भाँति भगा जा रहा है। भगवती घोर दारुण विलाप कर रही हैं, जिसे सुनकर चर-अचर जड़ जंगम सभी दुःखी हो रहे हैं।

यथा—सीता कै विलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुःखारी ॥

नरेश धर्मात्मा नेक, दयावान, भक्त, वीर, योधा, क्षत्रिय थे। क्रोध में आ गए, आँखें लाल-लाल हो गयीं। भुजा कृपाण पर चली गयी। शरीर काँपने लगा। आवेश में आ गए। जोश से भर गए और दहाड़ कर गरजते हुए बोले—कि सेना को हुक्म करो कि लंकागढ़ पर चढ़ाई करें, तथा रावण को जिन्दा या मुर्दा हाजिर करें। श्रीसीता भगवती की रक्षा करें और स्वयं भी नंगे पैर नग्न कृपाण लेकर आगे-आगे सेना सहित दक्षिण दिशा की ओर आतुरता से चल पड़े। भूख-प्यास नींद सब गायब हो गयी थी।

नरेश को दुःखिनी सीता का सदा अनहदनाद की भाँति करुण स्वर ही कानों में गूँज रहा था। यथा—

हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया ।।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेंउँ रोसा ।।

चलते-चलते अनंत भयङ्कर जल जानवरों से भरे आकाश को छूती हुई जिसकी लहरें, ऐसा विराट, रत्नाकर सागर तट आ गया। सेना पतियों ने बताया कि महाराज ? लंका तो अपार सागर के मध्य में है। वहीं जलराशि में रावण ने कहीं श्रीसीता जी को छुपाया होगा। अतः सागर के पार जाना कठिन दिखता है। नरेश बोले कोई कठिन नहीं है। गोता लगाओ-लंकागढ़ खोजो, रावण को पकड़ो। श्री सीता जी को श्रीराम के आश्रम में फौरन हाजिर करो। राजाज्ञा समझ कर सब सैनिक जैसे सागर में गोता लगाने के लिए उतरने ही वाले थे, सबने अस्त्र-शस्त्र निकाल कर सम्भाल लिए थे और सागर की ओर बढ़े। स्वयं नरेश नंगी तलवार लिए सेना के मुहाने पर आगे-आगे भूखे नरकेशरी की भांति बढ़कर छलांग लगाना चाहा कि कहते हैं कि श्रीराम प्रभु को नरेश पर बहुत दया आई और परम कारुणिक करुणा वरुणालय, दयासिन्धु प्रभु ने दया करुणा से अति द्रवित होकर पुष्पक विमान पर श्रीसीता बीर लक्ष्मण, बीर हनुमान् सुग्रीव कपिराज भक्त विभीषण तथा बीर भट्ट वाहिनी बानर सेना के साथ नरेश के आगे सागर तट पर उतर पड़े 'और आदर भाव से अपनी भक्त भय हारिणी लम्बी स्यामल शोभायमान दुःखहारिणी भुजा नरेश के शीश पर धर कर अति स्नेह गंभीर धीर-वीर वाणी में बोले। राजन् ? अब आप वापस चलो। हम लंका जीत आये, रावण को मारि आये। अत्याचार अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार का अन्त करि आये। अब, आप वापस चलो। ये वही श्रीसीता हैं जिनका रोना सुनकर आप व्याकुल हो गये थे। वही ये श्रीसीता जी आ गयी हैं। आप देख लो और नरेश अब वापस चलो। सेना को वापस चलने को कहो और चलो, प्रजापालन करो। सज्जनो ! इसी कथा भावावेश में राजा को श्रीराम सीता का दर्शन हो गया है। कृतार्थ हो गये, मुक्त हो गये। यथा – भगवान् परमानन्द स्वरूप ! स्वयमेवहि—मनोगहस्तदाकार रसटामेनि पुष्कलाम्—अर्थात् परमानन्द आनन्द कन्द भगवान् स्वयं ही भक्त के द्रवीभूत मन पर परम व्यक्त होकर भक्ति पद से ही कहे जाते हैं। कोमल चित प्राणी भक्ति का प्रमुख अधिकारी है।

श्रीहरिः

कथा माधुरी

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहिस्त्रियः ।।

कुन्ती कहती हैं कि हे प्रभु आप अमलात्मा महामुनीन्द्रों को भक्तियोग विधान करने के लिए सगुण साकार मंगल रूप ग्रहण करते हैं। यद्यपि निर्गुण; निराकार स्वरूप सभी प्राणियों के निरतिशय, निरूपाधिक परम प्रेम का आस्पद है तथापि अनादि महामाया के प्रभाव से उसकी परमानन्द रस रूपता परम प्रेमास्पदता तिरोहित सी हो गयी है। जैसे मधुर मिश्री भी पित्तदोषोपहत रसना वाले अल्प प्राणी को कटु प्रतीत होती है, वैसे ही निरतिशय, निरुपाधिक, परम प्रेमास्प्रद प्रत्येक चैतन्या भिन्न अन्तर्यामी अखण्ड परब्रह्म की उपासना कथा सरल सुगम सरस मधुर मंगलदायिनी होती है। सज्जनों! कथा की महिमा बहुत हो गयी। अब आप इस कथा के नायक आनन्दकन्द सच्चिदानन्द अनंत ब्रह्माण्डाधिष्ठान श्री कंर्दपदर्पं दलीयान् समस्त गुण पटीयान् सौन्दर्य निधान श्रीपरब्रह्म अविनाशी अभिमत फलदातार भक्तवांछाकल्पतरु श्रीरघुकुल भूषण श्रीराम का पावन चरित्र सुनिये। आप सबके कान को तथा दृष्ट-अदृष्ट जड़चेतन सभी प्राणी के मंगल कल्याण के लिए दत्तचित्त होकर सावधानी से सुनिए।

श्रीहरिः

श्रीरघुकुल भूषण राम

त्रेतायुगे भविष्यामि रामो भृगुकुलोद्वहः ।
क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि समृद्धं बलवाहनम् ॥
सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेतायाः द्वापरस्य च ।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः ॥

त्रेता युग में महाराज महान् धर्मात्मा राजा दशरथ और महाभागा कौशल्या के पुण्य से संसार का कल्याण करने के लिए स्वयं प्रभु श्रीनारायण ही श्रीराम के मंगलमय स्वरूप में आये । यथा :—

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार । निज इच्छा निर्मित तनु, मायागुन गोपार ॥

मायातीत त्रिगुणातीत प्रभु जनकल्याण के लिए बैकुण्ठ वैभव त्याग करके धराधाम पर आ गए ।

यथा—बैकुण्ठ वैभवसुखं परिहाय वत्स । स त्वं स्वयं दशरथालयमागतोसि ॥
केकयनरेन्द्र तनयामपहाय राम ? मां पापिनीं कथमहो ? जननीमकार्षीः ॥

ऐसा पावन निर्मल मंगल चरित्र किया कि आज भी भक्त-पुंगव कविजन, वहुत ही उत्साह, प्रेम उदारता से नित्य गुण गाते नहीं थकते, तथा वे आत्म सन्तोष समृद्धि, सुख शान्ति बराबर प्राप्त करते हैं श्रीराम ही परं ब्रह्म निर्गुण सगुण हैं । वही अनादि महाप्रकृति के एक शाश्वत् स्वामी हैं । वे ही—

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् । सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद् रामायणात्मना ॥

श्रीराम परब्रह्म जगत् कारण हैं । यथा —

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः । जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं ववनमब्रवीत् ॥
उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः । यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥
एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् । मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥
(वा० रा० बा० १६ सर्ग १)

रावण आदि महापराक्रमी असुरों ने घनघोर तप कर के ब्रह्मा से वरदान माँगा था कि हमारी मृत्यु सिवा नर, बानर के अतिरिक्त किसी से भी न हो। यथा :—

हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥

अर्थात् रावण नर बानर को तो कुछ समझता ही नहीं था। उनको तो लौंग इलायची के समान मात्र मुख शुद्धि ही समझता था। इसलिये सृजनहार श्री ब्रह्मा जी के लेख पर भी बहुत जोर से हंसा था। विश्वास ही नहीं करता था। भला अल्पकाय निम्न बल पराक्रम वाले क्या बानर भालू भी हमको कभी मार सकते हैं ? यथा—

जरत विलोकेउं जबहि कपाला। विधि के अंक पढ़े निज भाला॥
नर के कर आपन बध वांचा। हंसा जानि विधि गिरा असांचा॥
सो अस जानि त्रास नहि मोरे। लिखा विरंचि जरठ मति भोरे॥

धाता विधाता की खानदानी परम्परा होने से परदादा की लिखावट तो अवश्य ही पहचान गया, परन्तु अभाग्यवश, उनको जरठ वृद्ध आयु जानकर मति के भोरे समझ गया।

अतः प्रभु श्रीलक्ष्मीनारायण गरुड़गामी जगन्नाथप्रभु विधाता की ही वाणी को सत्य करना चाहते थे। इसीलिए सब लीला नर के ही भाँति किया है। यथा—

रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि वचन कीन्ह यह साँचा॥

विधि वचन सत्य करने के लिए सारी लीला अप्रत्यक्ष रूप में हो रही थी। यही बात देवताओं की करुण प्रार्थना पर श्री हरि कहते हैं—

यथा—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहिं लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥
तिन्हके गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः। उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम्॥

अर्थात् श्रीविष्णु ही राजा दशरथ को पुत्र रूप में प्राप्त हो गए। यथा –

मंगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुन्दर सुत जाके॥

सगुण साकार स्वयं ही जिसके पुत्र हों, उसके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है। इसीलिए उनके शुभागमन की मधुर बेला जानकर सारी प्रकृति अगवानी करने के लिए पहले .ही से तैयार थे। सभी ग्रह तथा तिथि, नक्षत्र योग लगन बार सब परानुकूल होकर अपने प्राणधन प्रभु के आगमन का बाट जोह रहे थे। यथा—

जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षयुत, राम जनम सुख मूल॥

सुख के मूल का उदय होने वाला है। कौन अभागी पीछे रहेगा, इसीलिए यथा—

सीतल मन्द सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर सन्तन मन चाऊ॥
वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृत धारा॥
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुरसाजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गन्धर्व बरूथा॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुविधि लावहिं निज-निज सेवा॥

श्रीहरिः

श्रीराजीवलोचन श्रीराम

यः पृथ्वोभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः ।
संजातः पृथ्वीतले रविकुले, मायामनुष्योऽव्ययः,
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां,
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां, तं जानकीशं भजे ॥

समस्त पाप को हरण करने वाली पावन शुभ कीर्ति का विस्तार सम्पूर्ण ब्रह्म के कार्य का ही सम्पादन, समस्त पापाचारी, दुराचारी, अत्याचारी राक्षसों का विनाश करने के लिए रविकुल भूषण श्रीराम का प्राकट्य हुआ है। समस्त जगत को मंगल शिक्षा तथा लोकानुग्रह के लिए ही श्रीराम का प्राकट्य एवं समस्त कला विलास कर्म हुए हैं। यथा--

यदि ह्य हं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

गीता ३।२३

लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥

—कालिदास

श्रीराम मूर्तिमान् साक्षात् धर्म ही थे।

सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्वलिक्षमस् ।

स्वयं ही शंख चक्र गदाधारी त्रिलोकी नाथ प्रभु ही श्रीराम रूप में हैं। अभी भी भक्त को प्रेमवश दर्शन भी देते हैं, मिलते हैं, दिखाते हैं।

अक्षय्यं मधुहन्तारं, जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात्, स्वस्ति तेस्तु परन्तप ?
हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान् ।
जेहि मारेउ सोइ अवतरेउ, कृपा सिन्धु भगवान् ॥

अनादि काल से सम्पूर्ण चराचर ब्रह्माण्ड का भार जिस पर है जो सबके पालन-पोषण हार श्री हरि प्रभु हैं वही नारायण-पृथ्वी पर धर्मपताका फहराने के लिए श्रीराम हुए हैं। यथा—

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः। एकशृंगो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव। लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
बधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वरः॥

अर्थात् भोग भोक्ता सकल प्रपंच में एक आश्रय आप अखण्ड सच्चिदानन्द हैं। आप ही आदि मध्य अन्त में रहने वाले सत्य-ओंकार आदि नाद स्वर अक्षर हैं। आप ही उत्पत्ति प्रलय पालन के एक मात्र कारण हैं। आप प्रभु मधुसूदन हैं। आप ही लक्ष्मी पति गरुड़ध्वज जगन्नाथ हैं। आप ही चिदाकाश में भासमान ब्रह्म ज्योति हैं। आप ही घट-घट में चर-अचर में समान कृपा से व्याप्तमान एक जगदीश्वर हैं। आप ही सहस्त्रशीर्ष सहस्राक्ष सहस्रों नामों से उच्चारित शक्तिमान् नेत्रवान बलवानों बलियों के भी बल, धनियों धनवानों के भी धन, समस्त विद्याओं के मायके हैं। प्रभु ही सब कुछ हैं।

उमा राम सम हित जगमाही। गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं॥
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

ऐसा स्वार्थ परमार्थ (परस्वार्थ) नीति-प्रीति यथारथ में आप ही जानन हार हैं। आप ही प्राणी मात्र के जननी जनक भगिनी भ्राता सजन सजाती हैं। आप ही सृष्टि के मूल हैं। यह सम्पूर्ण सृष्टि पंचमहाभूतों का विलास विस्तार है।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

इन पंच तत्वों से २५ प्रकृतियों का निर्माण होता है। उन्हीं से गुण द्रव्य पदार्थ, जड़ स्थावर का निर्माण होता है। इन पंच तत्त्वों पर किसी भी मनुष्य पशु पक्षी प्रेत का वश नहीं रहता। ये स्वतः जिससे प्रकाशित बल भाषित समर्थित हैं वही श्रीआनन्द कन्द कौशल्या यशवर्धन श्रीराम हैं। यथा—

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत विनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥

व्यापक, निरंजन, निराकार, अनंत विजय सभी तत्त्वों के प्रकाशक भासक है।

सज्जनों! आज आप उदारमना लगनशील उत्साही श्रोताओं को एक अद्भुत प्रबन्ध सुनाने जा रहा हूँ। श्रीराम ही ब्रह्म हैं। वास्तव में ब्रह्म किसे कहते हैं? वेदान्त दर्शन का द्वितीय सूत्र-यथा—"जन्माद्यस्य यतः।" वेदान्त दर्शन होते हैं। जन्म-स्थिति प्रलय जिसमें, जिसके द्वारा, जहाँ भी, वही परंब्रह्म है। जिसका पंच महाभूतों पर अधिकार है। यथा—

सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवध पति साई ।।

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य ।।

जो चेतन को जड़ कर सकते हैं और जड़ को भी चेतन कर सकते हैं। ऐसे सर्व समर्थ कर्त्तुम-कर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं समर्थ जगदाधार दशरथ नन्दन श्री अजानवाहु कमल नयन नीलाम्बुज स्यामल कोमलाङ्ग अनंग अंग राजित श्रीराम का सभी तत्वों पर पूर्ण अधिकार है । और प्यारे सज्जनों ? भगवान् शब्द का भी शास्त्र यही अर्थ करते हैं । यथा—

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।।

जो सबको उत्पत्ति कर सके, विनाश कर सके अर्थात् गमना गमन जड़ भूतों की गति आगति को जाने, विद्या अविद्या को पहिचाने वही भगवान् है । अपरञ्च—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरितः ।।

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, समस्त धर्म, समस्त यश और सम्पूर्ण बैभव, समस्त ज्ञान वैराग्य ये ही षट् ऐश्वर्य हैं । जिसमें ये पूर्ण हो जहाँ से ही सबको बांटा जाय, जिसका एक बूंद पाकर ऐश्वर्यवान धर्मवान् कीर्तिमान् ज्ञान-बैराग्यवान् प्राणी बनता है, उन्हीं में परिपूर्ण है ।

यथा—जो आनन्द सिन्धु सुखरासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ।।

जो अपने आनन्द समुद्र के सीकर अर्थात् जल कण मात्र के अग्रभाग के समान कण बूंद में त्रिलोकी को आनन्द मग्न कर सकते हैं । वही श्री वैदेही रमण अवधनाथ श्रीरघुनाथ जी महाराज हैं ।

अब हम आपको यह बताना चाहते हैं, आदर प्रेम से देखो कि श्रीरामचरित में प्रभु ने किस-किस तत्त्व पर कब-कब अपना प्रभाव विकसित किया । वैसे तो सर्वत्र ही तत्त्व सर्वतो मुखी होकर विकसित हुए हैं ।

यथा—सब तरु फरे रामहित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ।।
कामद भे गिरि राम प्रसादा । अवलोकत अपहरत विषादा ।।

अपने इष्ट प्रभु के लिए सभी तत्वों जनित हर्ष प्रगट हुए परन्तु प्रभावी दृष्टिकोण कहाँ अपनाया गया है, सुनिये —

श्रीहरिः

पृथ्वी तत्व पर

श्रीविश्वामित्र मुनि के साथ उनके सिद्धाश्रम पर आते समय गंगापार करने के बाद नयनाभिराम श्रीराम-लक्ष्मण ने एक शुष्क नीरस निर्जन बृक्ष-लता, खग रहित पर्वत खण्ड देख कर चकित-हृदय: कारुणीक श्रीराम ने श्रीविश्वामित्र मुनि से पूछा। यथा—

पूछा मुनिहिं सिला इक देखी। सकल कथा मुनि कहा विसेषी।।

गौतम नारि श्राप बस, उपल देह धरि धीर। चरन कमल रज चाहति करहु कृपा रघुवीर।।

हे मुने ? ये शिला कैसो शान्त ऊसर है, कारण बताने की कृपा करें। महामुनि श्रीविश्वामित्र ने कहा। हे राम कोई पर्वत खण्ड शिला नहीं है। अपितु; मुनि गौतम के शाप से महाशापित "यह सुन्दरी अहिल्या महर्षि श्री गौतम जी की पत्नी है। आपके श्री चरणरज से ही इसका उद्धार है। कहते हैं, कि श्रीरघुनाथ जी महाराज के ध्वजांकुश बज्रा रेखांकित—परम पावन योगीन्द्र मुनीन्द्र ब्रह्म रुद्रेन्द्रादि पादारविन्द के श्री नखमणि चन्द्रिका के अग्रिम भाग का मात्र एक कण पड़ते ही अहिल्या जागृति होकर—गै पति लोक अनंद भरी। अर्थात्—

मात्र श्रीचरण रज पड़ते ही महान शिला मुनि की स्त्री बन गई। आज तक सृष्टि में ऐसा चमत्कार कहीं देखा सुना नहीं गया है। क्या बात थी ? श्रीराम का पृथ्वी तत्व पर पूर्ण अधिकार था। वह जब जैसा चाहते थे, पृथ्वी तुरन्त करती थी। यथा: श्री कौशिल्या का बचन है।

मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी।।

यह चमत्कारिक घटना, सारे संसार में ब्याप्त थी। विभीषण भी स्वयं कहते हैं।

जे पद परसि तरी रिषि नारी। दण्डक कानन पावन कारी।।

स्वयं भगवती सीता जी महारानी भी इस घटना से चकित व्यथित होकर ही श्री जनकपुर में स्वयम्बर के समय यथा—

सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अतिभीता।

यही नहीं, सम्पूर्ण जनकपुरी में, आबाल वृद्ध नर नारी में यह घटना प्रकाशित थी। यथा—

परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहिल्या कृत अघ भूरी।।

(४१)

श्रीराम की यह चरण चमत्कारिक दिव्य कीर्ति बुद्धिमान् त्यागी-राजा एवं रंक तक ही नहीं, श्रृङ्गवेरपुर के एक साधारण नाविक तक को इस चमत्कार पर दृढ़ विश्वास था। वह तो डर भी गया था रोजी-रोटी छिन जाने का भय उपस्थित था। यथा—

एहिं प्रति पालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहिं पद पदुम पखारन कहहू॥

पृथ्वी में भी गुण धर्म व्याप्त है। यथा—गन्धवती पृथ्वी। यह गन्ध धारणा, क्षमा, विस्तार की महाशक्ति अचला धरणी को जिससे मिलती है। वही श्रीराम हैं। उनका पृथ्वी तत्त्व पर पूरा अधिकार है।

अपरञ्च विन्ध्याचल श्रीचित्रकूट के वासी उदासी बनवासी तपस्वी महाव्रती महात्मागण भी श्रीरामजी से इस सम्बन्ध में विनम्र निवेदन किया था। यथा—

विन्ध्यके वासी उदासी तपो व्रत धारी महा, बिनु नारी दुखारे॥
गौतम तीय तरी तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली, रघुनायकजू, करुना करि कानन को पगु धारे॥

साथ ही महान् अध्यात्मवादी कवि-अब्दुल रहीम खान खाना जो जाति के मुसलमान होकर भी बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है।

प्रश्न—धूरि धरत नित शीश पै, कछु रहीम केहि काज॥
उत्तर—जेहि रज मुनि पतिनी तरी, सोइ ढूँढत गजराज॥ आदि आदि

उँनका मनसा संकल्प ही सम्पूर्ण पृथ्वी को सशैल वन कानन शस्य स्यामला उर्वरा बसुन्धरा जिससे होती है, अपने नाम रूप गुण को धारण करती है, प्राणियों के भरण-पोषण को माता धरणी रसा उन्हीं के कृपा कटाक्ष मात्र पै होती है।

———

श्रीहरिः

जल तत्त्व पर

सृष्टि के पोषक दूसरे तत्त्व हैं जल। पानी इनकी गति अविरल अनवरत धारवत् विलक्षण है। इसका ही एक नाम जीवन है। इसके बिना कोई प्राणी जीवित रह नहीं सकता। प्राणियों के रक्त को यही संचारित करता है। इसकी ताकत भी महान् है। इसके प्रवाह वेग के सामने किसी भी राजा-बादशाह सुलतान-लीडर-जत्थेदार का वश नहीं चलता। फौज-ऐटम बम का भी इसको डर नहीं। झण्डा, डंडा का किंचित् भय नहीं है। अगर बाढ़ आगई है, नदी तुफानी वेग पर है। या जलनिधि में भयंकर तूफान है। तरंग गगन को छू रही है; आप क्या कर सकते हैं। बाढ़ के सागर को क्या आप रिवाल्वर दिखाकर शान्त कर सकते हैं ? या तोप, टैंक, एटम बम से डरा सकते हैं ? या झण्डा टोपी फड़काकर तूफान से रोक सकते हैं ? कुछ नहीं कर सकते आप। मात्र प्राण काया बचाकर फौरन भागने का प्रबन्ध करिये। आप कुछ भी नहीं कर सकते। सिवा खूब जोर से पलायन के। क्योंकि महान् जल तत्त्व किसी की भी बात नहीं मानते, किसी का शासन नहीं सह सकते। या मूसलाधार वर्षा हो रही है उसको आप क्या कर सकते हैं। हवाई जहाज से गोला वर्षा कर भी आप नहीं रोक सकते। क्योंकि आपका उस पर कोई वश नहीं है। उनकी जल तत्त्व की, जिसके द्वारा उत्पत्ति हुई है, उन्हीं की मात्र आज्ञा ये जड़ तत्त्व मान सकते हैं। यथा—

गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥

ये सिवा श्री हरि के किसो की बात नहीं मानते। भगवान करुणा निधान श्रीराम ने जल पर भी अपना अधिकार संसार को दिखाया है।

श्री रघुवीर प्रताप ते, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥

अपार सागर की भीषण लहरों पर विशाल पर्वत खण्ड तैरते रहे। यह महान् आश्चर्य समुद्र में हुआ। विशाल सेतु बाँधा गया। ८०० मील लम्बा ८० मील चौड़ा पुल बनाया गया था। वह भी सागर पर मात्र चार ही दिन के अल्प समय में सेतु—श्रीराम जी के परम प्रताप के स्मरण करते ही पूर्ण रूपेण तैयार हो गया। पानी पर पत्थर ही नहीं तैरे, वीरभट बानर वाहिनी को भी तारते रहें। यथा—

रामप्रताप सुमिरि मन माँही। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥

किन्हीं-किन्हीं महानुभावों का ऐसा भी कथन है यथा—

जमुना पुल को देखकर, लोग करें अफसोस।
चारहिं दिन नल नील ने बाँधा चार सौ कोस॥
ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परान् ते प्रस्तरा दुस्तरे,
बार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्तेऽपि च,
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः,
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते॥

अर्थात् जो पर्वत खण्ड स्वयं भी डूब जाय, तथा दूसरे किसी को स्वयं पावै तो उसको भी पकड़ कर डुबो दे। ऐसे कठोर पर्वत खण्ड उस दिन स्वयं भी तैर रहे थे पानी पर, तथा किष्किन्धा की वीर बानर भट वाहिनी को भी तार रहे थे। यह कोई विशिष्ट प्रकार के पत्थरों का गुण नहीं था, न सागर का प्रताप था। न इन बीर वानरों का चमत्कार था। अपितु; श्री दशरथ नन्दन रघुकुल भूषण श्रीअवधराज महाराज श्रीरघुराज राम का प्रताप था, जो अभी उदय ही हो रहा था। गुरुत्व घन द्रव्य पानी इतने भार को अपने ऊपर किस बल से तैरा रहे थे। वह परम बल श्रीराम जी का ही था। क्योंकि श्रीराम ही पूर्ण ब्रह्म हैं। इनका जल तत्त्व पर पूर्ण अधिकार है।



श्रीहरिः

पावक तत्व पर

ये अत्यन्त उग्र तेजस्वी संहरणशील भस्मकारक शक्ति वाले जाज्वल्यमान प्रत्यक्ष विकराल कराल तत्व हैं। ये भी अभय निर्भय हैं। इन पर किसी का वश अनुशासन शासन नहीं चलता।

समस्त वृन्दारक वृन्द देवों के ये ही पालन-पोषण हार हैं। समस्त तेजस्वियों में तेजस्वी तेजवान् हैं। येही, पुरुष-पुरातन, यज्ञों के मुख हैं। इनकी महिमा अपरम्पार है। इनसे सभी को महान् भय व्याप्त रहता है। ये सम्पूर्ण चराचर को भस्म करने में सामर्थ्यशाली हैं। समस्त प्रजा जनों के जन्म-मृत्यु के एक तेजस्वी प्रवर साक्षी हैं। ये अति निष्ठुर भी हैं। रोज हवन करो। घी तथा सुगन्धित द्रव्य से नित्य हवन करो, परन्तु; किसी दिन यदि कपड़े को अपनी ज्वाला से पकड़ ले तो फिर दया कथमपि नहीं करते। फिर नहीं सोचते कि यह भगत आदमी है। रोज घी, चावल, तिल, शक्कर से हवन करता है। आज छोड़ दो, यह इन तत्व से कभी भी सम्भव नहीं है। इनको लोभ, क्रोध दिखाने से भी कोई असर नहीं होता। यह अपना काम वखूवी कर लेते हैं। इन पर किसी का शासन है तो उनके मालिक का जो इनको इतनी अपूर्व शक्ति देते हैं। यथा—

बंदउँ राम नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

सूर्य चन्द्रमा और अग्नि का तेज ही संसार में मान्य तेज है। परन्तु वह तेज भी मंगलमय कल्याणमय प्रभु से ही प्राप्त होता है। सब तेजों के परम तेज प्रभु ही हैं। अतः श्री हरि की इच्छा न हो तो अग्नि का क्या मजाल है, जो एक तृण भी जला सके। कहते हैं कि देवासुर संग्राम के बाद सब देवता एक स्थान पर वैठकर परामर्श, दर्प वश कर रहे थे कि हमने अमुक को मारा और मैंने अमुक को मारा। श्री नारायण प्रभु ने सोचा कि देवता लोगों को व्यर्थ का गर्व हो गया है। अतः इन सबों का गर्व खत्म करने के वास्ते प्रभु एक विशाल यक्ष के रूप में देवताओं से कुछ दूरी पर प्रकट हुए। उनकी शरीर कान्ति अपार वलशाली विशाल कलेवर देखकर—सव देवता चकित होकर कहने लगे, अहो? यह विशाल यक्ष कौन है? परिचय करना चाहिए। कहा गया, आप सबमें, जो सबसे बलशाली हो, वही जाय, तो अग्निदेव चले और प्रभु के पास जाकर दूर से पूछा, आप कौन हो? तो यक्ष रूपधारी श्रीहरि, बोले कि आप कौन हो! अग्निदेव वोले, अरे, आप हमें नहीं पहचानते? मैं संसार को भस्म करने वाला महान् अग्नि हूँ।

२ १ ३ ४ ६ ५ ७ ८ ९ १०
ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये, तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।

११ १२ १३ १४ १५ १८ १७ १८ १९ २०
त ऐक्षान्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति॥१॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड श्लाक १)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
निश्चय से परमेश्वर देवों के लिये विजेता हुआ; उसने सृष्टि रचीं। निश्चय में उसे भगवान
८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
की विजय में देव महिमायुक्त हुए; शक्तिमान् हो गये। वे देव विचारने लगे कि हमारी ही यह
१६ १७ १८ १९ २०
विजय है और हमारी ही यह महिमा है।

अनन्त शक्तिमय भगवान् ने सृष्टि का रचा और अग्नि आदि देवों में उसने शक्ति स्थापित की। वह शक्ति देवों ने अपनी समझी अर्थात् यह माना गया कि जगत् रचना देवों की महिमा है। इनसे भिन्न कोई भगवान् नहीं है।

१ २ ३ ५ ४ ६ ७ ८ ९ १२ १० ११
तद्धैषां विज्ञतौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव। तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥२॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड श्लोक २)

१ २ ३ ४ ५ ६
वह ब्रह्म इन देवों को, इनके अभिमान को जान गया। निश्चय से वह उन देवों पर प्रकट हुआ।
७ ८ ९ १० ११ १०
परन्तु उन्होंने उसे नहीं जाना कि यह यक्ष-पूज्यतम कौन है।

१ २ ३ ४ ५ ६ ९ ७ ८ १०
तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति तथेति ॥३॥

१ २ ४ ५ ६ ७ ८ ९
वे देव आश्चर्य में आकर अग्नि को बोले—हे, जातवेद! यह तू जान कि यह यक्ष कौन है?
१०
उसने कहा, बहुत अच्छा।

१ २ ३ ४ ५ ६ ९ ८ १० ७ १२ ११ १३
तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा—अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥४॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड श्लोक ४)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
तब अग्नि दौड़ कर उसके पास गया। यक्ष उसे बोला तू कौन है? उसने कहा मैं अग्नि हूँ। मैं
१२ १३
जातवेदा हूँ।

१ २ ३ ४ १० ८ ९ ११ ५ ६ ७
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

(केनोपनिषद ३ खण्ड श्लोक ५)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
यक्ष ने अग्नि से पूछा कि उस तुझ में क्या शक्ति है ? अग्नि ने कहा, जो यह पृथिवी है इस
८ ६ १०
पर जितने पदार्थ हैं इस सभी को क्षण भर में ही जला कर भस्म कर दूँ यह शक्ति है।

१ २ ३ ४ ५ ७ ८ ६ ९ १० १२ ११
तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति, तदुपप्रेयाय—सर्वजवेन, तन्न शशाक दग्धुम् ।

१३ १४ १५ १७ १६ १९ १८ २० २१ २२
स तत एव निववृत्ते नैतदशकं विज्ञातुं यदतेद्यक्षमिति ॥६॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड श्लोक ६)

१ २ ३ ४ ५
यक्ष ने उसके लिए आगे एक अत्यन्त छोटा सा एक तिनका रक्खा और कहा, इसे जलाओ अग्नि
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
सारे वेग से उसके पास गया, परन्तु; उसको न जला सका। वह अग्नि; वहीं से लौटा, और बोला, मैं
१६ १७ १८ १९ २० २१ २२
इसको नहीं जान सका जो यह पक्ष है।

१ २ ३ ४ ५ ६ ९ ७ ८
अथ वायुमब्रुवन्; वायवेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति ॥तथेति॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड ७ श्लोक))

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
देव तब वायु को बोले; हे वायुदेवर आप जानो कि यह यक्ष कौन है ? उसने कहा, बहुत अच्छा।

१ २ ३ ४ ५ ६
तदभ्यद्रवत्, तमभ्यवदत् कोऽसीति ।

९ ८ १० ७ १२ ११
वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड ८ श्लोक)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
वायुदेव उसके पास दौड़ कर गए ! यक्ष उससे बोला, तू कौन है ? उसने कहा, मैं वायु हूँ,
११ १२ १३
मैं मातरिश्वा हूँ—सूत्रात्मा वायु हूँ।

१ २ ३ ४ १० ८ ९ ११ ५ ६
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमादीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड ९ श्लोक)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
उससे यक्ष ने पूछा, उस तुझ में क्या शक्ति है ? वायु ने कहा. जो कुछ यह भूमि पर है इस
९ १० ११
सब ही को पलक मारते उड़ा दूँ ;

१ २ ३ ४ ५ ७ ८ ६ ९ १० १२ ११
तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति, तदुपप्रेयाय सर्वजवेन, तन्न शशाकादातुम् ।
१३ १४ १५ १७ १८ १९ २०
स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥१०॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड १० श्लोक)

१ २ ३ ५ ६ ७ ८
उसने उसके लिए आगे तिनका रक्खा और कहा, इसको उड़ाओ वह सारे वेग से उसके पास
९ १० ११ ११ १३ १४ १५ १६
गया, परन्तु उसे न उड़ा सका। वह वायु वहों से लौटा और देवों को बोला, मैं इसको नहीं जान
१७ १८ १९ २०
सका, यह यक्षकौन है।

१ २ ३ ४ ५ ६ ६ ७ ८
अथेन्द्रमब्रुवन्, मघवन्नेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति ।
१० ११ १२ १३ १४
तथेति तदभ्यद्रवत् तस्मात् तिरोदधे ॥११॥

(केनोपनिषद् ३ खण्ड ११ श्लोक)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
देव तव इन्द्र को बोले, हे मघवन-धनपते ! तू यह जान कि यह यक्ष कौन है ? वह बहुत अच्छा
११ १२ १४
कहकर उसके पास दौड़ कर गया; परन्तु यक्ष उससे छिप गया।

इस अलंकार में अग्नि वायु देव से दो तात्पर्य है। एक तो यह है कि अग्नि और वायु दो ही प्रबल तत्त्व हैं परन्तु इनमें जो शक्ति है, वह ईश्वर की ही है। उसके बिना ये अकिंचित्कर हैं। दूसरा तात्पर्य अग्नि और वायु से, मुख्य इन्दिय आँख तथा कान से है ! आँख से प्रभु प्रकाशित नहीं होता क्योंकि वह प्रकृति के रूप से ऊपर है। वह कान से भी नहीं जाना जाता। परमात्म-स्वरूप पाँचों इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं। इन्द्र से तात्पर्य विद्युत् और मनोबृत्ति है, बिजली की चमक और मानस-कल्पना भगवान् के स्वरूप को प्रकट करने और जानने में असमर्थ है। यह रूपक अधिदैवत और अध्यात्म दोनों भावों को प्रकट करता है।

१ २ ३ ७ ८ ४
स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम, बहुशोभमाना-

६ ५ ९ १० १३ ११ १२
मुमां हैमवती, तां होवाच किमेतद् यक्षमिति ।।१३।।

(केनोपनिषद् ३ खण्ड १३ श्लोक)

१ २ ३ ४ ५ ६ ८
वह इन्द्र उसी आकाश में बहुत शोभावाली, सुवर्ण-भूषिता. उमा नाम की स्त्री को मिला और
९ १० ११ १२ १३
उसको बोला— यह यक्ष कौन है ?

यहाँ उमा से, अधिदैवत में जगमगाती सूर्य की ज्योति से तात्पर्य्य हैं । अध्यात्म में शुद्ध बुद्धि समझी गई है ।

प्रभु ने कहा कि आप संसार को तो अभी भस्म मत करना और एक तृण, प्रभु ने उठाकर अग्नि के सामने डाल दिया और कहा कि इसको भस्म करो । अग्निदेव ने सारी ताकत लगा दिया, परन्तु तिनका टस से मस नहीं हुआ । अग्निदेव लजा गये और दूर बैठे देवताओं के समूह में आ गये । और कहे कि हमको पता नहीं है कि वह कौन है। तब वायुदेव चले और वही सम्वाद हुआ, वायु भी तिनके को हिला-डुला उड़ा नहीं सके । कहाँ सारे संसार को जो उड़ाने की बात कर रहे थे, तिनका नहीं उड़ा सके तो लज्जित होकर भी वापस चले गये। तब देवराज इन्द्र आये। इन्द्र को आते देखकर परम विशाल यक्ष अन्तर्धान हो गये और आकाश में भगवती उमा का मंगलमय दर्शन हुआ। तथा उपदेश भी दिया । तब देवराज इन्द्र को ज्ञात हुआ कि अहंकारवश हम सब देवता वार्ता कर रहे थे, उसी अहंकार को दूर करने के लिये प्रभु आये । तो सज्जनों ? अग्नि को भी तेज शक्ति बल देने वाले वही महाबलशाली हैं। श्रीरघुकुल भूषण महाबलशाली, महायशस्वी श्रीराम का अग्नितत्व पर कहाँ विस्तार दिखाया गया है, तो सुनिये । यथा—

जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक विभीषन कर गृह नाहीं ।।

जिस समय रावण की कुप्रेरणा से लंका के राक्षसों ने श्री हनुमान जी महाराज की पूंछ में आग लगाई थी, वे सब श्रीहनुमान् जी को जलाना चाहते थे, परन्तु श्रीराम सीता के परम भक्त श्रीहनुमान जी को तो, प्रभु अग्नि नहीं जला सके, परन्तु क्रुद्ध अग्नि ने सारी लंका नगरी में हनुमान जी का संग पाकर सम्पूर्ण लंका, दृष्ट-अदृष्ट, अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष सब भूज डाला । रावण का अन्तःपुर कोषालय, वाचनालय यहाँ तक कि शासकीय औषधालय भी नहीं बचा पाये । विवरण आता है कि जब रण के मुँहाने पर बीर महात्मा सुमित्रानन्दन को मेघनाद के द्वारा शक्ति मारी गयी तो परमयोद्धाबीर लक्ष्मण मूर्छित हो गये, अपने पर, पूर्ण समर्पित भाई की यह दशा देखकर करुणावरुणालय अति कारुणीक श्रीराम व्याकुल हो गये और

और लक्ष्मणजी के विरह व्यथा वियोग में अति खिन्न दुःखी होकर घोर दारुण विलाप करने लगे और चिंतित हो गये। सारी बीर बानर भट वाहिनी भी दुःख के महासागर में डूबने लगी। यह दशा 'श्रीरामादल के प्रधान मंत्री जामवंत ने देखा तो धीरज धर के श्रीराम से प्रार्थना किया कि हे प्रभु! चिन्ता विलाप से बीर लक्ष्मण नहीं ठीक होगें। अतः वीर सौमित्रि को जीवन देने के लिए महान् पुरुषार्थं करना पड़ेगा। आप उदासी छोड़कर, उस उपाय पर विचार करो, जिससे शत्रुहन्ता बीर लक्ष्मणजी बच जाँय और लङ्का जीत लिया जाय। प्रभु बोले! बीर जामवन्त! क्या उपाय पुरुषार्थं करूँ।

कहाँ अयोध्या एकदम उत्तर में और कहाँ सुदूर दक्षिण में लंका। शत्रु की नगरी में इस रात के समय क्या उपाय हो सकता है, कुछ सूझ नहीं पड़ रहा है। जामवंत बोले—महाराज लंका नगरी में एक राजवैद्य सुषेण जी रहते हैं। कहते हैं कि वे धन्वन्तरि की परम्परा के सुयोग्य वैद्य हैं। अतः अगर उनको बुलाया जाय और चिकित्सा कराई जाय तो वीर लक्ष्मण जरूर जीवित हो जायेंगे, इसमें संदेह नहीं है। प्रभु श्रीराम जी बोले। जामवंत! इस आधी रात के समय जबकि शत्रु नगरी में उत्सव हो रहा है, ऐसे भीषण दारुण समय में शत्रु नगरी में जाना, फिर अस्पताल खोजना; फिर वैद्य को लाना अति कठिन कार्य है। श्रीराम प्रभु को चिन्तित् देखा, तो श्रीमहावीर हनुमान् जी महाराज ने हाथ जोड़कर अति ही नम्रतापूर्वक निवेदन किया, कि प्रभो ? आप ले आने-ले जाने, रखने पकड़ने, धरने पहुँचाने आदि इन सब बातों की तो बिल्कुल चिन्ता न करें। यह सब काम बड़ी आसानी से हो जायगा। श्रीप्रभु राम, वीर बजरंगी के उत्साह सम्पन्न उद्‌गार सुनकर अति प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले, बीर! रात आधी बीत गयी है। लंका जाना है तथा वैद्य को लाना है। श्रीहनुमान् जी महाराज बोले; कि अभी जाता हूँ और वैद्यराज को पहले लाता हूँ। प्रभु ने पूछा वैद्य का कमरा, अस्पताल आपको मालूम है कि नहीं ? श्रीहनुमान् जी ने बताया कि प्रभो श्रीसीता जी महारानी को खोजते समय पूरी लंका को चप्पा-चप्पा छान डाला गया है। यथा—

"मंदिर-मंदिर प्रति करि सोधा। देखैं जहँ तहँ अगनित जोधा॥

सज्जनो! - हमने पढ़ा और सुना है कि श्री हनुमान् जी महाराज, वैद्यराज का पूरा घर सोते समय तथा सब अस्पताल भी उठा लाये। हमको एक बार जिज्ञासा हुई कि श्रीमन्हनुमान् जी महाराज तो बहुत बड़े गौ-ब्राह्मण भक्त परम श्रीवैष्णव हैं। ऐसा साहस क्यों किया ? प्रभु ने तो केवल वैद्य सुषेण को ही बुलाया था। असल में बात यह हुई कि रात्रि में वैद्यराज सो रहे थे। श्रीहनुमान् जी महाराज ज्ञानियों में शिरोमणि हैं विचारवान् हैं। सोचा, केवल काया सहित यदि वैद्य को ले जायेंगे, और यदि प्रभु ने कहा कि वैद्यराज! श्री लखन लाल जी की औषधी करो और वैद्यजी ने कहीं कुछ कह दिया कि महाराज दवाई वाली पेटी वहीं कमरे की आलमारी में ही रह गयी है, हम तो शयनावस्था में ही जबरन उठा लाए गए।

अतः हमें फिर वापस लंका पहुँचाइए तो औषधी सम्भव हो सकती है। इसीलिए श्री मारुत नंदन बीर हनुमान जी महाराज ने पूरा अस्पताल ही उठा लिया, और सोचा कि सब दवाई कूड़ी घुट्टा इसमें ही होगा। प्रभु ने वैद्यराज को जगाया और कहा कि लक्ष्मण की औषधी करो, सुषेण ने देखा कि मेरा वानरी सेना में अपहरण कर लिया गया है। चतुर्दिक बीर वानर भटों को देखकर बुद्धिमान वैद्य ने हाथ जोड़कर नम्रता से कहा, प्रभो इस समय की घटना गम्भीर है। औषधी इस समय सुलभ नहीं है। हां, एक नुस्खा उपाय है। यहाँ से साठ लाख योजन की दूरी पर उत्तर दिशा में धवलागिरि द्रोणाचल महापर्वत है। उसी पर संजीवनी मूरि नाम की एक महौषधि है। जिसका प्रभाव रात्रि में ही होता है। अतः आपकी इस विशाल सेना में ऐसा कोई बली वीर पराक्रमी बानर हो तो रातोरात वहाँ जाकर वापस आ सके और औषधी ला सके, तो बीर लक्ष्मण बच सकते हैं, अन्यथा नहीं। श्रीहरि प्रभु पुनः बहुत दुःखी हो गए। कहाँ धवलागिरि, कहाँ एकदम छोर पर लंका, रातोरात में ही जाना तथा आना अत्यन्त कठिन है। फिर श्रीहनुमान् जी महाराज बोले—आप इसकी चिन्ता न करें। सब काम समय से बहुत पूर्व ही हो जायगा। प्रभु श्रीराम ने कहा हनुमान जी तुम तो जा सकते हो और आ भी सकते हो; परन्तु कहीं सूर्य निकल आये तो सब परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। श्रीहनुमान् जी महाराज हाथ जोड़कर बोले; प्रभु ? सूर्य भगवान् के उदय की तो बिल्कुल ही चिन्ता मत करिये। महाराज! हमारा उनका बचपन का ही मेल-जोल है और जन्म लेते ही हमारा उनसे कुछ हल्का-फुल्का सत्संग हो चुका है। महाराज वे हमारा नाम सुन लें, तो कहिए, साल छः महीने तक भी नहीं निकलेंगे। महाराज! इन वैद्यराज ने आपको जो साठ लाख योजन की दूरी बताई है सो प्रभु कोई ज्यादा दूरी नहीं है। अभी बहुत रात बाकी है। आप चिन्ता न करें, प्रभो! ये बीर बानर भट आपकी सेवा आज्ञा में करबद्ध सारा मोह माया त्याग कर प्राणों को हथेली पर रखकर जान देने खड़े हैं। अतः आप मन से विषाद को सर्वथा त्याग दीजिए। वैद्य की अलौकिक दूरी सुनकर आप संतप्त न हों। महाराज! यथा—

नीत्वा लङ्कां सुषेणं पुनरनिलसुतः प्रार्थयामास रामम्।
देवाज्ञां देहि वीराः तवहित करणे प्रस्थिताः सन्ति सर्वे।
लक्षाणामृषष्ठिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो, योजनानां हनूमान्।
तैलाग्नेः—सर्षपस्यस्फुटन रव परस्तत्रगत्वाऽत्र चैमि॥

अर्थात् जो द्रोणागिरि साठ लाख योजन दूर बतायागया है, तो प्रभु! आपका यह सेवक हनुमान् कितनी जल्दी आ जा सकता है, सुनिये! प्रभु अग्नि पर सरसों का दाना रखिये। वह फुटक करके आवाज देकर जितनी जल्दी में उड़ जायेगा, उतनी ही देर में मैं द्रोणाचल जाकर चला भी आऊँगा। क्योंकि श्रीहनुमान जी महाराज की शक्ति अपार है। यथा—

(५१)

मनोजवं मारुत तुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां बरिष्ठम् ।
वातात्मजं बानर यूथ मुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।

महान् बल वेगशाली मारुत के तुल्य पराक्रमी श्रीहनुमान् जी महाराज ने और भी कहा कि महाराज को यदि सूर्य की चिन्ता हो तो कहिए पहले उनकी ही व्यवस्था कर जाऊँ। बाद में धवलागिरि जाऊँ यथा –

"पातालतः किमुसुधारस मानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ।
उद्यत् प्रचण्ड किरणं ननुवारयामि, की नाश पाश मनिशं किमुचूर्णयामि ।।

अर्थात् आप सोचते हों कि धवलागिरि जाने में विलंब लगेगा, तो महाराज कहिये पाताल जाकर अमृत का कुण्ड ही उठा लाऊँ। श्री बीर लक्ष्मण को उसी अमृत कुण्ड में आकण्ठ डूबो दूँ या कहिए चन्द्रमा को निचोड़कर सब अमृत उठा लाऊँ, या कहिए उदित सूर्य को ही पकड़ कर फिर मुख में रख लूँ। या कहिए यमराज महाराज को ही पकड़ कर उनके पाश, झण्डा डण्डा सब तोड़कर चूर्णकर डालूँ। या आप श्रीमन्त प्रभु जो आज्ञा देवें, वही करू ँ। श्री कारुणीक रघुकुल केतु श्रीराम बोले—बीर तुम केवल धवलागिरि से औषधि लाओ। श्रीहनुमान जी ने कहा—महाराज औषधि लाने के पहले श्री वैद्य जी से कुछ बात करना चाहता हूँ। प्रभु बोले कर लो ! श्रीहनुमान् जी महाराज ने वैद्य प्रवर सुषेन से पूछा। वैद्यराज ! वीर रावण की सेना के राक्षस तीनों लोकों में गमन करने में समर्थ हैं।

सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं और फिर रावण ने ही युद्ध की चुनौती पहले दिया है। जो राजा पहले से ही युद्ध की तैयारी करता है तो पहले सैनिक आयुध औषधि खाद्य सामग्रीवह राजा तैयार कर लेता है। फिर रावण ऐसा समझदार व्यक्ति अपने राजकीय औषधालय में इस दिव्य महोषध संजीवनी को क्यों नहीं संचित कराया। सुषेण वैद्य बोले। हे वीर शिरोमणे हमारे राजा रावण ने इतनी संजीवनी एकत्रित कराईं थी कि पूरी लंका के सेना को मैं उस बलसे बीस बार जिंदा कर सकता था, तो श्रीहनुमान् जी महाराज बोले कि, हे वैद्य जी उसी स्टाक में से थोड़ा इधर भी दे दीजिए, तो वैद्य का चेहरा उतर गया। नेत्रों में भयावह विषाद भर कर बोले। हे हनुमान् जो आपने जब लंका जलायी थी न, उसी समय वह मेरा अस्पताल तथा उसका प्रमुख स्टोर रूम भी जल गया था। तबसे नाकेबन्दी के कारण नया माल नहीं पहुँच पाया। पास में औषधि नहीं है, जाना ही होगा। यथा—

"जारा नगरु निमिष एकमाहीं। एक विभीषन कर गृह नाहीं।
ताकर दूत अनल जेंहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।"

इस कथा को सुनकर कैलाश पर बैठी जगदम्बा भवानी भगवती गौरी आश्चर्य चकित होकर पूछ ही दिया कि प्रभो ! विभीषण की झोपड़ी क्यों नहीं जली ? श्री शिवजी बोले, प्रिये अग्नि में जो तेज है वह श्रीराम नाम से ही आता है। अग्नि का बीज मंत्र 'रं' है, फिर अग्नि की सामर्थ्य कहाँ है ? कि उनके भक्त का भवन भस्म करे। अग्नि प्रभु के प्रधान आज्ञाकारी हैं। उन्हीं परम प्रभु की ही आज्ञा से संसार को उष्णता प्रदान करते हैं।

———

अतः हमें फिर वापस लंका पहुँचाइए तो औषधी सम्भव हो सकती है। इसीलिए श्री मारुत नंदन बीर हनुमान जी महाराज ने पूरा अस्पताल ही उठा लिया, और सोचा कि सब दवाई कूड़ी घुट्टा इसमें ही होगा। प्रभु ने वैद्यराज को जगाया और कहा कि लक्ष्मण की औषधी करो, सुषेण ने देखा कि मेरा वानरी सेना में अपहरण कर लिया गया है। चतुर्दिक बीर वानर भटों को देखकर बुद्धिमान वैद्य ने हाथ जोड़कर नम्रता से कहा, प्रभो इस समय की घटना गम्भीर है। औषधी इस समय सुलभ नहीं है। हाँ, एक नुस्खा उपाय है। यहाँ से साठ लाख योजन की दूरी पर उत्तर दिशा में धवलागिरि द्रोणाचल महापर्वत है। उसी पर संजीवनी मूरि नाम की एक महौषधि है। जिसका प्रभाव रात्रि में ही होता है। अतः आपकी इस विशाल सेना में ऐसा कोई बली वीर पराक्रमी बानर हो तो रातोरात वहाँ जाकर वापस आ सके और औषधी ला सके, तो बीर लक्ष्मण बच सकते हैं, अन्यथा नहीं। श्रीहरि प्रभु पुनः बहुत दुःखी हो गए। कहाँ धवलागिरि, कहाँ एकदम छोर पर लंका, रातोंरात में ही जाना तथा आना अत्यन्त कठिन है। फिर श्रीहनुमान् जी महाराज बोले—आप इसकी चिन्ता न करें। सब काम समय से बहुत पूर्व ही हो जायगा। प्रभु श्रीराम ने कहा हनुमान जी तुम तो जा सकते हो और आ भी सकते हो; परन्तु कहीं सूर्य निकल आये तो सब परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। श्रीहनुमान् जी महाराज हाथ जोड़कर बोले; प्रभु ? सूर्य भगवान् के उदय की तो बिल्कुल ही चिन्ता मत करिये। महाराज ! हमारा उनका बचपन का ही मेल-जोल है और जन्म लेते ही हमारा उनसे कुछ हल्का-फुल्का सत्संग हो चुका है। महाराज वे हमारा नाम सुन लें, तो कहिए, साल छः महीने तक भी नहीं निकलेंगे। महाराज ! इन वैद्यराज ने आपको जो साठ लाख योजन की दूरी बताई है सो प्रभु कोई ज्यादा दूरी नहीं है। अभी बहुत रात बाकी है। आप चिन्ता न करें, प्रभो ! ये बीर बानर भट आपकी सेवा आज्ञा में करबद्ध सारा मोह माया त्याग कर प्राणों को हथेली पर रखकर जान देने खड़े हैं। अतः आप मन से विषाद को सर्वथा त्याग दीजिए। वैद्य की अलौकिक दूरी सुनकर आप संतप्त न हों। महाराज ! यथा—

नीत्वा लङ्कां सुषेणं पुनरनिलसुतः प्रार्थयामास रामम्।
देवाज्ञां देहि वीराः तवहित करणे प्रस्थिताः सन्ति सर्वे।
लक्षाणामृषष्ठिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो, योजनानां हनूमान्।
तैलाग्नेः—सर्षपस्यस्फुटन रव परस्तत्वगत्वाऽत्र चैमि ॥

अर्थात् जो द्रोणागिरि साठ लाख योजन दूर बतायागया है, तो प्रभु ! आपका यह सेवक हनुमान् कितनी जल्दी आ जा सकता है, सुनिये ! प्रभु अग्नि पर सरसों का दाना रखिये। वह फुटक करके आवाज देकर जितनी जल्दी में उड़ जायेगा, उतनी ही देर में मैं द्रोणाचल जाकर चला भी आऊँगा। क्योंकि श्रीहनुमान जी महाराज की शक्ति अपार है। यथा—

(५१)

मनोजवं मारुत तुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां बरिष्ठम् ।
वातात्मजं बानर यूथ मुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।

महान् बल वेगशाली मारुत के तुल्य पराक्रमी श्रीहनुमान् जी महाराज ने और भी कहा कि महाराज को यदि सूर्य की चिन्ता हो तो कहिए पहले उनकी ही व्यवस्था कर जाऊँ । बाद में धवलागिरि जाऊँ यथा –

"पातालतः किमुसुधारस मानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ।
उद्यत् प्रचण्ड किरणं ननुवारयामि, की नाश पाश मनिशं किमुचूर्णयामि ।।

अर्थात् आप सोचते हों कि धवलागिरि जाने में विलंब लगेगा, तो महाराज कहिये पाताल जाकर अमृत का कुण्ड ही उठा लाऊँ । श्री बीर लक्ष्मण को उसी अमृत कुण्ड में आकण्ठ डूबो दूँ या कहिए चन्द्रमा को निचोड़कर सब अमृत उठा लाऊँ, या कहिए उदित सूर्य को ही पकड़ कर फिर मुख में रख लूँ । या कहिए यमराज महाराज को ही पकड़ कर उनके पाश, झण्डा डण्डा सब तोड़कर चूर्णकर डालूँ । या आप श्रीमन्त प्रभु जो आज्ञा देवैं, वही करू" । श्री कारुणीक रघुकुल केतु श्रीराम बोले—बीर तुम केवल धवलागिरि से औषधि लाओ । श्रीहनुमान जी ने कहा—महाराज औषधि लाने के पहले श्री वैद्य जी से कुछ बात करना चाहता हूँ । प्रभु बोले कर लो ! श्रीहनुमान् जी महाराज ने वैद्य प्रवर सुषेन से पूछा । वैद्यराज ! वीर रावण की सेना के राक्षस तीनों लोकों में गमन करने में समर्थ हैं ।

सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं और फिर रावण ने ही युद्ध की चुनौती पहले दिया है । जो राजा पहले से ही युद्ध की तैयारी करता है तो पहले सैनिक आयुध औषधि खाद्य सामग्रीवह राजा तैयार कर लेता है । फिर रावण ऐसा समझदार व्यक्ति अपने राजकीय औषधालय में इस दिव्य महोषध संजीवनी को क्यों नहीं संचित कराया । सुषेण वैद्य बोले । हे वीर शिरोमणे हमारे राजा रावण ने इतनी संजीवनी एकत्रित कराई थी कि पूरी लंका के सेना को मैं उस बलसे बीस बार जिंदा कर सकता था, तो श्रीहनुमान् जी महाराज बोले कि, हे वैद्य जी उसी स्टाक में से थोड़ा इधर भी दे दीजिए, तो वैद्य का चेहरा उतर गया । नेत्रों में भयावह विषाद भर कर बोले । हे हनुमान् जी आपने जब लंका जलायी थी न, उसी समय वह मेरा अस्पताल तथा उसका प्रमुख स्टोर रूम भी जल गया था । तबसे नाकेबन्दी के कारण नया माल नहीं पहुँच पाया । पास में औषधि नहीं है, जाना ही होगा । यथा—

"जारा नगरु निमिष एकमाहीं । एक विभीषन कर गृह नाहीं ।
ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा । जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ।"

इस कथा को सुनकर कैलाश पर बैठी जगदम्बा भवानी भगवती गौरी आश्चर्य चकित होकर पूछ ही दिया कि प्रभो ! विभीषण की झोपड़ी क्यों नहीं जली ? श्री शिवजी बोले, प्रिये अग्नि में जो तेज है वह श्रीराम नाम से ही आता है । अग्नि का बीज मंत्र 'रं' है, फिर अग्नि की सामर्थ्य कहाँ है ? कि उनके भक्त का भवन भस्म करे । अग्नि प्रभु के प्रधान आज्ञाकारी हैं । उन्हीं परम प्रभु की ही आज्ञा से संसार को उष्णता प्रदान करते हैं ।

———

श्रीहरिः

आकाश तत्व पर

यह तत्व सभी तत्वों में व्याप्त है। पृथ्वी, जल, अग्नि समीर सभी में यह तत्व अप्रत्यक्षरूप से सभाया है। घटाकाश मठाकाश महाकाश घट से लेकर दिग् दिगन्त ओर छोर तक आकाश है। सभी तत्वों पर एकाधिकार होने से आकाश तत्व पर वैसे ही क्षमता पूर्ण अधिकार हो जाता है।

परन्तु सज्जनों ! श्रीरघुकुल कमल दिवाकर आनंद सिन्धु मुखरासी श्रीरामभद्र महाप्रभु का अपनी लीला में आकाश का भी प्रतिवन्धन किया है। आकाश भी आज्ञाकारी है। उनके सामने विनत है। यथा—

"उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥"

लंका जीतने के बाद प्रभु इच्छागामी पुष्पक से श्री अयोध्या आये और उतरते ही आज्ञा दिया कि तुम कुबेर की अलकापुरी चले जाओ। वह आकाश मार्ग से अलकापुरी चला गया। क्या बात थी प्रभु श्रीराम ही परब्रह्म हैं। आकाश तत्व पर भी उनका उतना ही अधिकार है जितना सभी तत्वों पर। वैसे आकाश का गुण प्रत्यक्ष में शब्द है। शब्दोत्पत्ति आकाशीय गुण है। जिसका आकाश तत्व पर अधिकार होता है उसे सभी गम्य-अगम्य शब्दों पर भी अधिकार होना चाहिए। इसीलिए उन प्रभु की महिमा में कहते हैं यथा -

"बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम् करइ बिधि नाना ॥"

अर्थात् वो प्रभु बिना कान के भी सुन लेते हैं। माने शब्द कहीं भी हो किसी दिशा में गुप्त घर में ही क्यों न हो, प्रभु समर्थ सब सुन लेते हैं। यथा—

तारा ने बालि को पहले ही एकान्त में किष्किन्धा की गुफा में अन्दर समझाया था। यथा—

सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बन्धु तेज बल सींवा ॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥
कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहिं मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥

तारा और बाली की यह गुप्त स्त्री पुरुष, वार्ता श्रीरघुनाथ जी महाराज को कैसे मालूम पड़ गयी। वे बाली को धिक्कारते हुए कहते हैं। यथा –

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।

(५३)

बाली को भी महान् आश्चर्य हुआ कि तारा ने हमको एकान्त में समझाया था, परन्तु दूर पर्वत के शिखर पर सुग्रीव के साथ विराजमान श्रीरघुवंश भूषण श्रीराम को कैसे पता चल गया। "सुनै बिनु काना" आकाश तत्व पर भी प्रभु का एक ही शासन है। अतः यह कठिन नहीं है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः।

आकाश ही जनक है। सबमें समान व्याप्त प्रभु श्रीराम हैं। यथा—

"त्वमेव सर्व लोकानां-निवासस्थान मुत्तमम्।
तवापि सर्वभूतानां निवाससदनानि हि।"

आप ही सर्वं व्यापक सर्वत्र हैं, ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ श्रीराम नहीं हैं। यथा—

तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

महर्षि श्रीवाल्मीकि जी का वचन है—

मोहि पूँछेउ कि रहउँ कहँ, मैं पूँछत सकुचाँउ।
जँह न होउ तहँ देउ कहि तुम्हहिं देखावउँ ठाँउ॥

प्रभु तो अणु-अणु, कण-कण में सर्वत्र समान व्याप्त हैं। भक्त की भक्ति भावना उपासना से उसको उसी भाँति दर्शन देकर कृत कृत्य करते हैं। इतना ही नहीं आकाश के अङ्गवर्ती अङ्गों ने सोचा कि आकाश तो प्रभु सेवा से धन्य हो गया है। अतः अङ्गी लोगों ने भी अपना चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया था। यथा—

"जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। तहँ-तहँ करहिं मेघनभ छाया॥"

मेघ भी सर्वत्र पीछे पीछे छाया करते जा रहे हैं।

श्रीहरिः

समीर तत्त्व पर

महान् वेगशाली बल पराक्रम सम्पन्न वायुदेव की ताकत अपरम्पार है। ये प्राणी के अन्तर तथा बहिश्चर हैं। जीवन के प्राण वायु देव ही हैं। श्वाँस-श्वाँस में अन्दर जाकर बाहर आकर ये ही प्राण शक्ति प्रदान करते हैं। ये ही सुख सौगन्ध देते हैं। पृथ्वी में गन्ध फूलों में खुशबू जीवनधारियों के जीवन को प्रफुल्लित विकसित करते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड में समान गति से व्याप्त वायु तत्व अति ही दुर्धर्ष हैं। महासागर को भी ये ही क्षुभित कर देते हैं।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

गीता ।७।४

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे ये आठ 'प्रकार से प्रकृति मेरी हैं। अतः ये सब प्रभु की अष्टधा प्रकृति हैं, और इनके आराध्य प्रभु श्रीराम ही हैं।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

गीता ।७।६

ऐसा समझो कि सम्पूर्ण भूत इन सभी प्रकृतियों से उत्पत्ति वाले हैं। मैं ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय का स्थान हूँ। अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण मैं ही हूँ।

पुण्योगन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

गीता । ७।९

पृथ्वी में पवित्रगन्ध और अग्नि में तेज मैं हूँ और सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन मैं ही हूँ और तपस्वियों में तप भी मैं ही हूँ। शीतल मन्द सुगन्ध वायु प्रभु की प्रेरणा से ही बहता है, प्रवाहित होता है। यथा—

सानुकूल वह त्रिविधि वयारी। सघट सवाल आव वर नारी ॥

सानुकूल त्रिविधि वयारि सगुन है शोभा है। मन को भी शीतलता, शान्ति सन्तोष जीवन प्रदान करती है।

ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्य गन्ध मनोरमः । हं जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः ।।

वा०रा० उत्तरकाण्ड ९७ सर्ग ११ श्लोक

तदनन्तर दिव्य सुगन्ध से भरपूर परिपूर्ण-मन को आनन्द देने वाले परम पवित्र एवं शुभकारक सुरश्रेष्ठ वायुदेव मन्दगति से प्रवाहित हो सब ओर से वहाँ के उपस्थित जनसमुदाय को आह्लाद-आनन्द देने लगे तो सज्जनों ! वायुदेव की यह महिमा आपने सुनी । एक प्रकरण और सुन लीजिये । वायुदेव के प्रताप का फिर आपको उनके निबन्धन की बात बतायेंगे ।

यथा काशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।।

(श्री.म.भा, गीता. अ, ९ श्लोक ६)

जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला वायु सदा ही आकाश में स्थित है । वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पत्ति होने से सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित है ऐसे जानो । परमात्मा में स्थित होने का हेतु परमात्मा का शक्ति स्वरूप है । वह मानवीय शासन-अनुशासन का हेतु नहीं है । प्रभु प्रेरणा से मन को चित्त की वायु सुख भी देते हैं । दुःख भी देते हैं । क्रोध.काम की अग्नि भी ये ही प्रज्वलित करते हैं । यथा

बहै सुहावन त्रिविधि बयारी । काम कृसानु बढ़ावनि हारी ।।

काम-कृशानु (अग्नि) को बढ़ाने में भी उद्दीपन भाव प्रकट करते हैं । आने वाले सगुन-अपसगुन, होनी-अनहोनी घटना भी बताते हैं । अतः वायु तत्व पर श्रीराम का प्रभाव पराक्रम तो श्रवण शब्द स्पर्श में व्याप्त ही है । अब आपको उनका वायु निबन्धन भी बतलाते हैं । दुखिनी सीता के अन्वेषण गवेषणा करते समय श्री हनुमान जी महाराज को वीर मेघनाद ने जब ब्रह्मपाश में बाँधकर लंका ले गया और रावण की आज्ञा से राक्षसों ने श्री हनुमान् जी महाराज को पूछ में आग लगा दिया तो श्री हनुमानजी महाराज ने दण्ड देना उचित समझा और रावण प्रतिपालित लंका नगरी को जलाने का संकल्प भी किया यथा—

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी । भईं सभीत निसाचर नारी ।।

परन्तु, लङ्का ठीक से जल नहीं रही थी, क्योंकि अग्नि के साथी-पवन देव समीरराज ही है । बिना प्रबल वायु का बल पाये लङ्का जलना कठिन दिख रहा था, तो श्री हनुमानजी महाराज ने मन ने प्रभु का स्मरण किया और प्रभु का चमत्कार भी हुआ । यथा—

हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़िलागि अकास ।।

तत्काल एक पवन की ताकत कौन कहे सम्पूर्ण उनचासों पवन अपने पूर्ण बल पराक्रम से लंका की ओर चल पड़े। सारथी पवन पाकर अग्निदेव धधक उठे और सम्पूर्ण लंका जल गई। श्रीहनुमान जी महाराज का मनोरथ सफल हो गया। उसी समय पवन चले क्या बात थी ? श्रीराम ब्रह्म हैं; समीर तत्त्व पर भी उनका अधिकार है। इस प्रकार श्रीराम ही जीवन में सबके गेय ध्येय हैं। उन्हीं का नाम रूप लीला गुणधाम स्मरणीय है। यथा—

गाइय रामहिं सुमिरिय रामहिं। सन्तत सुनिय राम गुन ग्रामहिं ॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निवाहन हारा ॥

शील स्नेह सौजन्य सौमनस्य की मूर्ति श्रीराम ही हैं। अब सज्जनों ! आप सबको आज श्रीराम प्रभु के पंचतत्वों पर अधिकार की बात संक्षेप में ही बताई है। क्योंकि अभी बहुत कहना है और बहुत कुछ सुनाना है। आप धैर्यशाली उदारमना श्रोताजन अब आगे सुनिये।

(५)

श्री हरिः

अतुलित प्रभुताई

इस सम्वन्ध में नई सूझ प्रभु कृपा से मेरे मन में उपज रही है। जैसे सावन भादो में मेघराजा के अनायास कृपा कर देने पर बसुन्धरा सौभाग्यवती बनकर शस्य श्यामला अनंत वृक्ष पौधे घास पुष्प की जननी भी बन जाती है। नाना प्रकार के द्रुमलता उपजते हैं। उसी भाँति श्री गुरु महाराज की अमृत वर्षिणी कृपादृष्टि इस लघु सेवक पर हो रही है। इसे ही हम श्री प्रभु कृपा समझते हैं। उन्हीं की कृपा से भक्ति आती है और भक्ति के वल पर फिर भगवती भास्वती सरस्वती दौड़-दौड़कर आती हैं। यथा—

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥
जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥

पुनि बंदउँ सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥

तो सज्जनों! श्री गुरु कृपा से ही आज हम इस महान् सागर में अद्भुत मोती खोजने कूद रहे हैं। हम अपने बल पराक्रम से नहीं दर्प से नहीं कुछ कह रहे हैं। हमको पग-पग पर श्री गुरु महाराज की दिव्य दृष्टि उनकी जगाई वह पावन ब्रह्म ज्योति दिखती है। उसी के प्रकाश में हम आपको अद्भुत रत्न दिखाते हैं। वह ज्योति बड़े भाग्य से ही दिखती है। यथा —

दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल विलोचन हीके। मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के॥

हृदय पटल के अदृष्य नेत्र खुल जाते हैं, और सरस्वती निर्झरिणी बनकर प्रवाहित होती है। और अपने श्रृङ्गार से भगवती प्रभु कथा चर्चा में ही बिराजती हैं। यथा—

हिय सुमिरि सारदा सुहाई। मानस से मुख पंकज आई॥
विनय विवेक धरम नयसाली। भरत भारती मंजु मराली॥

विनय विवेक धर्म राजनीति से सज्जित रामकथा के लिये भगवती विधि भवन से भाग आती हैं। सो सज्जनों हमारे मन में भी रामकथा में महान् उत्साह भर रहा है। नई हिलोरें आ रहो हैं। बुद्धि स्थिर हो रही है। मन शान्त भाव से कथा सागर तट पर पहुँचना चाहता है।

दुर्बादलद्युतितनुं तरुणाब्जनेत्रं, हेमाम्बरं वर विभूषण भूषिताङ्गम्।
कंदर्प कोटि कमनीय किशोरमूर्त्तिं. पूर्त्तिं मनोरथभुवां भज जानकीशम्।

नव नीरधर के समान गंभीर नव नील कमल के समान कोमल नीलमणि के समान प्रकाशवाच ज्ञानवान गुणवान श्रीराम का चरित्र शतकोटि प्रविस्तर है। उनके समान तो क्या एक अंश के तुल्य भी कोई नहीं है और न हो सकता है। यथा—

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी काम नदी पुनि गंगा॥
वैनतेय खल अहि सहसानन। चिंतामनि सम उपल दसानन॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्नदान सम रस पीयूषा॥

उनके प्रताप को चारों युगों में ऋषि मुनि भक्त कवि गा-गाकर कृतार्थ कृतकार्य होते आए हैं। विशाल भारतीय हिन्दू आर्य गौरव मण्डित परम्परा अनादिकाल से जिस कथा को अपने जीवन का प्रेरणा श्रोत माना है। आज भी रामायण गाकर साधारण मजदूर किसान क्लान्त परिश्रम जन्म पीड़ा से एकान्त में स्नान करके आसन पर बैठ करके जिस भक्ति भाव तन्मयता से आनन्द पाते हैं।

उसको कल्पना भी हमीं आप राम कथा रस रसिक ही समझ सकते हैं। अतः श्रीराम ही सब कुछ हैं।

एवं परात्मा मनुजावतारो, मनुष्य लोकाननु सृत्य सर्वान्,
चक्रेऽबिहारी परिणामहीनो, विचार्यमाणो न करोति किंचित्।
यत्पाद पंकजपराग सुरागयोगि, वृन्दैर्जितं भवभयंजितकाल चक्रैः,
यन्नाम कीर्तन पराजित दुःख शोका, देवास्तमेवशरणं सततं प्रपद्ये॥

श्रीराम ही विराट हैं, अकथनीय, अवर्णनीय, अतुलनीय, अनिर्वचनीय, अलौकिक हैं। यथा—

काम कोटि छवि स्याम सरीरा। नीलकंज वारिद गंभीरा ।।
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनुमोती ।।
स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन ।।
जावक जुत पद कमल सुहाये। मुनिमन मधुप रहत जँह छाये ।।
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरति बाल रवि दामिनि जोती ।।
कलकिंकिन कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल विभूषन सुन्दर ।।
पीत जनेउ महाछवि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई ।।
सोहत व्याह साज सब साजे । उर आयत उर भूषन राजे ।।
पीत उपरना कारवा सोती। दुहुँ आचरन्हि लगे मनि मोती ।।
नयन कमल कल कुण्डल काना। वदन सकल सौन्दर्य निधाना ।।
सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलक रुचिरता निवासा ।।
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकतामनि गाथे ।।

अपार शोभाधाम प्रभु स्वयं ही आनन्द महासिन्धु हैं। वही सगुण साकार बनते हैं। सिर शोभा श्रीकान्ति ही गुण भूषण सभी के सभी अपना सौभाग्य बर्धन के लिए तथा अपना स्थान दिव्य पाने के लिए दौड़-दौड़कर लिपट जाते हैं। यथा—

सिमिट-सिमिट जल भरहिं तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा ।।

साधारण सज्जन के पास सब सद्गुण सिमिट-सिमिट कर आते हैं। फिर गुणों के अनादि पुराण पुरुष के आने पर तो कहना ही क्या है। वह शोभा वह छवि देखकर मन नयन चाहकर भी नहीं हटा सकते। कल्पना तो भक्तों ने यहाँ तक किया है कि—यथा

जो माँगा पाइअ विधि पाँही। ये रखि अहिं सखि आँखिन माँहीं ।।

मानो, इतने सुकुमार कोमलता की खान प्रभु को देखकर साधारण ग्राम्य बहुयें कातर होकर कह उठीं। सखि इनके माता-पिता कैसे निष्ठुर कठोर हृदयधारी हैं। कल्पनातीत है। यथा—

ते पितु मातु कहहुँ सखि कैसे। जिन्ह पठये बालक वन ऐसे।

इनके माता-पिता ने तो वनवास दे दिया है। परन्तु यदि हमें मिल जाते, विधाता से लाख प्रार्थना करने पर तो सखी वनवास कौन कहे, मैं इनको धरणीवास भी नहीं करने देती, अपितु शरीर के अङ्गरत्न नेत्रों में बन्द करके सदा ही रखती नीचे उतरना तो कौन कहे, मैं पलक भी नहीं खोलती पलक कपाट में ही बन्द रखती। हवा-बयार, तात-बात भी नहीं लगने देती। सज्जनों ! यह उनकी ही बात नहीं है। उस अनुपम रूपमाधुरी का प्रत्यक्ष तो क्या, स्वप्न में भी जिसने छवि का किंचित रूप रस माधुर्य पाया, वह उन्हीं का हो गया। देखो सहृदय भक्त की बात तो आपने सुनी। अव जरा क्रूर हृदयधारियों की रूप रस माधुरी का आनन्द लीजिये। मारीच सागर पार रहता था, मारे डर के उसके तन मन में इतना भय भर गया था कि भृङ्गी कीटन्याय से ,यथा—

जहं तहं मैं देखउं दोउ भाई। भइ गति कीट भृङ्ग की नाई ।।
बिन फर बान राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा ।।

तथा स्वयं रावण को श्री सीताहरण से बिरत करने के लिए समस्त लंका ही नहीं, राक्षस कुल की रक्षा के लिए वह श्रीराम का बल बताता है। यथा—

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा ।।
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै ।।
मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिन फर सर रघुपति मोहिं मारा ।।
सत जोजन आयउं छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं ।।
भइ गति कीट भृङ्ग की नाईं। जहं तहं मैं देखउं दोउ भाई ।।
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ।।

जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर को दंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड ।।

वह क्रूर हृदय रावण का मामा था, राक्षस था। परन्तु त्रिभुवन मोहनी रूप माधुरी की कल्पना व्रह छवि जब कुमारावस्था में देखा था। गयऊ कुमारा आज देखे वहुत दिन हो गये। हृदय रस रूप राशि को निहारने के लिए व्याकुल हैं। यथा—

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा ।।

मन अति हरष जनाव न तेही । आजु देखिहउँ परम सनेही ।।
निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुखपाइहौं ।
श्रीसहित अनुज समेत कृपा निकेत पद मन लाइहौं ।।
निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति. अबसहि बसकरी ।
निज पानि सर संधानि सो मोहिं बधिहि सुखसागर हरी ।।
मम पाछें धर धावत, धरें सरासन बान ।
फिरि-फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ, धन्य न मो सम आन ।।

अति हिंसा पर प्रीतिधारी क्रूर राक्षस भी उस अनुपम रूप रसमाधुरी को प्राप्त करना चाहते हैं। चाहें बध भी भले हो जाय और श्रीअवध के रूप लावण्य की बात नहीं, श्रीजनकपुर के दूल्हा शृङ्गरित श्रीराम नहीं अपितु बलकल वसनधारी उदासी जटिल तपस्वी अभक्ष वायुभक्ष धरणीशायी श्रीराम को देख कर यह दशा थी । यथा—

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनि वेष कीन्ह रति कामा ।।

मानो काम और रति ही उदासी बलकल वसन पहन कर आए हों ।

दृष्ट्वा रामं समासीनं गुहाद्वारि शिला तले ।
चैलाजिन धरं श्यामं, जटामौलि विराजितम् ।
विशाल नयनं शान्तेस्मित चारु मुखाम्बुजम् ।
सीता विरह सन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः ।।

जटा जूटधारी गुहाद्वारि आसन आसीन श्रीराम शान्त विपुल विहंग-राशि को देख रहे हैं। श्रीसीता विरह सन्तप्त हैं। वह शोभा वह सुख सर्व साधारण गम्य नहीं है। जब प्रभु स्वयं ही कृपा करना चाहते हैं तब वह रस बुद्धि उपजाते हैं। अति क्रूर खरदूषण भगिनी अङ्ग भंग से क्षुभित हो गया था और चौदह हजार अति निष्ठुर कर्मा राक्षसों की सेना लेकर पंचवटी पर चढ़ आया था। परन्तु श्रीप्रभु का आमना-सामना होते ही रंग ही बदल गया सब विमूढ़ हो गये । तथा—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी । थकित भई रजनीचर धारी ॥
सचिव बोलि बोले खरदूषन । यह कोउ नृप बालक नर भूषन ॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरुपा । बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

वह कहता है कि हमने अपने सम्पूर्ण जीवन में सुर-नर असुर नाग बहुतों को देखा फिर जीत लिया और अन्त में मार भी डाला परन्तु ऐसा अनुपम पुरुष नर रत्न हमने कभी नहीं देखा और सुनिये, कहता है। हालांकि इन्होंने बहिन की नाक-कान दोनों काट डाली, बहुत बड़ी गलती किया तथापि ये मारने लायक नहीं है। अनुपम हैं। अद्भुत हैं। अलौकिक हैं। लोकातीत हैं। प्रियदर्शन हैं। अवध्य हैं। वह श्याम छबि एक बार किसी पुण्यवशात् भी यदि चित्त में बैठ गई तो कोटि जतन करने पर भी नहीं जाती है। द्रवीभूत चित्त पटल पर आकर नयनाभिराम मूर्ति जाती नहीं है। वह छवि ही ऐसी है। यथा—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नील कंज वारिध गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गंभीर जान जेहिं देखा ॥
भुज विसाल भूषन जुत भूरी । हियँ हरि नख अति सोभा रुरी ॥
उर मनिहार पदिक की सोभा । विप्र चरन देखत मन लोभा ॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ-दुइ दसन अधर अरु नारे । नासा तिलक को बरनै पारे ॥
सुन्दर श्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु संवारे ॥
पीत झगुलिया तनु पहिराई । जानु पानि बिचरन मोहिं भाई ॥
रुप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा । सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा ॥

(६३)

सुख सन्दोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस, कर सिसु चरित पुनीत ।।

विश्वोद्भव स्थितिलयादिषु हेतुमेकं;
मायाश्रयं विगतमायम चिन्त्यमूर्तिम्
आनन्द सान्द्रममलं निजवोंध रुपं
सीतापतिं विदित तत्त्व महं नमामि ।।

विश्वोद्भव पालन प्रलय शक्ति सम्पन्न श्री श्रीराम ही परम विराट भी हैं। यथा—

विस्व रुप रघुबंस मनि करहु बचन विस्वास।
लोक कल्पना वेद कर अंग-अंग प्रति जासु ।।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अंग-अंग विश्रामा ।।
भृकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला ।।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जमदसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ।।
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थिसैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगो जातना। जग मय प्रभु का बहु कलपना ।।

प्यारे श्रोताओं ! सुनते हैं संसार में कहीं कोई पारस नाम की चीज होती है, जो लोहा को कुन्दन हेम सोना बनाती है। यह जड़ धातु का पत्थर का एक चमत्कारिक प्रभाव है। परन्तु प्रभु तो अपने में ही मिला लेते हैं। अर्थात् पारस लोहे को सोना तो बना देती है, पर लोहे को पारस नहीं बना सकती। पर प्रभु स्वरूप पारस मणि उसको भी तत्तद् रूप में ही मिला देते हैं। यथा—

सोइ जानहिं जब देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई ।।

वह उन्हीं का रूप हो जाता है।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पोत अनूपा ।।

परन्तु; सज्जनों! इस विषय में हम आपको एक आख्यान सुनाना चाहते हैं। जब श्रीराम और रावण का लंका में युद्ध चल रहा था, दिनों दिन रावण की घोर पराजय हो रही थी, वीर राक्षस मारे जा रहे थे सेना का नाश हो रहा था, तो परम व्याकुल आकुल होकर रावण अपने भ्राता कुम्भकरण को बहुत यत्न करके जगाया। बहुत मुसीबत में जागा और जागते ही भाई दशकन्धर पर नजर गयी तो रावण को श्रान्त-क्लान्त मलिन, दुःखी, निराश, उदास हतप्रभ् देखा तो उत्साहित होकर पूछा— हे भाई क्या बात है ? यथा—

कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई ।।

तेरा मुख क्यों सूखा हुआ है ? तब रावण ने श्रीसोताहरण, नर-बानर युद्ध लंका दहन का वर्णन सुनाया। सुनते ही प्रसन्न हो गया। ऊपर से बोला तूने, ठीक नहीं किया।

भल न कीन्ह तें निसिचर नाहा। अब मोहिं आइ जगाएहि काहा ।।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहुँ राम होइहिं कल्याना ।।
हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक ।।
अहह बंधु तें कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई ।।
कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देवक। सिव विरंचि सुर जाके सेवक ।।
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा ।।
अब भरि अंक भेंट मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई ।।
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ तापत्रय मोचन ।।

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मांगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ।।

महिष खाय करि मदिरा पाना।
गर्जा बज्राघात समाना ।।

पहले कितने सद्‌विचार आए, रामरूप माधुरी की सराहना किया, परन्तु; यम वाहन वंशज महिष भैंसा को खाकर शराब पिया और करोड़ों घट, फिर क्या कहना था ? साधु वृत्ति पलायन कर गई। आसुरी वृत्ति ने जोर मारा, गरजने तरजने लगा, कूदने फाँदने लगा, दौड़ने धूपने लगा। फिर युद्धभूमि की ओर जाने से पहले रावण से एक बात पूछा कि हे ! भाई यह बात बता कि भगवती आदि शक्ति श्रीसीता तुझ पर प्रसन्न तो हैं ? अगर प्रसन्न हैं तो राम नहीं मार सकते डरो मत। श्रीसीता की कृपा ही श्रीराम की शक्ति है। यथा –

उद्भवस्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्व पुण्यमयी सीता हैं । तेरा परम सौभाग्य है कि श्रीसीता लंका में हैं। परन्तु उनकी हार्दिक कृपाकटाक्ष तुझ पर है कि नहीं। रावण बोला—भाई हमने सब प्रकार से सीता को समझाया है साम, दाम, दण्ड, भेद दिखाया है, परम सुन्दरी मन्दोदरी तक को दासी बना देने का वचन दिया परन्तु उन्हें बोलना तो दूर रहा, मेरी ओर देखा तक नहीं, अपितु मेरी निंदा भर्त्संना किया, डाटा फटकारा; तिरस्कार किया।

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी ।।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ।।

यह सुनकर कुम्भकरण और दुःखी हो गया, फिर राक्षस तो था ही। फिर महिष और कोटि घट मदिरा ने भी अपना प्रभाव जमा रखा था।

नई राक्षसी सूझ उत्पन्न हुई, बोला रावण ! आज जब सीता राम से अलग हैं, श्रीराम वियोग दुःख जन्य ताप से तापित हैं। अकेले में लंकागढ़ में रह रही हैं। तू तो मायावी है, राक्षस है, रामरूप क्यों नहीं बनाता और सीता के पास क्यों नहीं जाता ? एक दिन अर्ध रात्रि में राम का रूप बना। वही कंदर्पदर्प पटीयान दिव्य श्याम तरुण तमालवर्ण शरीर बनाले, बनवासी बलकल जटा-जूट बनाले, अकेले में अशोक बाटिका में श्री सीताजी के पास जा और श्री सीताजी राम समझकर तुझको छू भी ले, तो तुझे राम कदापि नहीं मार सकते। इस राक्षसी युक्ति को सुनकर अभिमानी रावण बोलाकि, हे प्यारे राक्षस शिरोमणि भाई साहब यह रिहर्सल मैं कई बार कर चुका हूँ। कुम्भकरण आश्चर्य से भर गया और बोला कि तुम रामरूप बनाकर अशोक बाटिका में गये, तो क्या हुआ। सफल नहीं हुए। रावण बोला भाई जब-जब मैं राम का रूप बनाता हूँ और सीता की ओर चलने का संकल्प करता हूँ, तब-तब मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और हमारी बुद्धि के भूषण राक्षसी वृत्तियाँ लोप होने लगती हैं। चित्त घबड़ा जाता है।

जब-जब राम रूप हम धारी। परतिय सब लागें महतारी ।।

मन्दोदरी कि अलावा संसार की सभी स्त्रियाँ मुझे मेरी माता कैकसी के तुल्य दिखाई देने लगती हैं और मैं तुरत राम का वेष त्यागकर रावण बन जाता हूँ, क्योंकि रावण का रूप धारण करने पर ही चित्त वृत्ति बदल कर रावणी बन जाती है।

लंका भटोऽथ रघुनंदन बेष धारी। पापो जगाम पुरतो जनकात्मजायाः ॥

सज्जनों ! आपने सुना भला बताओ, जिनका नाम लेने से समस्त अमंगल वृत्तियों का नाश होता है। उन्हीं का रूप धारण इसलिए किया कि परनारी गमन करें, भला कैसे सम्भव है।

जाकर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं ॥
करतल होंहि पदारथ चारी। तेइ सिय राम कहेउ कामारी ॥

श्रीराम सदाचार की मूर्ति हैं।

जिन्हकै लहहिंन रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्हकै नाहीं। ते नरबर थोरे जगमाहीं ॥

शत्रु जिनकी रणभूमि में पीठ नहीं देख पाते। जिनकी दृष्टि कभी भी परनारी पर नहीं जाती। याचक, अतिथि अभ्यागत जिनके दरवाजे पर याचना करने पर "नाहीं" शब्द नहीं सुनता है। अर्थात् जो माँगें सो पाता है, ऐसे नरश्रेष्ठ नरवर पुरुष इस सृष्टि में बहुत विरले हैं। थोरे ही हैं। श्रीराम इस पावन व्रत को बड़ी कठोरता से करते थे। वहाँ प्रसंग आया है कि जब सुग्रीव ने अपने ऊपर बाली के अत्याचार की कथा सुनाई तो श्रीराम द्रवित हो उठे, और दोनों भुजा उठाकर सुग्रीव के समक्ष बाली-वध की प्रतिज्ञा कर लिया। यथा—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान। ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ॥

हे सखा सुग्रीव अब आप निश्चिन्त हो जाइए। विधाता ब्रह्मा तथा महाकालेश्वर प्रभु सदा शिव की शरण जायेगा, तो भी बाली अब मारा जायेगा, परन्तु बालि बल-भय से त्रसित सुग्रीव को विश्वास कम हो रहा था। अतः दुन्दुभि नाम के दैत्य की अस्थि पर चारों तरफ वर्गाकार सात ताड़ के पेड़ लगे थे। जिनकी यह महिमा थी कि जो वीर एक ही बाण द्वारा भिन्न-भिन्न दिशाओं में फैले इन सात ताड़ के वृक्षों को धराशायी कर देगा— वही वीर बाली का बध कर सकता है। यथा—

दुन्दुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥

प्रभु को सुग्रीव ने यह बात बताई तो राजिव लोचन नयनाभिराम श्रीराम ने धनुष पर एक बाण रखा और प्रतिज्ञा किया हे बाण—

(६७)

भावोऽस्ति चेत् कुशिक नंदन पादर्यो में, यद्यस्म्यहं द्विज तिरस्कृत रोषहीनः ।
नान्यङ्गनासुमनः शर सप्त तालान्, भित्वा तदा प्रविश भूतलमाप्यगाधम् ॥

अगर मेरे श्री गुरु श्री विश्वामित्र के चरण-कमलों में मेरी सच्ची भावभरी प्रीति हो, और हमारे वूढ़े विद्वान् सन्त गुरुजन ब्राह्मणों ने मेरा तिरस्कार भी किया हो तो भी मुझे कभी क्रोध न आया हो, एवं श्रीसीता के अतिरिक्त भिन्न किसी दूसरो नारी पर मन से भी मुझमें उदवेग उत्पन्न न हुआ हो, मनसा विकार भी न हुआ हो तो बाण तुम इन सातों ताड़ों को वेधकर अपार धरणी में समा जाओ । ऐसा कहकर बाण छोड़ा, वह बाण बर्तुलाकार ताड़ों को जड़ मूल से ढहाता गिराता हुआ अपार भूतल के अन्तराल में समा गया ।

श्रीहरिः

अतुलित बल

अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मति मन्द जानि नहिं पाई ।।

अयमश्वः पताकेऽयं अथवा वीर घोषणा । सप्त लोकैक वीरस्य दशकण्ठ कुलद्विषः ।।

सातों लोकों के एक वीर श्री रघुनाथ जी के बल पराक्रम की कोई उपमा उदाहरण नहीं है। यहाँ तक कि द्वापर में उन्हीं के अवतार परमानंद कंद श्यामसुन्दर नारायण श्रीकृष्ण प्रभु अपनी पयस्विनी पुष्करिणी निर्झरिणी गीता गंगा में कहते हैं। शस्त्रधारियों में मैं श्रीराम हूँ । रामोशस्त्रभृताम्यहम् । शस्त्रधारियों में श्रीराम के समान न भूतो न भविष्यति होगा। देवराज पुत्र जयन्त ने प्रभु पराक्रम देखना चाहा तो अति दुर्गति को प्राप्त हुआ। अपमान तिरस्कार सहा और एक आँख भी गँवाया । पछताया और रोया ।

सुरपति सुत धरि बायस बेसा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ।।
जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महामंद मति पावन चाहा ।।

जैसे चींटी सागर का थाह लेने चले तो कितने शीघ्र अन्त होगा इसे आप सब समझते हैं। जिनका एक बाण तीनों लोकों में उसके पीछे-पीछे दौड़ता रहा वह भागता रहा, अन्त में—

नारद देखा बिकल जयंता । लागि दया कोमल चित संता ।।

मुनि श्रेष्ठ दयावश बोले—मूढ़ इधर-उधर कहाँ भागता है। जिसका बाण है उसी के पास जा।

पठवा तुरत राम पहिं ताहीं । कहेसि पुकारि प्रनत हित पाहीं ।।
आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि-त्राहि दयाल रघुराई ।।
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ । अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ ।।
सुनि कृपाल अति आरत बानी । एक नयन करि तजा भवानी ।।

कीन्ह मोहबस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ।।

कहते हैं नारद जी महाराज के कहने पर जयन्त शरणागत हुआ। परन्तु चरण शरण ग्रहण करते समय उसने अपनी चोंच मुख तो श्रीजनकनंदिनी महारानी की ओर कर लिया और पूंछ श्रीरामजी का ओर करके दीन हो गया था। परम करुणामयी दया खानि भगवती सीता को अति दया आ गयी और उसकी चोंच पकड़कर प्रभु की ओर कर दिया। दया करुणा से भरे श्रीराम ने एक आँख सदा के लिए फोड़ दिया। जब इन्द्र के पुत्र की यह दशा हुयी तब साधारण बल पराक्रम की बात कौन कहे।

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परे कि सोई।।

सज्जनों ! एक दिव्य कथा सुनो। महाभारत के वन पर्व में यह कथा आती है। एक बार वनवास के समय धर्मात्मा पाण्डव अलकनन्दा के तट पर विचरण कर रहे थे। धवल तरंगिनी भगवती अलकनन्दा अलकापुरी कुवेर की राजधानी से बहकर आती हैं, तो द्रौपदी ने देखा, अलकनन्दा की धारा में एक स्वर्ण कमल बह रहा है। जिसकी मृड़ाल भी सोने की, पंखुड़िया भी सोने की, मकरन्द, पराग, केशर ; सब सोने का ही था। भीम को इशारा किया। वीर भीमसेन बहती धारा से कमल पकड़कर द्रोपदी को स्नेहपूर्वक दे दिया और रानी द्रौपदी ने उसे तुरन्त अपने एक कान में पहन लिया तथा दूसरा कान भीमसेन को दिखाती हुई बोली कि वीर एक और चाहिए ताकि दोनों कानों में धारण कर सकूँ। भीमसेन बोले—कमल इसी नदी में बहकर आया है अतः इसी नदी तट पर कहीं न कहीं जरूर होगा और लाने जाता हूँ। इतना कहकर वीर धर्मात्मा भीमसेन अलकनंदा के किनारे-किनारे उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। चलते-चलते जब विशाल कदली वन आया जहाँ से दो मार्ग हो रहे थे।

भीमसेन सोचने लगे किस मार्ग से जाँय, तो एक मार्ग की ओर एक स्वर्ण पिङ्गल वर्ण का विशाल बानर वैठे देखा। जिसका मुख उदित सूर्य के समान भासमान प्रकाशमान हो रहा था। जिसका शरीर एकत्र पूंजीभूत घनी स्वर्णराशि के समान पीत वर्ण था, जिसकी लांगूल पूँछ अति विस्तृत धरणीतल पर फैली हुई थी, भीमसेन उसी दिशा में चले और पास पहुँचकर जरा गरज कर बोले कि हे वन्दर आप अपनी इस लम्बी पूँछ को वटोर लो ताकि मैं रास्ता पार करके चला जाऊँ एवं आपने अपनी पूँछ को इतना क्यों फैला रखा है कि रास्ता बन्द हो जाय। त्रेता के वीर बोले, वत्स ! यह पूँछ प्रभु ने बनाया है। हमारी बनाई तो है नहीं, जब जवान थे तब काबू में रखते थे। अब यह हमारे संभारे नहीं संभरती। अतः आप उठाकर एक किनारे रखकर चले जाव। भीमसेन बोले ! बन्दर हम तो तुम्हारी पूँछ तो क्या तुमको भी उसी भाँति लाँघ जाते जैसे हमारे वीर भ्राता श्रीहनुमान जी महाराज शत योजन सागर लाँघ गए थे। परन्तु सोचता हूँ, निराकार प्रभु सबमें बसते हैं इसलिए लांघूगा तो नहीं, पर हे बन्दर तुम्हारी पूँछ मैं जरूर हटाये देता हूँ। वे वानरराज बोले—क्या तुम हनुमान जी को जानते हो ? भीमसेन बोले—क्यों नहीं। वे हमारे भाई हैं। वे भी पवन के पुत्र हैं और हम भी पवन के पुत्र हैं। विद्वान् सन्त महात्मा पण्डितों के मुख से शास्त्र पुराणों में उनका मंगलयश मैंने कई बार सुना है। अच्छा बन्दर अब हम तुम्हारी पूँछ को ठिकाने लगाये देते हैं। इतना कहकर प्रबल वीर भीमसेन श्रीहनुमान जी महाराज की पूँछ

को पूरी ताकत से उठाने की बहुत चेष्टा किया, परन्तु पूँछ तो कौन कहे पूँछ के अग्रभाग के घनीभूत रोमराशि को भी भीमसेन उठा नहीं पाये, पसीना, पसीना हो गये। अस्थि के बन्धन-बन्धन शिथिल हो गए, लजा गए और खड़े हो गये, तथा आतुरता श्रद्धापूर्वक युगल चरणों पर गिर गए और बोले आप साधारण वानर नहीं हैं, नहीं तो मैं, पाण्डवों का भ्राता पवन का अंश होकर भी इस पूँछ को हिला-डुला तक नहीं सका। आप अवश्य ही वानरराज श्रीहनुमान जी महाराज हैं। क्षमा करिये हमारे सब अपराध को। आप महान् वलशाली हैं।

तव श्रीहनुमान जी महाराज प्रसन्न हो गए और बोले—वीर तुम जिस स्वर्ण कमल के लिए जा रहे हो वह रास्ता उधर से है। आप इधर मत जाना इधर मुनिजन रहते हैं। इसीलिए मैंने आपको मार्ग वताने के लिए ही यह सब किया था। तव भीमसेन जी बोले, वहुत सौभाग्य है हमारा, जो आपका दर्शन पाया, आज हम धन्य हैं। कृतार्थ हो गए हैं। परन्तु महाराज हमने सुना है कि आप समुद्र को एक ही छलांग में लाँघ गए थे। तो महाराज इसी शरीर से या और कुछ घटने वढ़ने की गुंजायश भी है? प्रभु श्री हनुमान जी महाराज हंस पड़े और बोले, भीमसेन सागर लाँघने का स्वरूप तो अब नहीं हो सकता, क्योंकि वह परिस्थिति भिन्न थी। उस समय का क्रोध अपरंपार था। इधर श्रीराम लक्ष्मण दुःखी थे, उधर राजा सुग्रीव अलग दुःखी थे। भगवती सीता लंका में दुःखित थी। मेरे वीर वानर साथी सागर तट पर आमरण अनशन करके बैठ गये। यथा—

अस कहि लवन सिन्धु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई ।।

सवके दुःख से मैं भी वड़ा दुःखी था तथा रावण के अत्याचार पर क्रोध भी बहुत था। अतः उस समय का वह रूप तो अव सम्भव नहीं है। हमारे लघु रूप को देखकर भगवती सीता को भी सन्देह हुआ था। तव हमने कहा कि वानरी सेना के साथ श्रीराम आयेंगे। राक्षसों का नाश करके आपको सम्मानपूर्वक ले चलेंगे। यथा—

कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ।।
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुरनारदादि जसु गैहहिं ।।

कपि सेन संग संघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ।।
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ।।

तो मेरे रूप को देखकर आश्चर्य करती हुयी भगवती ने हमसे स्नेहपूर्वक पूछा था कि जो वानर सेना, कपिराज सुग्रीव के साथ आयेगी, वे सब आपके ही समान हैं।

हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातु धान अति भट बलवाना।।
मोरें हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा।।
कनक भूधरा कार सरीरा। समर भयंकर अति बलबीरा।।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।

तब भगवती को लंका में उस रात्रि को मेरे स्वरूप को देखकर अति हर्ष हुआ था। उस दूर देश में उनकी जाति भाषा देश का कोई व्यक्ति नहीं था। घोर दुःख में दुःखी भगवती कुत्तों के बीच घिरी हुई हिरणी के समान अति कातर हो रही थी। हमको देखा तो बहुत खुश हुयी थीं।

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जल जाना।।
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।
बार-बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा।।

वीर अगर तुम चाहो तो वह रूप दिखा सकता हूँ। भीमसेन बोले—महाराज इससे बड़ा-छोटा कुछ भी दिखाइए। वीर शिरोमणि वानरराज पराक्रमी श्रीहनुमानजी महाराज ने कहा, अच्छा तो अब देखो। इतना कहकर जब पर्वताकार स्वरूप आकाश मार्ग पर विस्तृत होने लगा, रुद्रावतार श्री हनुमान जी के विराट रूप को जहाँ तक देखते बना, वीर भीमसेन देखते चले गये। परन्तु जब शिखा ग्रीवा का संगम करने लगी, सिर पीठ एक होने लगा तो भीमसेन डर गए और जोर-जोर से चिल्लाकर बोले महाराज अब कृपा करो, छोटे हो जाव, नहीं तो मेरे प्राण निकलने ही वाले हैं—

इतना कहकर के दोनों हाथों से आँख मूँद लिया और धम से धरती पर बैठ गए। श्री हनुमान जी महाराज को दया आ गयी और बोले वीर आँखें खोलो, देखो मैं छोटा हो गया हूँ। भीमसेन बोले न महाराज अब घर जाकर ही आँखें खोलूँगा, मेरे मन में अपार भय समा गया है। आँख खोलते ही लगता है हम पाँच भाई में से चार ही रह जायेंगे। हमारा दिल जोर-जोर से धड़क रहा है। कण्ठ सूख गया है। शरीर पसीना से लथपथ हो गया है। चित्त वृत्ति भ्रमित हो गयी है। सब मिथ्या दर्प का दलन

हो चुका है। अहंकार वह गया है और आपके स्वरूप का बोध हो गया है। प्रभु नेत्र तो अब घर जाकर ही खोलूँगा। श्रीहनुमान जी महराज बोले, अरे तुम वीर क्षत्रिय हो इतना क्यों डर गए। अब आँख खोलो देखो, मैं पहले सरीखे छोटा हो गया हूँ। वीर भीमसेन बोले, महाराज हमको विश्वास नहीं हो रहा है। मैं एक हाथ से आँख मूदें ही रहूँगा और आप जरा पास आइए, मैं एक हाथ से टटोल लूँ। सिर और पूँछ का अन्तर देख लूँ फिर आँख खोल सकता हूँ। श्रीहनुमान जी महराज दया करके पास गए। वीर भीमसेन ने पहले टटोला फिर आँख खोलकर साष्टांङ्ग चरणों पर गिर गए और बोले प्रभु आप स्वयं इतने पराक्रमी थे कि रावण को मारकर श्रीसीता राम को वापस ला सकते थे, इतनी सेना तथा परेशानी क्यों उठवाई आपने ? तब श्रीहनुमान जी महाराज बोले—वीर तुम ठीक कहते हो। मैंने दुःखी सीता से कहा भी था—

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयुस नहिं राम दोहाई ॥

हमने तो भगवती को यहाँ तक कहा था कि आप मेरी पीठ पर बैठो, हम आपको सागर पार पहुँचाये देते हैं। यथा—

पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने।
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी॥
(वा० रा० सुन्दरकाण्ड ३७ सर्ग श्लोक २६)

अर्थात्—देवि आप मेरी पीठ पर बैठिये। शोभने मेरे कथन की उपेक्षा न कीजिए। चन्द्रमा से मिलने वाली रोहिणी की भाँति आप श्रीरामचन्द्र जी से मिलने का निश्चय कीजिए। यथा—

कथयन्तीव शशिना संगमिष्यसि रोहिणी।
मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तराकाशं महार्णवम् ॥२७॥
(वा० रा० सुन्दरकाण्ड ३७ सर्ग श्लोक २७)

मुझे भगवान श्रीराम से मिलना है, इतना कहते ही आप चन्द्रमा से रोहिणी की भाँति श्रीरघुनाथ जी से मिल जायँगी। आप मेरी पीठ पर आरूढ़ होइये और आकाश मार्ग से ही महासागर को पार कीजिये।

नहि मे सम्प्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने।
अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥२८॥
(वा० रा० ३७ सर्ग २८ श्लोक)

'कल्याणि ! मैं आपको लेकर जब यहाँ से चलूँगा, उस समय समूचे लङ्कानिवासी मिलकर भी मेरा पीछा नहीं कर सकते ।

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् ।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥२८॥

(वा० रा० सु० ३७ सर्ग २८ श्लोक)

'विदेहनन्दिनी ! जिस प्रकार मैं यहाँ आया हूँ, उसी तरह आपको लेकर आकाश मार्ग से चला जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं है । आप मेरा पराक्रम देखिये और वीर भीमसेन ! हमने तो भगवती को यहाँ तक कहा था कि सम्पूर्ण लंका को ही उठा ले चलूँ ।

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥३९॥

(वा० रा० सु० ३७ सर्ग ३९ श्लोक)

देवि ! मुझमें पर्वत, वन, अट्टालिका, चहारदिवारी और नगर द्वार सहित इस लङ्कापुरी को रावण के साथ ही उठा ले जाने की शक्ति है ।

तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया ।
विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥४०॥

(वा० रा० सु० ३७ सर्ग ४० श्लोक)

आप मेरे साथ चलने का निश्चय कर लीजिये । आपकी आशंका व्यर्थ है । देवि ! विदेहनंदिनी ! आप मेरे साथ चलकर लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथ जी महाराज का शोक दूर कीजिये । इस पर सीताजी खिन्न होकर बोली—वीर हनुमान तुम्हारी पीठ पर बैठकर चलने में बहुत अनर्थ दिखाई पड़ता है । घोर राक्षसों द्वारा रक्षित होने से पीठ पर जाना सम्भव नहीं दिखता है तथा श्रीरघुनाथ जी का यश मलिन होगा । यथा—

कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्व राक्षसान् ।
राघवस्य यशो ह्लीयेत त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥५७॥

(वा० रा० सु० ३७ सर्ग ५७ श्लोक)

यद्यपि तुम भी सम्पूर्ण राक्षसों का संहार करने में समर्थ हो परन्तु तुम्हारे द्वारा राक्षसों का बध हो जाने पर श्रीरघुनाथजी के सुयश में बाधा आयेगी, अर्थात् लोग यही कहेंगे कि श्रीराम स्वयं कुछ भी

नहीं कर सके, और भीमसेन मुख्य बात साथ न चलने की जो भगवती ने फिर बताई वह सुनकर तो मैं चकित रह गया। और वह कारण भी उनके अनुरूप ही था। फिर मैंने साथ चलने की बात नहीं कही। भगवती ने बताया कि हनुमान्—

भर्त्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम् ॥६२॥
(वा० रा० सु० ३७ सर्ग ६२ श्लोक)

हे वानर वीर पति भक्ति की ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीराम के सिवा दूसरे किसी पुरुष के शरीर का स्वेच्छा से स्पर्श करना नहीं चाहती।

यदहं गात्र संस्पर्शं रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥६३॥
(वा. रा. सु. ३७ सर्ग ६३ श्लोक)

रावण के शरीर से जो मेरा स्पर्श हो गया है, वह तो उसके ज्यादती (बल) के कारण हुआ हैं। उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और बेबस थी। क्या करती ?

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥६४॥
(वा. रा. सु. ३७ सर्ग ६४ श्लोक)

यदि श्री रघुनाथ जी यहाँ राक्षसों सहित दशमुख रावण का बध करके मुझे यहाँ से ले चलें तो वह उनके योग्य कार्य होगा। अतः श्रीसीता जी मेरे साथ चलने को तैयार नहीं हुई थीं; परन्तु हे पाण्डुनन्दन वीर भीमसेन तुमने हमारा शरीर देखा और बल का अनुमान लगाकर ही अकेले लङ्का जीत लेने की बात कही। परन्तु वीर तुमको तो कल्पना भी नहीं हो सकती कि रावण कुम्भकरण कितने वीर थे।

चलत दसानन डोलत धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥

रावण कुम्भकरण के चलने मात्र से ही यह धरती उसी भाँति कम्पायमान होती थी; जैसे मतवाले हाथी के चढ़ने से ही छोटी नौका डगमगाने लगती है। तुम तो विचार तो क्या कल्पना भी नहीं कर सकते कि रावण कुम्भकरण कितने विशालकाय तथा प्रतापी थे। भीमसेन बोले, हमारे और अर्जुन सरीखे रहे होंगे। श्रीहनुमान जी महाराज जोर से हँस कर बोले—उन सब का सम्पूर्ण पराक्रम तो मैं

अब बहुत दिन हो गये क्या बता सकता हूँ। उनके पुत्र का नाम ही मेघनाद था। उसकी साधारण-सी बोली भी प्रलयकाल के मेघ के समान थी और फिर सेना का क्या कहना था ?

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया ।।

फिर भी आपको नमूने के तौर पर उनकी विशालतम् काया के बारे में कुछ बता सकता हूँ। अगर तुम चाहोगे तब। वीर भीमसेन बोले, महाराज जरूर कृपा कीजिये तो फिर श्रीहनुमान् जी बोले तो अच्छा सुनो। अभी जब तुम रास्ते में आ रहे थे, तो अलकनंदा के किनारे विशाल हिमालय पर्वत के ऊपर एक बड़ा विस्तृत वर्गाकार, गोलाकार तालाब आपने देखा होगा और जिसमें खिले हुए कमल-कमलिनी, कुमुद-कुमुदनी. रहे होंगे तथा जो जल, खग, जन गुंजित है, वह गोलाकार तालाब अथाह है। उसमें तुमने स्नान किया। तैराकी किया। अर्घ्यतर्पण किया। सन्ध्या वन्दन किया ! उस तालाब में आपने दैनिक क्रिया अति सानन्द सम्पन्न किया और मन खुश किया, तो वीर भीमसेन वह तालाब नहीं है, अपितु कुम्भकरण की खोपड़ी है। उसको मारते समय श्रीरघुनाथ जी ने सोचा कि सिर जहाँ गिरेगा, विनाश करेगा और धड़ भी जहाँ गिरेगा विनाश करेगा। अतः धड़ के तो कई टुकड़े कर डाले; परन्तु सिर को श्रीरघुनाथ जी के बाण ने लङ्का से फेंका तो हिमालय पर गिरा है और त्रेता की गिरी हुई खोपड़ी युगों बाद भी आप ऐसे प्रबल वीर के लिए थाह लगाने लायक तथा तैरने लायक है। उस समय कितनी बड़ी रही होगी, तुम अब एक मोटी कल्पना कर सकते हो। वीर इस खोपड़ी के आधार पर ही तुम सोच सकते हो कि कितने विशालकाय वीर वे लोग रहे होंगे। रावण कुम्भकर्ण के कार्य बल का अनुमान तो तुमने खोपड़ी से कर लिया होगा और भीमसेन तुम सोचो कि आजानुवाहु राजीव लोचन अमित बल वीर विक्रम ओज-तेज बलशाली श्रीरघुनाथ जी कितने बीर होंगे जी। जिनका एक ही बाण इस विशाल खोपड़ी को लङ्का से लेकर एकदम उत्तर हिमालय पर्वत पर आराम से रख दिया। उनकी भुजाओं के बल वीर्य की कल्पना देवराज सुरराज मघवापुरन्दर इन्द्र भी नहीं कर सकते। फिर मरणधर्मा मृत्यु लोकवासी अल्पवीर्य प्राण क्या कर सकता है।

सक सर एक सोषि सत सागर। तब भ्रातहिं पूँछेउ नय नागर ।।

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहम्
माधवं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकम्
त्वां भजे जगदीश्वरं न रुपिणं रघुनन्दनम्
चिद्घनं घन रुपिणं शरधारिणं धरणीधरम्
श्रीहरिं सुरपूजितं त्रिगुणात्मकं करुणार्णवम्
भुक्तिदं जनमुक्तिदं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनम्
त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ।।

श्रीराम के अतुलित पराक्रम की चर्चा रावण के गुप्तचरों ने भी रावण को बताया था।

सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥

कोटि काल के मानमर्दन की क्षमता जिसमें हो उसके वल पराक्रम को चर्चा करना मानो सूर्य को दोपक दिखाने की भाँति व्यर्थ है।

श्रीहरिः

नयनाभिराम श्रीराम

मनोभिरामं नयनाभिरामं वचोऽभिरामं श्रवणाभिरामम् ।
सदाभिरामं सतताभिरामं वन्दे सदा दाशरथिं च रामम् ।।

श्रीरामचन्द्रजी का स्वरूप अति सुन्दर है । श्रीरामचन्द्रजी मनमोहक हैं, श्रीराम जी का सौन्दर्य आँखों को परम सुख देता है । प्रभु की सुन्दरता का वर्णन करने से वाणी को अति आनन्द और गौरव प्राप्त होता है । जिसका वर्णन सुनने से कानों को कभी तृप्ति नहीं होती । श्रीरामचन्द्र जी सुन्दर है । नित्य सुन्दर है । श्रीराम सहज सुन्दर है । बिना किसी श्रृङ्गार के ही श्रीराम दिव्यरम्य अद्भुत सुन्दर सुरम्य सुषमा सकेलि रम्यदिव्य हैं । श्रीराम नयनाभिराम हैं । उनकी शोभा अकथनीय है ।

ऐश्वर्यं यदपाङ्ग संश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग
च्चित्रं चाखिलमद्भुतंशुभगुणा वात्सल्यस्य सीमा च या
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिसुपद्मेक्षणा
दत्तान्नोऽखिलसम्पदो जनकजारामप्रिया सानिशम् ।।

सौमित्रं रघुनायकस्य चरण द्वंद्वेक्षणं श्यामलम्
विभ्रन्तं स्वकरेण राम शिरसि छत्रं विचित्रं वरम्
विभ्रंतं रघुनायकस्य सुमहत्कादण्ड वाणासने
तं वन्देकमलेक्षणं जनकजावाक्ये सदा तत्परम् ।।

अतः हे भीमसेन श्रीरघुनाथ जी अनुपम अपौरुषेय हैं । वीर भीमसेन विदा माँग कर चलने लगे तो श्रीहनुमान् जी महाराज ने कहा, आपको मेरा दर्शन हो चुका । अतः जो इच्छा हो वरदान माँग सकते हो या कहो तो हम अकेले ही जाकर जिन्ह लोगों ने तुम सबको कष्ट दिया है वध कर डालें या जो चाहो सो माँग लो । तब वीर भीमसेन ने हाथ जोड़कर अति नम्रता से कहा—प्रभु आपकी कृपादृष्टि इतनी है तो उन अत्याचारियों का बध तो हम स्वयं करेंगे । परन्तु महाराज कौरव सेना में भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि अति वरदानी लोग हैं । अतः आपसे केवल एक प्रार्थना है कि आप मेरे भाई अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान रहिए तथा श्रीचरणों में एक प्रार्थना और है कि जब

जब हमारे वीर भाई रणभूमि में सिंह गर्जना करें तो उसी गर्जना में आप भी अपनी महान् गर्जना मिला दीजिएगा, ताकि शत्रुवाहिनी भयाक्रान्त हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाय। इसीलिए महाराज अर्जुन के रथ पर दस हजार किंकर नाम के दैत्य अदृश्यरूप में रहते थे तथा रथ की रक्षा करते थे और नर वीर अर्जुन की रण गर्जना में वे भी अपनी रणगर्जना मिला देते थे। अर्जुन का रथ कभी भी कहीं भी रुकता नहीं था वीर अर्जुन के रथ की पताका पर्वत, कानन वन वृक्ष सबको चीर कर निकलती थी। सम्पूर्ण सेना में अर्जुन का रण हुंकार सबसे तेजस्वी होता था। क्योंकि उस हुँकार में श्रीहनुमानजी महाराज, दस हजार किंकर नाम के दैत्यों की भी अदृश्य रण गर्जना अद्भुत हुआ करती थी। श्रीहनुमानजी महाराज ने तथास्तु कहकर वचन दिया और कुबेर की अलकापुरी जहाँ स्वर्ण कमल होते हैं रास्ता बता दिया और अन्तर्धान हो गये। श्रीआनंदकंद सच्चिानन्द श्रीदशरथनन्दन श्रीराम की शक्ति अपार है। सुग्रीव के कहने से दुन्दुभि अस्थि पर्वत को अंगुष्ठ के अग्रभाग से फेंक दिया, पाताल चला गया। उन्हीं की शक्ति से ही वे बानर भालू लंगूर भी अपार शक्ति-मान हो गये थे। वीर लक्ष्मण को भी उन्हीं की शक्ति का सहारा था। कहते हैं मेघनाद का वध नहीं हो पा रहा था।

उसका पराक्रम दैवी माया से अपराजेय लग रहा था। एक बार तो उसने नर वीर महात्मा लक्ष्मण को घायल कर दिया था। क्योंकि उत्साह उमंगसे लड़ रहा था। वीर लक्ष्मण उसका वह उत्साहित पराक्रम सह नहीं पा रहे थे। वह युद्ध भूमि में प्रवल हो रहा था। तब श्रीमहात्मा नर वीर लक्ष्मण ने देखा कि मैं घिर गया हूँ, ऋपि, पितर देवता, गन्धर्व गरुड़ और नाग भी देवराज इन्द्र को आगे करके श्रीसुमित्रा कुमार लक्ष्मण की रक्षा करने लगे।

ऋषयः पितरो देवा गन्धर्व गरुड़ोरगाः।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥
(वा. रा. यु. ९० सर्ग श्लोक ६३)

अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं संदधेराघवानुजः।
हुताशनसमस्पर्शं - रावणात्मजदारणम् ॥
(वा. रा. यु. ९० सर्ग श्लोक ६४)

तत्पश्चात् वीर लक्ष्मण ने दूसरा उत्तम वाण अपने धनुष पर रक्खा, जिसका स्पर्श आग के समान जलाने वाला था। जिसमें रावण कुमार को विदीर्ण कर देने की शक्ति थी। ऐसा अमोघ वाण वीर लक्ष्मण का था।

सुपत्र मनु वृत्ताङ्ग सुपर्वाणं सुसंस्थितम् :
सुवर्ण विकृत्तं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥६५॥

(७६)

दुरावार दुर्विषहं राक्षसानां भयावहम् ।
आशीविर्षविष प्रख्यं देवसंघैः सर्माचतम् ।।६६।।

येन शक्रों महातेजा - दानवान जयत् प्रभुः ।
पुरादेवासुरे युद्धे वीर्यवान् हरिवाहनः ।।६७।।

अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुष्श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ।।६८।।

लक्ष्मी वाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थ-साधकमात्मनः ।
धर्मात्मा सत्य संघश्च रामोदाशरथिर्यंदि ।
पौरुषेचाप्रतिदन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ।।६९।।

(वा० रा० यु० ९०-६५-६९)

अर्थात् उसमें सुन्दर पर लगे थे। उस बाण का सारा अंग सुडोल एवं गोल था। उसकी गाँठ भी सुन्दर थी। बहुत ही मजबूत और सुवर्ण से भूषित था। उसमें शरीर को चीर डालने की क्षमता थी। उसे रोकना अत्यन्त कठिन था। उसके आघात को सह लेना भी बहुत मुश्किल था। वहा राक्षसों को भयभीत करने वाला तथा विषधर सर्प की भाँति शत्रु के प्राण लेने वाला था। देवताओं द्वार उस बाण की सदा ही पूजा की गयी थी। पूर्वकाल के देवासुर संग्राम में हरे रंग के घोड़े से युक्त रथ वाले पराक्रमी शक्तिमान एवं महातेजस्वी इन्द्र ने उसी बाण से दानवों पर विजय पाई थी। उसका नाम था ऐन्द्रास्त्र। वह युद्ध के अवसर पर कभी पराजित या असफल नहीं हुआ था। शोभा सम्पन्न वीर सुमित्रा कुमार लक्ष्मण ने अपने उत्तम धनुष पर उस श्रेष्ठ बाण को रखकर उसे खींचते हुए अपने अभिप्राय को सिद्ध करने वाली यह बात कही—

"यदि दशरथ नन्दन भगवान् श्रीराम धर्मात्मा और सत्य प्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थ में उनकी समानता करने वाला दूसरा कोई वीर नहीं है। तो हे अस्त्र तुम इस रावण पुत्र का बध कर डालो।

इत्युक्त्वा वाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ।
ऐन्द्रास्त्रेण समायुज्य लक्ष्मणः परवीरहा ।।७०।।

(वा० रा० यु० ९० सर्ग ७० श्लोक)

समरांगण में ऐसा कहकर शत्रु वीरों का संहार करने वाले वीर लक्ष्मण ने सीधे जाने वाले उस वाण को कान तक खींचकर ऐन्द्रास्त्र से संयुक्त करके इन्द्रजीत की ओर छोड़ दिया ।

तद् राक्षसतनूजस्य भिन्नस्कन्धं शिरोमहत् ।
तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ।।७२।।

(वा० रा० यु० ९०-७२)

राक्षस पुत्र इन्द्रजीत का कन्धे पर से कटा हुआ वह विशाल सिर जो खून से लथपथ हो रहा था, भूमि पर सुवर्ण के समान दिखाई देने लगा ।

सज्जनों ! अतः यह बात सिद्ध हो गई कि वीर मेघनाद का वध वीर लक्ष्मण ने नहीं पुण्यात्मा धर्मात्मा सत्य संध श्रीरघुनाथ जी के प्रवल पुण्य प्रताप ने किया, नहीं तो शत्रु युद्ध में अजेय हो रहा था। उसकी वह निर्भीक युद्ध कला देखकर रामादल में वानर भालू भी डर गए थे। देवता, पितर नाग गरुड़ तो वीर लक्ष्मण की रक्षा कर ही रहे थे ।

देखि अजय रिपु डरपे कीसा । परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा ।।
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा । एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ।।
सुमिरि कोसला धीस प्रतापा । सरसंधान कीन्ह करि दापा ।।
छाड़ा बान माझ उर लागा । मरती बार कपटु सब त्यागा ।।

रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान ।।
धन्य-धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान ।।

इतना ही नहीं वीर हनुमान जी जव-जव आवश्यकता पड़ती थी, श्रीराम प्रताप का ही पावन पुण्य स्मरण करते थे । यथा—

राम चरन पंकज उर राखी । चला प्रभंजन सुत बल भाखी ।।

कपिराज सुग्रीव सेतु बाँधने के लिए वीर वानर भट वाहिनी को आज्ञा तो दिया परन्तु समस्त वीर सोचने लगे सेतु कैसे बनेगा कभी बनाये तो थे नहीं । फिर सागर में बाँधना था अतः सब वानर परस्पर एक दूसरे का मुख देखने लगे । कभी अपार सागर की ओर देखते कभी राजा सुग्रीव की ओर देखते । कपिराज समझ गए वीरों तुम्हारे वल पराक्रम से सेतु नहीं बन सकता । अतः ।

राम प्रताप सुमिरि मनमाहीं । करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ।।

तुम पत्थर पहाड़ जो भी डालोगे पानी पर तैर जायेगा। तुम तो केवल निमित्त मात्र हो। सेतु तो श्रीराम का पुण्य प्रवल प्रताप बधायेगा।

इतना ही नहीं, वीर युवराज अंगद रावण की उस राजसभा में जो त्रैलोक्य विजयी कामरूप जानहिं सब माया से भरीथी स्वयं तीनों लोकों को रुलाने वाला वह महादारुण रावण भी उस सभा में स्वयं सदलबल विराजमान था तो वीर अंगद ने ऐसा चमत्कार एवं अजेय पौरुष दिखलाया; जो ऐतिहासिक हो गया। न भूतो न भविष्यति हो गया। ज्यों-ज्यों राक्षस रावण अंगद के संवाद में उग्र होता जाता त्यों-त्यों वाग् युद्ध में वीर अंगद भी अत्यन्त उग्र क्रोधित होते जाते और रावण को तो यहाँ तक कह डाला कि अरे रावण यह बात बताओ कि संसार में और कितने रावण हैं।

कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥
बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥
एक बहोरि सहस भुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु विसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य वदहि तजि माख॥

इतना सुनते ही रावण और राक्षस भटोंसे भरी सभा भी अति लज्जित हो गयी। रावण स्वयं ही लजाकर भी अपनी आत्मश्लाघा का वर्णन करने लगा। वही सिर और शैल वाली गाथा बार-बार सुनाने लगा और श्री प्रभु की किंचित प्रमाद बस घोर निन्दा कर दिया। अंगद जी क्रोध से भर गए और बोले।

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥

अरे अहंकारी रावण श्रीराम तो सर्व समर्थ हैं। उनका यह सेवक क्या कर सकता है—

सेन सहित तव मान मथि, वन उजारि -पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि॥

तब तूने उसका क्यों नहीं कुछ कर लिया। अंगद जी बोले।

रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंद मति कामी॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि काल बस खल मनुजादा॥

फा० ११

तुझे काल ने पका रखा है । रावण केवल भक्षण करने की देर है। तू अहंभाव में इतना हो गया है कि श्रीराम प्रताप को भूल रहा है। यही नहीं उस प्रताप की निंदा भी करता है तो फिर मेरा एक छोटा चमत्कार देख ।

सनुझि राम प्रताप कपि कोपा । सभा माझ पन करि पद रोपा ।।
जौं मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मैं हारी ।।

अगर तेरी सभा में वैठा कोई भी राक्षस मेरा यह एक पैर भी उठा ले तो हे रावण फिरहिं राम सीता मैं हारी, मैं सदा तेरा दास हो जाऊँगा। श्रीराम प्रताप से भरी गर्वीली बाणी सुनकर रावण ने आज्ञा दिया— हे वीरों इस बकवादी बन्दर की टाँग पकड़कर धरणी पर पटक दो। यथा—

सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा ।।
इन्द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भटनाना ।।
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहि सिरु नाई ।।
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती ।।
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ।।
कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ ।।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ ।।
भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग ।।
कोटि विघ्न ते सन्तकर मन जिमि नीति न त्याग ।।
कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि के परचारे ।।
गहत चरन कहि बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा ।।

स्वयं रावण ही क्रोध में भरकर वीर बालीकुमार अंगद के चरणों को पकड़ लिया। तब युवराज बोले—रावण मेरा चरण ग्रहण करने से तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता तो ऐसा करो जैसे तुमने मेरा चरण पकड़ लिया उसी भाँति—

गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ।।

अर्थात् सब बलियों के बल पर भी बल श्रीराम में ही प्रतिष्ठित है। यथा—

रामः परात्मा पुरुषः पुराणो, नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः ।
तथापिमायागुण सङ्गतोऽसौ, सुग्रीव दुःखीव विभाव्यते बुधैः ।।

परमानन्द मय विज्ञान मय मनोमय त्रिगुणातीत श्रीराम माया से ही नर लीला कर रहे हैं। भक्तों को अपार सुख देने के लिए, देवताओं का काज सँवारने के लिए, धरणी का भार उतारने के लिए सगुण साकार मंगलरूप की मंगल प्रतिष्ठापना के लिए, सज्जनों को भक्तों को, सुख देने के लिए कवि पुंगवों को वाणी देने के लिये ही श्रीराम का शुभ अवतार हुआ है।

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं,
बन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ।।

जिनके मंगल दर्शन की लालसा सब प्राणी मात्र में लगी है । आशा भी उन्हीं से ही लगी है। वे ही प्राण धन हैं। भगवान् स्वयं त्रिपुरारी असुरारि कामारि प्रभु शिव सदा ही उन्हीं का मंगल ध्यान करते रहते हैं। उठत बैठत चलत सोवत स्वप्न समाधि सब जगह श्रीराम ही रहते हैं।

तुम्ह पुनि राम-राम दिनराती । सादर जपहु अनंग आराती ।।

महादेव बाबा की समाधि खुलती है तो केवल श्रीराम नाम का ही स्मरण करते हैं और सतासी हजार वर्ष की समाधि के बाद उठते ही—

राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सतीं जगत पति जागे ।।

वयी रसमयी भक्ति के तथा इस पावन कथा के आधार श्रोतमूल हैं। श्री महादेव जी महाराज की वाणी ही यह कथा निर्झरिणी, पुष्करिणी वाणी की जननी है। उन्हीं की कृपा से इस वाणी को शृंगार मिला है। कथा को माधुर्य चातुर्य कवि को मिला है। प्रभु शिवजी बालरूप के ही अन्तरंग प्रथमदर्शी हैं। पहले ही पहल दर्शन की अभिलाषा रखते हैं। उसके लिए आते हैं।

काकभुसुण्डि संग हम दोऊ । मनुज रूप जाने नहिं कोऊ ।।
परमानंद मगन मन फूले । बीथिन्ह फिरहुँ प्रेमरस भूले ।।

काकभुसुण्डि के साथ श्रीशिवजी महाराज जब-जब अयोध्यापुरी में श्रीराम का पावन अवतार होता है तब-तब जाते हैं।

(८४)

अबकी बार जब अवतार हुआ तो श्रीशिव जी महाराज समाधि में थे। तो परम भक्त काकभुसुण्डि जी महाराज श्रीशिव जो महाराज को समाधि से जगाया और कहा कि आप तो समाधि में बैठे हैं, और उधर श्री अयोध्या में प्रभु श्रीराम ने अवतार लिया है। प्रभु श्रीचन्द्रशेखर नीलकण्ठ आशुतोष प्रभु श्रीशिव शीघ्रता में उसी वेष में आतुरता से चल पड़े तो काकभुसुण्डि जी ने कहा कि महाराज इस वेष में चलेंगे तो अपूर्व दर्शन कठिन हो जायेगा। क्योंकि महाराज दशरथ जी को बहुत पुण्य तथा आयु के अन्तिम समय में पुत्र के रूप में प्रभु प्रकट हुए हैं। अतः सवा साल तो महल के बाहर निकलने का प्रश्न ही नहीं है। फिर आप इस विकराल वेष में मुण्डमाल सर्पमाल, व्याघ्र, चर्म, चिता, भस्म, शृङ्गीधारी, कपाली अनंत नाग मंडित मालाधारी आपको इस वेष में भला कौन अन्दर जाने देगा महाराज! आपका यह स्वरूप तो आपके ससुराल वाले भी जो कोमल रस के प्रायः पारखी होते हैं, मधुर रस हो जहाँ रहता है वे लोग भी आकुल व्याकुल हो गये थे। यथा –

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खर भरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥
हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देख अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥
धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥

अर्थात् उस रूप के तेज के सामने धीरजवान ही ठहर सके और होता भी यही हीं—"तस्य रूपं परिपस्यन्ति धीराः।"

बाल गोपाल तो जान-प्रान लेकर भागे और भागे ही नहीं शरीर में महान् भय व्याप्त हो गया। शरीर काँपने लगा—यथा—

गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जमकर धार किधौं बरिआता॥
बर बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

तनछार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत-प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥

जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहिकर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर-घर बात असि लरिकन्ह कही॥

तो श्री महाराज सवा मास तक तो साधारण माता भी अपने बालक को नजर टोना डीठ से बचाती है। फिर महाभागा वात्सल्यमयी करुणामयी पुनीता भगवती कौशिल्या माता ऐसा क्यों नहीं करेंगीं? तो यदि बालरूप उदित दर्शन करना चाहते हैं तो प्रभो इस वेष में मत चलिए। श्री शिव जी मुस्कराये और बोले, भक्त तुम जैसा कहो वैसा वेष धारण कर लेंगे। प्रथम दर्शन प्रभु का होना चाहिए। तो महाराज यह विचारिये कि प्रथम दर्शन किसको-किसको हो सकता है। अतः वही वेष रूप धारण कर लीजिए। श्रीशिवजी महाराज हँसे और बोले तुम ही बताओ कि कौन-सा रूप बनाया जाय, तो परम भक्तराज श्रीकागभुसुण्डि जी बोले कि हे महाराज सुनो। प्रथम जन्म होते ही आवश्यकता ब्राह्मण ज्योतिषी की पड़ती है। अतः यदि आप ज्योतिषी जी महाराज बन जायँ तो तुरन्त दर्शन हो जायेगा। श्रीशिव जी महाराज थोड़ा मुस्कुराकर बोले ठीक है, हम तो ज्योतिषीजी महाराज बन जायेंगे और भक्त तुम क्या बनोगे। तो कागभुसुण्डि जी महाराज ने कहा कि हे महाराज आप कोई साधारण ज्योतिषी तो बनेंगे नहीं। काशीपुरी के ज्योतिषाचार्य बनकर चलेंगे तो इतने बड़े यजमान के यहाँ जाना फिर इतने बड़े ज्योतिषी का जाना महाराज अकेले कैसे सम्भव हो सकता है और बिना शिष्य के गुरु की शोभा भी ठीक नहीं लगती। अतः मैं आप का एक लघु सेवक पोथी, पंचाग, पत्रा, आचमनी, आसन, कमण्डल, जन्मपत्री का सामान स्याही सब लेकर श्रीचरणों के पीछे-पीछे महल में प्रवेश पा जाऊँगा और जब रोक-टोक होने लगे तो आप भी कह दीजिएगा कि यह हमारा चेला है भाई अन्दर आने दो तो महाराज हमको भी कोई नहीं रोकेगा। आपके पुण्य प्रताप से शिष्य बनकर ही दर्शन लाभ करके जीवन को सुफल धन्यवादी बना लूँगा।

राम चरन वारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं।

श्रीशिव जी महाराज कागभुसुण्डि के इस खोजपूर्ण वाणी से बहुत प्रसन्न हो काशीपुरी के बहुत बड़े ज्योतिषी महाराज बनकर श्रीअवधपुरी पधारे। जाते ही श्रीअयोध्या के सिंह द्वार पर आतुरता आशा अभिलाषा श्रीराम दर्शन की अति तृष्णा में पहुँच गए और द्वारपालों से कहा, अन्दर खबर करो, हम काशी से आए हैं द्वार पर अपार भीड़-भाड़—

महाभीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाय पषान पवारे॥

इस अपार भीड़ में दो ब्राह्मणों की कौन सुनता, जहाँ सारी प्रकृति, देव, पृथ्वी वालों की धकापेलि मची है वहाँ भला सीधे सादे ब्राह्मण ज्योतिषी वह भी दूर देश का कहाँ पहुँच सकता है द्वारपालों ने बड़ी नम्रता से प्रणाम करते हुए कहा बाबाजी यहाँ श्रीअयोध्या में बहुत बड़े-बड़े ज्योतिषी जी महाराज रहते हैं। स्वयं ब्रह्मा के पुत्र तथा उनकी लेखनी को भी छेकने वाले धर्मात्मा त्रिकालज्ञ महात्मा वशिष्ठ यहाँ ही रहते हैं और राजपुरोहित भी हैं।

जोइ गोसाईं वह विधि गति छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

तो महाराज श्रीवशिष्ठ ने जिस जातक के ग्रहदशा देख दिया हो भला फिर दूसरे साधारण ज्योतिषी को कोई क्या दिखायेगा, और फिर वह देखेगा भी क्या ? केवल उन महर्षि की कही हुई वाणी ही दुहरायेगा। फिर जब दुहराना ही सुनना है तो पहले वाला ही फलादेश इष्ट है। अतः आप आदर पूर्वक जाइए जब कभी फिर जरूरत अनुष्ठान, पूजा की, दान दक्षिणा की होगी तब आपको बुला लिया जायेगा। श्रीशिवजी महाराज थोड़ा खिन्न हो गये और सरजू जी के किनारे जाकर स्नान मज्जन करके कागभुसुण्डि से पूछा कि भक्त अब क्या होगा। दर्शन तो जरूर से जरूर ही करके जाना है। चाहे जितना दिन भी लगे और उस परमोत्सव में श्रीअयोध्या की गलियों में प्रेम-विभोर होकर शामिल हो गये और श्रीचरणाङ्कित धूरि में प्रसन्न भाव से आनंदातिरेक में भ्रमण रमण विचरण करने लगे। फिर सोचा, ऐसे काम नहीं चलेगा। जरा अपना परिचय प्रचार भी करना चाहिए। ऐसा विचार मन में करके श्रीमहादेव जी महाराज कोई भी सामने मिलता या दिखता तो तुरन्त बिना कुछ पूछे ही उसका भूत, भविष्य, वर्तमान सब एक साँस में ही बता जाते, वह सुनकर चकित रह जाता, ठिठक जाता, धीरे-धीरे श्रीअयोध्या में यह खबर फैल गई कि भाई काशी नगरी से एक चेला सहित बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य पधारे हैं, जो बिना जन्म कुण्डली हस्तरेखा देखे ही सब कुछ भूत भविष्य वर्तमान बता जाते हैं। जो कहते हैं वही होता है और जो हो रहा है उसे भी सटीक ही बताते हैं। त्रिकालग्य हैं। सर्वज्ञ हैं। हस्तामलक समान सारा संसार जिनको दिखाई देता है। साथ में एक सुन्दर सुघर, सलोना भक्तराज शिष्य प्रवर भी हैं। इसी भाँति श्रीअवध में श्रीराम दर्शन की लालसा से कई दिन बीत गए। जब-जब सिंहद्वार पर जाते द्वारपाल रोक देता, अन्दर जाने नहीं देता।

श्रीशिव जी महाराज व्यथित हो गए और अपने प्रियभक्त कागभुसुण्डि जी से कहा, कैलाश छोड़े बहुत दिन बीत गए। प्रभु दर्शन नहीं हुआ चिन्ता बढ़ गई है। वहाँ घर में भी कोई नहीं है। श्री शंकर जी के परिवार में भी बहुत विरोधाभास है। श्रीशिव जी महाराज रहते हैं तो ठीक है। नहीं तो एकएक को सदा भय बना रहता है।

अत्तुं वांछति शाम्भवो गणपते राखुं क्षुधार्तः फणी।
तं च स्कंद शिखी तथा गिरिसुतो सिंहोऽपि नागाननम् ॥

गौरी जह्नु सुता मयूसतिकलां दग्धा ललाटो नलः।
निर्विण्णः स पपौ कुदुम्ब कलहा दोशोऽपि हालाहलम् ॥

स्वामी कार्तिक—

क्या है कि घर में जो श्रीगणेश जी की सवारी है उसे श्रीशंकर जी महाराज के कण्ठ का हार नागदेव सदा खाना चाहता है। मौके की ताक में सदा रहता है और उस साँप को, जो कण्ठहार है श्री सेनानी स्कंद का मयूर सदा नजर लगाये रहता है। श्रीशिवजी महाराज की सवारी जो श्रीनंदीश्वर जी हैं उन्हें भगवती श्रीजगदम्बा का बाहन सिंह जब देखो तब गुर्राता रहता है। सदा खतरा बना रहता है।

घर में ही गंगा गौरी का रोज झगड़ा मचा रहता है। श्रीगौरा कहती हैं अरे आप तो गंगा को शीश पर चढ़ाये रहते हो, और श्रीशिव जी महाराज का जो तीसरा नेत्र है वह मस्तक पर विराजमान शीतल चन्द्रमा को हमेशा भस्म करने की ताक में रहता है, घर में रोज विरोधाभास है और श्रीशिव जी बोले भक्त कागभुसुण्डि दोनों पुत्र भी कभी-कभी बाल विनोद में झगड़ जाते हैं। घर रहना जरूरी है। परन्तु कई दिन बीत गया। एक बार कैलाश में धवल गिर विशाल वट वृक्ष के नीचे श्रीशिव जी महाराज के दोनों पुत्र खेल रहे थे। षडानन और गजानन जी महाराज। खेलते-खेलते कोई विवाद हो गया, श्रीगणेश जी महाराज विद्या बुद्धि के अवतार हैं कार्तिक स्वामी मूर्तिमान बल पराक्रम ही हैं।

तैंतीस कोटि देवताओं के प्रधान सेनापति हैं। ओज, वीर्य, बल विक्रम रण कुशलता से अति सम्पन्न हैं। विवाद में झगड़ा हो गया और वीर कार्तिक सेनानी ने थोड़ा श्रीगणेश जी महाराज के कान पकड़कर घुमा दिया। यानी कान उमेठ दिया। इस दर्द से श्रीगणेश जी महाराज जोर से रोने लगे। पर्वत की विशाल गुफा से श्रीभगवती उमा ने गणेश जी का रोदन सुना तो वहीं से पूछा कि हे बेटा गणेश क्यों रोते हो ? तब रोते हुए श्रीगणेश जी महाराज ने बताया कि माँ इन षडानन ने मेरे दोनों कान जोर-जोर से ऐंठ दिये हैं, तो भगवती थोड़ा नाराज होकर कार्तिकेय से बोली—स्कन्द तुमने अपने छोटे भाई के कान क्यों ऐंठ दिये ? तुम्हारे छोटे भाई के कान कुछ यदि बड़े हैं तो तुम्हारे ऐंठने के लिए तो नहीं हैं। ऐसी गलती क्यों किया ? तो वीर स्कन्द ने कहा कि हे माँ शरारत तो इन्होंने ही पहले किया था। मैं खेल रहा था तो ये दौड़े-दौड़े आये और मेरी आँख गिनने लगे। कहने लगे दो-दो चार दो छ दो आठ दो दस दो बारह। तो हमको रंज आ गया माँ और गलती हो गयी क्षमा करो, अब भविष्य में ऐसी गलती नहीं करूँगा भगवती दयालु भवानी उमा ने श्रीगणेश जी महाराज को प्रेम से डाँटते हुए कहा कि हे गणेश ऐसी गलती क्यों करते हो ? एक बार गिन लो—रोज-रोज बार-बार गिनने की क्या जरूरत है। यह गलत आदत है। तब रोते हुए श्रीगणेश जी महाराज ने कहा—माँ गलती तो इन्होंने ही पहले किया है और बताया नहीं आपको। भगवती बोलीं पहले इन्होंने क्या गलती किया था। श्रीगणेश जी महाराज बोले कि हे माँ मैं तो अकेले बैठा पढ़ रहा था तब ये दौड़कर मेरे पास आये और मेरी नाक नापने लगे कहने लगे एक हाथ एक बीता ८ अंगुल है तो मैं झट से इनकी आँख गिनने लगा तो इन्होंने मेरे कान उमेठ दिये। भगवती सुनकर जोर से हँस पड़ी।

रे हेरम्ब किमम्ब रोदिसि कथं कर्णौ लुठत्यग्निभूः।
किं तेस्कन्दविचेष्टितं ममपुरा संख्या कृता चक्षुषाम्॥

नैत्तत्ते ह्युचितं गजास्य चरितं नासामिमीतेम्बमें।
इत्थंवं सहसा विलोक्य हसिता गौरी वचः पातुमाम्॥

शिव जी ने कहा—हे कागभुसुण्डि दर्शन भी नहीं हुआ, इधर कैलाश में क्या होता होगा चिन्ता हो रही है। उधर प्रभु श्रीराम ने सोचा कि परम वैष्णव भक्त श्रीशिवजी महाराज दर्शन करने आये हैं, और ये लोग उनको अन्दर आने नहीं देते। कोई लीला करनी पड़ेगी और श्रीशिवजी महाराज को दर्शन देना पड़ेगा। ऐसा विचार कर परम कारुणिक रघुकुल केतु श्रीरामने एक माया रची, और सबेरे से ही रोना शुरू कर दिया। महाभागा कौशिल्या ने बहुत उपाय किया, परन्तु रोना बन्द नहीं हुआ और श्रीराम जी को रोते देखकर चारों भाई अपने-अपने पलने में जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया और हाथ-पैर भी झटकने लगे। श्री कौशिल्या अम्बा डर गईं। तुरन्त धर्मात्मा कुल गुरु पुरोहित वशिष्ठ जी महाराज को बुलाया गया। उन्होंने भी दान पुण्य झाड़-फूँक मन्त्र-तन्त्र यन्त्र किया, परन्तु तत्काल कोई लाभ नहीं हुआ। महाराज चक्रवर्ती दशरथ जी को खबर गई। आतुरता से राजमहल आये। चारों पुत्रों ने कुहराम मचा रखा था। श्रीदशरथ महाराज, वशिष्ठ, कौशिल्या, कैकेई, सुमित्रा समस्त राज परिवार चिन्ता के महासागर में डूब रहे थे कि क्या किया जाय? सोच रहे थे कि तबतक द्वारपाल आए और हाथ जोड़कर महाराज चक्रवर्ती श्रीदशरथ जी से निवेदन किया कि दो ज्योतिषी रोज-रोज आकर फाटक की धरती खोदे जा रहे, हटाओ तो हटते नहीं, भगाओ तो भागते नहीं, जाने को कहो तो जाते नहीं। महाराज वे दोनों अन्दर आने के लिए अति लालायित हैं। हम लोग परेशान हो गए हैं। आप जैसी आज्ञा देवे वैसा उन सबके साथ किया जाय। सुनकर श्रीदशरथ जी महाराज बोले। आज तो चारों बालकों को किसी की नजर टोना, डीठ लग गयी है। फिर किसी दिन आने को कहो। कहाँ से आए हैं वे दोनों। द्वारपाल बोले काशी से आए हैं। सुनते ही पुत्र वत्सला भगवती कौशिल्या ने द्वारपालों को रोका और पूछा दो पण्डित जी हैं। काशी वाले आए हैं।

जरूर से जरूर आने दो। फौरन अन्दर आदरपूर्वक लाओ। श्रीदशरथ जी महाराज ने कहा ठीक से जानती बूझती हो कि बिना जाने-बूझे ही अन्दर बुला लिया है, तो कौशिल्या जी ने महाराज से कहा। अरे आपको अभी तक इनका परिचय पता ही नहीं लगा। बहुत बड़े ज्योतिषी हैं। हमारे सेवक सखियों ने सब बताया है। बड़े सिद्ध महापुरुष हैं। साथ में एक छोटा चेला है, पोथी, पत्रा, पंचाग, आसन लिए रहता है वह भी लगता है अच्छा पण्डित है। श्रीदशरथ जी महाराज ने भी आज्ञा दे दिया! द्वारपालों ने जाकर कहा, चलिए पंडित जी बाबा, महाराज ने आपको बुलाया है। आपका भाग्य खुल गया है। अति आकुल, व्याकुल श्रीशिवजी महाराज कागभुसुण्डि को लेकर शीघ्र राजमहल के अन्दर प्रवेश किया। दर्शनाभिलाषी चतुर नेत्र चारों ओर प्रभु को खोज रही थी। अन्दर जाकर जब दृश्य देखा तो श्रीशिव जी महाराज भी करुणा के वशीभूत हो गये। श्रीनारायण के रोने से सारा राजमहल दुःखी खिन्न देखा तो स्वयं भी दुःखी हो गये। परन्तु भाग्यमती कौशिल्या अम्बा ने तुरन्त चरण छुआ और चरणों को धोया, दिव्य आसन पर बैठाया और आसन वसन लाई। बहुत आदर किया और कहा कि हे महाराज नजर, टोना, डीठ झारना भी आता है कि नहीं, आज सबेरे से ही चारों कुमारों को किसी की नजर लग गई है। दूध नहीं पीते, रोना बन्द नहीं करते। हम सब लोग इसीलिए दुःखी हैं। श्रीशिव जी महाराज समझ गए कि प्रभु को हमको दर्शन देना था इसीलिए यह नटखट लीला किया है। महाराज

श्रीशिवजी बोले, अरे मैया तू घबड़ा मत। मैं तो नजर, टोना, डीठ का ही मुख्य काम करता हूँ। कैसी भी नजर-टोना हो, एक मन्त्र की एक फूँक से ही भगा देता हूँ। ज्योतिष का काम तो मेरा चेला करता है। मैं तो मैया झाड़-फूँक के काम में ही महारत रखता हूँ। अब सब ठीक हो जायगा। हे मैया तुम सब चारों कुमारों को अपनी-अपनी गोद में ले लो। जब हम मन्त्र पढ़कर फूँक मारे तो तनिक मंगल अंचल पट हटा दीजिएगा। ताकि फूँक ठीक-ठीक लग सके। माता ने वैसा ही किया, चारों ललन अपनी-अपनी मातुश्री के गोद में विराजमान थे। परन्तु रोना कम नहीं हुआ। प्रभु श्रीशिवजी ने सोचा, इनको अब कौन मन्त्र से झाड़ूँ। क्यों भगवती श्रुति, शास्त्र, पुराण सब इनके श्वांससार भूत अंग ही हैं। अतः इनको कौन से मन्त्र से फूँक मारूँ। तो श्रीशिवजी ने सोचा अपना जो सिद्ध मन्त्र है उसी से झाड़ूँगा। अतः श्रीराम को राम मन्त्र से झाड़ना शुरू कर दिया।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत् तुल्यं श्री राम नाम वरानने॥

इस मन्त्र की एक फूँक ने ही अपना अद्‌भुत चमत्कार दिखाया और मातु गोद में ही श्रीराम जी महाराज खिलखिला कर हँस पड़े। श्रीराम जी महाराज को हँसता देखा तो चारों भाई हँस पड़े। कौशिल्या, श्रीदशरथ सारा राज समाज जो अभी तक शोक मग्न था प्रसन्न हो गया। यथा —

अवध आजु आगमी एक आयो।
करतल निरखि कहत सब गुन गन बहुतन्ह परिचय पायो॥
बूढ़ो बड़ो प्रमाणिक ब्राह्मण शंकर नाम सुनायो।
संग शिशु शिष्य सुनत कौशिल्या भीतर भवन बुलायो॥
पांय पखारि पूजि दियो आसन-असन वसन पहिरायो।
मेल्यो चरन चारु चारिउ सुत माथे हाथ दिवायो॥

श्रीकौशिल्या माता के आनन्द का पारावार नहीं रहा। बोलीं महाराज बहुत सिद्ध मन्त्र है। एक ही फूँक में चमत्कार हुआ। श्रीशिव जी बोले—मैया इस मन्त्र को जपते बहुत दिन बीत गया। अब कौशिल्या जी ने तुरन्त श्रीराम प्रभु को आँचल से निकाला और बोलीं। बेटा, बाबा जी महाराज के चरण छू लो और सबको कहा कि चारों पुत्रों को लाओ। ऐसे सिद्ध महापुरुष घर कब पधारते हैं। पहले श्रीरघुनाथ जी महाराज को गोद में लेकर श्रीशिव जी की ओर बढ़ी। श्रीशिवजी महाराज डर गए और सोचा कि नादानी में मैया बिना जाने कैसी गलती करने जा रही हैं। मैं तो उनके चरणकमल छूने कैलाश से आया हूँ। क्योंकि ये ही मेरे इष्टदेव हैं।

इष्ट देव मम श्री रघुबीरा। सेवत जाहिं सदा मुनि धीरा ।।

और मैया प्रेमभाव में उलटा करने जा रही है। श्रीशिवजी महाराज बोले, नहीं नहीं मैया कोई बात नहीं है। रहने दो, रहने दो। परन्तु श्रीकौशिल्या जो बोलीं, अरे महाराज ऐसा कैसे होगा। आप पवित्र ब्राह्मण, फिर काशी के ज्योतिषाचार्य और आपके मन्त्र से चारों कुमार ठीक हुए हैं। अतः कृतज्ञता हेतु तथा कल्याण हेतु चरण तो जरूर छुआऊँगी महाराज आप शान्ति से खड़े रहिए। श्रीशिवजी महाराज तो अन्तर्ध्यान होना चाहते थे, परन्तु श्रीराम ने नजरों से इशारा किया कि बाबा जी चुपचाप खड़े रहिये। मैया जैसा करती हैं, कर लेने दीजिए, नहीं तो सारी पोलपट्टी भेद अभी ही खुल जायगा। संसार कहेगा कि श्रीदशरथ के पुत्र कोई साधारण नहीं परब्रह्म हैं और काशी के ज्योतिषी पंडित कोई साधारण ब्राह्मण नहीं, अपितु देवाधिदेव महादेव जी महाराज हैं। तो अवतार का प्रायः प्रयोजन ही समाप्त हो जायगा। क्योंकि रावण का वध मनुष्य के ही हाथ है।

यथा—रावन मरन मनुज करि जाँचा । प्रभु विधि वचन कीन्ह चह साँचा ।।

उधर दूसरी ओर वीर रावण ने भी यही वरदान माँग रखा है विधाता से।

हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें ।।

तो प्रभु गुप्त रूप में ही रहना चाहते थे। प्रभु की आज्ञा पाकर श्रीशिवजी महाराज खड़े तो रहे। परन्तु कौशिल्या महारानी ने जैसे ही चरणों पर अपार तेजपुंज रूप राशि प्रभु को डाला तो शिव जी महाराज दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर दोनों नयन भी बन्द कर लिए, और मन में श्रीराम-राम जपने लगे। पीछे कागभुसुण्डि जी महाराज ने देखा कि श्रीशिवजी महाराज हमारे श्रीगुरुमहाराज धर्म संकट में पड़ गए हैं तो तुरन्त पोथी पत्रा लेकर भाग खड़े हुए। सोचा, कहीं मैया श्रीगुरुजी महाराज के चरण छुआने के बाद कहे, कि चेला को भी प्रणाम कराओ। तो पहले ही भाग चलो। उधर कौशिल्या महारानी ने देखा कि बाबा जी दोनों हाथ बाँधकर आँख मूँदकर खड़े हो गए हैं तो सादर बोलीं कि हे बाबा जी महाराज, आपने दोनों हाथ को क्यों मुट्ठी बाँध लिया। आप दोनों हाथ की हथेली फैलाकर राजकुमार के शीश पर रख दीजिए।

मेल्योचरण चारु चारिउ सुत माँथे हाथ दिवायो।

और फिर इतना ही नहीं चारों कुमारों के माथे पर बारी-बारी हाथ रखवाया और महाराज माथे पर हाथ रखकर ऐसा आशीर्वाद दीजिए गा कि बालकों को फिर कभी नजर. डीठ, टोना न लगे। ऐसा ही दयापूर्ण आशीर्वाद दीजिए, तथा सदा ही कृपा की नजर रखे रहिएगा एवं बाबाजी महाराज आप यहीं श्रीअवध में ही रहिए। जब-जब राजकुमारों को नजर लगे, तब-तब आते रहिएगा। यहाँ सब इन्तजाम है। आपको किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी। श्रीशिवजी महाराज बड़े भारी मन से यह सब देख रहे थे, और अपने इष्टदेव को मैया द्वारा चरणों पर गिराने से खिन्न हो रहे थे। तो

भी धीरज धरके बोले-हे मैया मेरा मुख्य आश्रम तो काशी में है। परन्तु मैं तुम्हारे श्रीअयोध्या में भी रहता हूँ। आप बूढ़ी होकर भी हमें नहीं जानतीं। लेकिन कल का बेटा हमको खूब पहचानता है। मैं बहुत दिनों से यहीं सरजू के किनारे पर ही कुटी बनाकर रहता हूँ। यहाँ पर मेरा नाम श्रीनागेश्वरनाथ है। आप जब बुलाओगी तब हम जरूर आएंगे और मैया अब आप कभी भी नहीं डरना और अब राजकुमारों को कभी भी डीठ टोना नहीं लगेगा।

मैं ऐसा उपाय कर जाऊँगा कि ये सदा ही निरोग रहेंगे। श्रीराम प्रभु को तो सदा निरोग प्रसन्न कर दिया। परन्तु स्वयं श्रीभोलेनाथ कुछ रोग लेकर लौटे। बाहर आए तो भक्त कागभुसुण्डि एक किनारे डरे-डरे खड़े थे। उनको देखते ही श्रीशिवजी महाराज दुःखी मन से बोले, भक्त अति अनुचित हुआ है। मैं जिनके दर्शन को स्वयं आया था। जिनके अछूते चरण कमलों की उपासना दर्शन करने मैं स्वयं आया था। यहाँ मैया ने उलटा उन्हीं को मेरे चरणों पर गिरवाया और मेरे दोनों हाथ नारायण के मस्तक पर रखवाया गया है। अतः मेरा मन बेचैन हो गया है और कागभुसुण्डि तुम तो जाओ। हम जब तक इस व्यवहार का पूरा बदला नहीं चुका लेंगे, काशी या कैलाश नहीं आएंगे और हम बदला चुकाने का उपाय ढूढ़ेंगे। ऐसा दृढ़ विचार मन में करके श्रीप्रभु प्रलयंकर मंगलकर सदाशिवशंकर महाराज ने भी एक लीलापूर्ण उपाय किया।

जानि राम सेवा सरस। समुझि करब अनुमान ॥
रुद्र देह तजि नेह बस। बानर भे हनुमान ॥

श्रीराम सेवा सरस समझकर श्रीशिवजी महाराज श्रीहनुमान जी महाराज का वानर वेष में अवतार लिया। वैसे रामादल के सभी बानर, भालू देवताओं के ही अंश थे। रावण-वध और श्रीराम सहायता के लिए बानर, भालू के रूप में आए थे।

देवाश्च सर्वे हरि रूप धारिणः, स्थिताः सहायार्थं मितस्ततो हरिः।
महावलाः पर्वत वृक्षयोधिनः, प्रतीक्षमाणा भगवन्त मीश्वरम् ॥

प्रभु सूर्यवंश में कब प्रगट होंगे, सब इसकी प्रतीक्षा में थे। यथा —

निज लोकहिं विरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ ॥
बानर तनु धरि-धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव विलंब न कीन्हा ॥
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा ॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज-निज अनीक रुचि रुरी ॥

ब्रह्मा स्वयं जाम्ववन्त महाबली के रूप में अवतरित हुए थे। इन्द्र के अंश से बीर बाली था। भगवान् सविता सूर्य के अंश से कपिराज सुग्रीव थे। अग्नि के अंश नल नील थे। चन्द्रमा के अंश वीर युवराज अंगद थे और स्वयं साक्षात् महादेव जी श्रीहनुमान जी के रूप में अवतरित हुए। श्रीहनुमानजी महाराज को श्रीराम का दूसरा दर्शन किष्किन्धा में होता है। जब आपको सुग्रीव के कहने पर उधर की ओर आते हुए दो अद्भुत पुरुषों से परिचय जानने को कहा। हनुमान जी महाराज जाकर पूछते हैं। वास्तव में कपिराज स्वयं ही बहुत डर गए थे। ऐसे दो अद्भुत वीरों को अपनी ओर आता देखा तो निश्चेष्ट होकर भेजे। यथा—

दीर्घं बाहु विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ।
कस्य न स्याद् भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुर सुतौ पमौ॥
(वा० रा० कि० सर्ग २ श्लोक २०)

इन दोनों वीरों की भुजाएँ लम्बी और नेत्र बड़े-बड़े हैं। वे धनुषवाण और तलवार धारण किए देव कुमारों की भाँति शोभा पा रहे हैं। इन दोनों वीरों को देखकर भला किसके मन में भय नहीं होगा।

वालि प्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्रहिक्षमः॥
(वा० रा० कि० सर्ग २ श्लोक २१)

मेरे मन में सन्देह है कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष वाली के ही भेजे हुए हैं। क्योंकि राजाओं के बहुत से मित्र होते हैं। अतः उन पर विश्वास करना उचित नहीं है।

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि॥
(वा० रा० कि० सर्ग २ श्लोक २२)

प्राणी मात्र को छद्मवेष में विचरने वाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि वे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेते हैं। परन्तु स्वयं किसी का विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषों पर ही प्रहार कर बैठते हैं।

कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शिनः।
भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः॥
(वा. रा. कि. सर्ग २ श्लोक २३)

बाली इन सब कामों में बड़ा कुशल है। राजा लोग बहुदर्शी होते हैं। वञ्चना के अनेक उपाय जानते हैं। इसीलिए शत्रुओं का विध्वंस कर डालते हैं। ऐसे शत्रु भूत राजाओं को प्राकृत वेष भूषा-वाले मनुष्यों (गुप्तचरों) द्वारा जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवंगम।

इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च॥

(वा. रा. कि- सर्ग २ श्लोक २४)

अतः कपिश्रेष्ठ! तुम भी एक साधारण पुरुष की भाँति यहाँ से जाओ और उनकी चेष्टाओं से, रूप से तथा बातचीत के तौर तरीकों से उन दोनों का यथार्थ परिचय प्राप्त करो।

लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि।

विश्वासयन् प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः॥

(वा. रा. कि. सर्ग २ श्लोक २५।

उनके मनोभावों को समझो। यदि वे प्रसन्न चित्त जान पड़े तो बारम्बार मेरी प्रशंसा करके तथा मेरे अभिप्राय को सूचित करने वाली चेष्टाओं द्वारा मेरे प्रति उनका विश्वास उत्पन्न करो।

ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव।

प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ॥

(वा.रा.कि. सर्ग २ श्लोक २६)

हे वानर शिरोमणे! तुम मेरी ही ओर मुँह करके खड़े होना और उन धनुधर्र वीरों से इस वन में प्रवेश का कारण पूछना।

शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवंगम।

व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः॥

(वा. रा. कि. सर्ग २ श्लोक २७)

यदि उनका हृदय शुद्ध जान पड़े तो भी तरह-तरह की बातों और आकृति के द्वारा यह जानने की विशेष चेष्टा करनी चाहिये कि वे दोनों कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं आए हैं।

इत्येवं कपिराजेन संदिष्टो मारुतात्मजः ।
चकार गमने बुद्धि यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ।।

(वा. रा. कि. सर्ग २ श्लोक २८)

बानर राज सुग्रीव के इस प्रकार आदेश देने पर पवन कुमार श्रीहनुमान जी महाराज ने उस स्थान पर जाने का विचार किया, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान थे।

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः ।
भिक्षु रूपं ततों भेजे शठबुद्धितया कपिः ।।

(वा. रा. कि. तृ. २)

पवन कुमार वानर वीर हनुमान् ने यह सोचकर कि मेरे इस कपिरूप पर किसी का विश्वास नहीं जम सकता, अपने उस रूप का परित्याग करके भिक्षु (सामान्य तपस्वी) का रूप धारण कर लिया।

ततश्च हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया ।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ।।३।।
आवभाषे च तौ वीरौ यथावत् प्रशशंस च ।
सम्पूज्य विधिवद् वीरौ हनुमान् वानरोत्तमः ।।४।।
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्य पराक्रमौ ।
राजर्षिदेवप्रतिमां तापसौ संशितव्रतौ ।।५।।

(वा. रा. कि. तृ. ३-४-५)

तदनन्तर हनुमान् ने उन दोनों रघुवंशी वीरों के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाली मधुरवाणी में उनके साथ वार्तालाप आरम्भ किया। वानर शिरोमणि हनुमान् ने पहले तो उन दोनों वीरों की यथोचित प्रशंसा की। फिर विधिवत् उनका पूजन (आदर) करके स्वच्छन्दरूप से मधुरवाणी में कहा – 'वीरो ! आप दोनों सत्य पराक्रमी, राजर्षियों और देवताओं के समान प्रभावशाली, तपस्वी तथा कठोर व्रत का पालन करने वाले जान पड़ते हैं। २-५।। यथा—

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना ।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ।।

(८५)

पठये बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला ॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बनबीरा ॥
कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु विचरहु बन स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥
की तुम्ह तीनि देव मह कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ॥

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई ॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न वचना। देखत रुचिर वेष कै रचना ॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्हीं। हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही ॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥

श्रीहनुमान जी महाराज जब तक अपने स्वरूप में नहीं आए तबतक प्रभु से बाहरी शिष्टाचार ही होता रहा। क्योंकि प्रथम बार में ही पहिचानि परेउ गहिचरना, परन्तु प्रभु की कोई भी मंगल प्रतिक्रिया नहीं हुई। अतः श्रीहनुमान जी महाराज समझ गए कि ऐसे प्रभु की कृपा नहीं होगी। इसीलिए दुबारा फिर—

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

तब प्रभु को भी करुणा आ गई और 'भुज विसाल गहि लिए उठावा" हृदय से लगा लिया।

प्रेम पुलकित शरीर में रोमाञ्च हो आए और नयन कमलों से प्रेम की जलधार बह चली। श्रीहनुमान् जी महाराज कृत-कृत्य हो चुके थे। अब कुछ भी शेष नहीं रह गया था। प्रभु स्वरूप का पूर्ण

बोध हो चुका था। फिर भी वह इच्छा पूरी नहीं हुई थी जिसके लिए वानर अवतार लिया था तथा श्रीअवध की वह टीस अभी तक भूली नहीं थी। मन में ठीक वैसे ही करने की इच्छा थी जैसे महाभागा कौशिल्या ने करवाया था। अर्थात् प्रभु के करारविंद मेरे शीश पर और मेरा शीश प्रभु के चरण कमलों पर होना चाहिए। खैर सोचा यह अभिलाषा अभी तो नहीं पूर्ण हुई कोई बात नहीं है। अब तो साथ ही सेवा में रहना ही है। कभी न कभी वह अवसर उपस्थित ही होगा। इसलिए प्रसन्न होकर श्रीवीर वजरंग-वली महाराज जी ने क्या किया ? यथा—

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔजन पीठि चढ़ाई ॥

स्कन्धारूढ़ करके श्रीराम लक्ष्मण को कपि केशरी कपिराज सुग्रीव के निकट निर्भय होते हुए स्वयं भी और सुग्रीव को भी निर्भय करते हुए उस विशाल पर्वत पर लाए और सब कथा चलती रही। फिर श्रीभगवती के खोजने की बात आयी और सभी वीर वानर चारों दिशा में गए और प्रधान-प्रधान सेनापति युवराज अंगद और जामवंत की अगुवाई में दक्षिण दिशा की ओर जाने लगे तो श्री राघवेन्द्र श्रीराम प्रभु ने श्रीमारुतनंदन श्रीहनुमान् जी महाराज को बुलाया - यथा—

पाछें पवन तनय सिरुनावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥

अपना हस्त कमल श्रीहनुमानजी के सिर पर धर के अपनी कर मुद्रिका दिया। परम भक्त दासानुदास जानकर। एक इच्छा तो पूरी हुई, परन्तु पूर्ण नहीं हुई थी। श्रीहनुमानजी महाराज लंका गए, और भगवती को प्रभु के कर की मुद्रिका दिया। सब हाल चाल बताया तथा चूड़ामणि लेकर वीर हनुमान जी वापस आए।

सब समाचार सुनकर श्रीरघुनाथ जी महाराज महान् हर्ष उत्साह से भर गए। कपि केहरी श्रीहनुमान जी महाराज की बहुत प्रशंसा किया और कृतज्ञता प्रकट किया, यहाँ तक कहा कि—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं ॥

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि-त्राहि भगवंत ॥

बार-बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य-दत्तस्तस्य महात्मनः ॥

प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर ॥

ज्ञानियों में शिरोमणि बुद्धिमतां वरिष्ठं श्रीहनुमान जी महाराज समझ गए कि अब अवसर उपस्थित हो गया है। अतः श्री चरणों को अति आतुरता, अकुलाहट अतिप्रेम से पकड़ लिया और अपना शीश रख दिया। श्रीप्रभु वार-बार उठाना चाहते हैं, परन्तु श्रीहनुमान जी महाराज उठना नहीं चाहते। अतः श्री अन्तर्यामी घट-घट वासी करुणावरुणालय परम कृपाल दया सिन्धो सबके माता-पिता श्रीप्रभु समझ गए और अपना श्रीकरारविंद श्रीहनुमान् जी के मस्तक पर धर दिया और अभय कर दिया, यथा—

चारो युग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत् उजियारा ॥

यही कथा मंगल पयस्वनी कैलाश पर बैठे, श्रीमहादेव बाबा भगवती नगराज नंदिनी पार्वती महारानी को सुना रहे थे। परन्तु पावन कथा का जब यह अवसर उपस्थित हुआ, तो रोमांच हो आया। शरीर पुलकायमान हो गया। वाणी प्रफुल्ल हो गयीं। परन्तु भगवती भवानी शिवा कहीं न समझ जायें अथवा कथा में विक्षेप न पड़ जाय, इसलिए मन को सावधान किया, और कथा प्रवाह को प्रवाहित रखा।

अमृत निर्झरिणी पुष्करिणी कैलाश में कथा गंगा होकर बहती रही, और जड़ चेतन मुग्ध होते रहे, यह अद्भुत कथा आप सब सज्जनों को महान् पुण्य वर्धन एवं इस समस्त वातावरण के प्राणीमात्र को मंगल तथा विश्व के कल्याण के लिए सुनाया है।



श्रीहरिः

श्रीराम राज्य

राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ।।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान् भूरिदक्षिणान् ।।
(वा० रा० युद्ध० १२८-९५)

श्री रघुनाथजी महाराज ने राज्य पाकर ग्यारह सहस्र वर्षों तक उसका पालन और सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया। उन यज्ञों में उत्तम अश्व छोड़े गए थे तथा ऋषियों को बहुत अधिक दक्षिणाय बाँटी गयी थी।

आजानुलम्बिबाहुः स महावक्षाः प्रतापवान् ।
लक्ष्मणानुचरो रामः शशास पृथिवीमिमाम् ।।
(वा० रा० युद्ध० १२८-९६)

उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं। उनका वक्षःस्थल विशाल एवं विस्तृत था। वे बड़े प्रतापी नरेश थे। श्रीलक्ष्मण को साथ लेकर श्रीराम ने इस पृथ्वी का शासन धर्म के अनुकूल ही किया।

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः ।।
(वा० रा० युद्ध० १२८-९७)

श्रीअयोध्या के परम उत्तम राज्य को पाकर धर्मात्मा श्रीराम ने सुहृदों; कुटुम्बीजनों तथा भाई बन्धुओं के साथ अनेक प्रकार के यज्ञ किये।

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतंभयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामेराज्यं प्रशासति ।।
(वा० रा० युद्ध १२८-९८)

श्रीराम के राज्य-शासनकाल में कभी विधवाओं का विलाप नहीं सुनाई पड़ता था। सर्प आदि दुष्ट जन्तुओं का भय नहीं था और रोगों की भी आशंका नहीं थी।

(९९)

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ।।

(वा० रा० यु० १२८-९९)

सम्पूर्ण जगत् में कहीं चोरों या लुटेरों का नाम भी नहीं सुना जाता था । कोई भी मनुष्य अनर्थकारी कार्यों में हाथ नहीं डालता था और बूढ़ों को बालकों के अन्त्येष्टि संस्कार नहीं करना पड़ता था ।

सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ।।

वा० रा० यु० १२८-१००)

सब लोग प्रसन्न ही रहते थे । सभी धर्म परायण थे और श्रीराम पर ही वारम्बार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचाते थे ।

आसन् वर्ष सहस्राणि तथा पुत्र सहस्रिणः ।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ।।

(वा० रा० यु० १२८-१०१)

श्रीराम के राज्य-शासन करते समय लोग सहस्रों वर्षों तक जीवित रहते थे । सहस्रों पुत्रों के जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकार का रोग या शोक नहीं होता था ।

रामो-रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।।

(वा० रा० यु० १२८-१०२)

श्रीराम के राज्य-शासन काल में प्रजा वर्ग के भीतर केवल राम-राम, राम की ही चर्चा होती थी । सारा जगत् श्रीराममय ही हो रहा था ।

नित्यमूला नित्य फलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ।।

(वा० रा० यु० १२८-१०३)

श्रीराम के राज्य में वृक्षों की जड़ें सदा मजबूत रहती थीं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलों से लदे रहते थे। मेघ प्रजा की इच्छानुसार और आवश्यकतानुसार ही वर्षा करते थे। वायु मन्दगति से चलती थी। जिससे उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥
(वा. रा. यु. १२८-१०४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-चारों वर्णों के लोग लोभ रहित होते थे। सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मों से संतोष था और सभी उन्हीं के पालन में लगे रहते थे।

आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षण सम्पन्नाः सर्वे धर्म परायणाः ॥
(वा. रा. यु. १२८-१०५)

श्रीराम के शासनकाल में सारी प्रजा धर्म में तत्पर रहती थी। सब लोग उत्तम लक्षणों से सम्पन्न थे और सबने धर्म का आश्रय ले रक्खा था।

दशवर्ष सहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥
(वा. रा. यु. १२८-१०६)

भाइयों सहित श्रीराम ने ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया। श्रीराम के शासन काल में सब निरोग, सब प्रसन्न, सब सुखी, सब उदार सब पर उपकारी दयालु, ईर्ष्यारहित पवित्र प्रसन्न थे।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ॥

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥

(१०१)

चारिउ चरन धर्म जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ।।
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ।।

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माँहि ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाँहि ।।

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ।।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ।।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह बरनत हीनता घनेरी ।।
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रतिमानी ।।
सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिवर दम सीला ।।
राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ।।
सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नर नारी ।।
एक नारि ब्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ।।

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ।।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ।।

लता विटप माँगें मधु चवहीं । मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ।।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी ।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ।।
सागर निज मरजादाँ रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा विभागा ।।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज ।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ।।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे । दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ।।
श्रुति पथ पालक धर्म धुरन्धर । गुनातीत अरु भोग पुरंदर ।।

तो सज्जनों ऐसा रामराज्य था जहाँ सिंह और हाथी एक ही घाट पर पानी पीते थे। जहाँ कोई वैर भाव नहीं रखता था। जहाँ चन्द्रमा सदा पूर्णमासी के ही रहते थे। सूर्य उतना ही तपते थे जितनी जरुरत थी।

किसान जमीन पर खड़ा होकर ऊपर की ओर मुँह करके कहते थे कि भगवान् बरसो तो परोपकारी मेघ वरसने लगते थे। किसान कहता था कि अब महाराज बस करो तो वन्द हो जाते थे। वह श्रीराम राज्य था। जहाँ पक्षपातविहीन न्याय मिलता था। कुत्ते का भी न्याय श्रीराम दरबार में ही हुआ था। सज्जनो ! ऐसा शासन कभी सृष्टि में नहीं हुआ था। इसीलिए ये कृतज्ञ भारतवासी आज भी रामराज्य को याद करते हैं और अपनी धरती पर फिर चाहते हैं । हमारे श्रीगुरु महाराज ने इसी बात को दृष्टिगत रखकर संसार का क्लेश मिटाने के लिए प्रजा को स्वच्छ प्रशासन देने के लिए ही पहले से ही 'रामराज्य परिषद" की स्थापना की थी। जिसमें भ्रष्टाचार, दुराचार, कदाचार, अनाचार व्यभिचार, भाई भतीजावाद, अलगाववाद सबका अच्छा निराकरण है। भेद-भाव बिना समष्टि का हित देखते हुए विशुद्ध आर्यावर्त की पद्धति की शासन पद्धति श्रुति स्मृति प्रतिपादित नीतियाँ ही राष्ट्र के लिए कल्याण-कारी हैं। विदेशों से उधार माँगकर जूठो पत्तल चाट-चाट कर अधूरा संविधान लोकहित नहीं कर पा रहा है। जिससे जितना खींचा जा रहा है खींच रहा है अपनी ओर। जब जो चाहता है बहुमत के आधार से अनुकूल संशोधन करवा लेता है। अतः अब प्रायः रामराज्य की कल्पना नेताओं में तो रह नहीं गई है। महात्मा गांधी जी कहा करते थे अंग्रेजों के जमाने में। यदि देश आजाद हो जायेगा—अंग्रेज चले जायेंगे, अपना राज्य होगा, अपनी प्रजा से अपने ही शासक होंगे, तो देश में रामराज्य आयेगा। लोग पूंछते थे

कि बापू आपके रामराज्य में क्या होगा। तो महात्मा गांधी जी कहते थे कि हमारे रामराज्य में कोई नागरिक दुःखी रोगी परेशान नहीं रहेगा। काम, दाम, आराम सबको बराबर मिलेगा । कोई रोजी रोजगार के लिए दौड़-धूप नहीं लगाएगा। खाने-पीने आवास की सबको पूरी सुविधा रहेगी। अपने-अपने धर्म पालन में सबको स्वतन्त्रता रहेगी। घी, दूध, दही, मट्ठा की नदी बहेगी। देश में फिर से रामराज्य आएगा। पराधीनता के बेड़ियों को कटने की देर है। सब बातें कहते थे। वह एक प्रायः अच्छे पुरुष थे। परन्तु बाद में उनके उत्तराधिकारी चेले चापड़ फसली नेता सब खुद का घर भरने में लग गए। देश धीरे-धीरे बर्बाद हो रहा है। चारों तरफ फूट अलगाव की एक ज्वाला धधक उठी है। सब परेशान हैं। परन्तु सज्जनों—यह लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी अपने आराध्य श्रीगुरुदेव के बताए मार्ग पर ही चलने की चेष्टा जीवन भर करेगा और श्रीगुरु महाराज ने अपने इस लघु सेवक को ही सभी उत्तराधिकार सौंपे हैं।

तथा अखिल भारतीय रामराज्य परिषद का अध्यक्ष भी बना गए हैं। इसलिए मेरे उदार मना श्रोताओं हम अपने कार्य में जरूर सफल होंगे। क्योंकि मेरे परम पूज्य श्रीगुरुदेव की सदा अमृतवर्षिणी कृपादृष्टि मुझ पर है। हमको ऐसा दृढ़ता से प्रतीत होता है। उठते-बैठते सदा उनकी प्रेम करुणा की वह अथाह कृपा नजर इस सेवक पर पड़ती ही रहती है। अस्तु उनका यह सेवक भी उनकी नजर से ही देखता है। उनके श्रवन से ही सुनता है। उनकी दी हुई वाणी का ही प्रयोग करता है और सज्जनों इस समय मुझे मेरे श्रीगुरु महाराज की पावन याद आ गयी है। भारतवर्ष का कोई भी जेल ऐसा नहीं है, जहाँ हमारे गुरुजी महाराज (स्वामी करपात्री जी) न गए हों और बन्द न हुए हों। उन पर पुलिस ने सरकार के दबाव में आकर लाठी चार्ज किया। डण्डा मारा। जेल में बन्द किया। नाना प्रकार की यातनाएँ दी। सजा दिया। यह सब केवल गौवध बन्दी के लिए आन्दोलन, सत्याग्रह करने पर सरकार ने ऐसा पुलिस द्वारा कराया। इसलिए थोड़ा इस कथा को बढ़ाते हुए उनका मंगल स्मरण फिर करना चाहता हूँ। जिनकी कृपा से इस सेवक को वाणी और लेखनी प्राप्त हुई है।यथा—

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि बक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।

हे सद्गुरुदेव रूपी परमेश्वर आप ही सर्वस्व हैं और आप ही अद्भुत विलक्षण अकथनीय फल देने वाले महान् कल्पवृक्ष ही हैं। हे महाराज श्री आप जहाँ भी हो हम आपका जय-जयकार कर रहे हैं। आप ही ऐसे उर्वरक उपजाऊ स्थल हैं, जिसमें से ही आत्मज्ञान का बीज अंकुरित होता है। आप ही ऐसे सामर्थ्यवान हैं कि आपके परम विशिष्ट लक्षण मन, बुद्धि द्वारा जाने नहीं जा सकते हैं और न वाणी द्वारा ही उनका वर्णन हो सकता है। हे प्रभु सद्गुरुदेव सागर तभी तक अपनी मर्यादा में रहता है, जब तक चन्द्रमा का उदय नहीं होता ।

सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई । देखि पूर विधु बाढ़इ सोई ।।

हे प्रभु सोमकान्त मणि स्वयं अपनी आर्द्रता से चन्द्रमा को कभी अर्घ्य प्रदान नहीं कर सकती। परन्तु स्वयं चन्द्रमा ही उससे वह कृत्य कराता है। जैसे ऋतुराज वसन्त का मंगल आगमन होने पर समस्त वृक्षों में नये पत्ते और नये अंकुर निकल आते हैं। परन्तु आश्चर्य तो यह होता है कि उन वृक्षों को पता नहीं चलता कि हममें ये नये पत्ते एवं कोमल अंकुर कोपल कहाँ से निकल आए हैं।

सूर्य की किरणों का संयोग होने से अथवा स्पर्श होते ही कमलिनी का संकोच नाम-मात्र को भी नहीं रह जाता है। यथा जल का संयोग होते ही नमक का जला अपनी सुधि-बुधि सब खो बैठता है। इसी प्रकार हे श्रीगुरु महाराज मुझे आपका स्मरण होते ही मैं अपने को स्वयं भूल जाता हूँ। हे महाराज मुझे सदा ही आपकी याद सताती है। आपके विना सब सूना दिखता है। आपने मेरी वाणी पर और इस लेखनी में लगता है जादू भर दिया है। हे श्रीगुरु महाराज मैं आपका नाम लेकर ही जीवित हूँ। आपका नाम लेकर ही तथा आपके पावन पुण्य प्रताप को याद करके ही इस महान् ग्रन्थ—"प्रवचन रत्नाकरः" में प्रवेश कर रहा हूँ। हे श्रीगुरु महाराज मैं रात-दिन लिखता हूँ। थकता नहीं हूँ। आप सदा मेरे ऊपर-नीचे, दायें-बायें सम्मुख होकर ही हमको बताते हो। आपकी कृपा हो मसि, लेखनी, कागज विचार है। यह कथा भी महाराज श्री आपकी ही दी हुई है। जिनकी योग समाधि के द्वारा इस नाम रूपात्मक विश्व का बन्धन टूट जाता है और इससे छुटकारा मिल जाता है। शाश्वत आनन्द प्राप्त हो जाता है। अखण्ड बोध हो जाता है। मल आवरण विक्षेप का नाश हो जाता है।

हे आराध्य मूर्ति श्रीगुरु जी महाराज आपकी महिमा कोई नहीं जान सकता। आप ही हरिरूप हैं।

बंदउँ गुरु पद कंज-कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज-जासु बचन रविकर निकर॥

महामोह तम पुंज के लिए आप दिनकर किरण तुल्य हैं। मनुष्य रूप में भी होवे हुए आप साक्षात् नारायण हैं। हे प्रभो जिस प्रकार खाली लोटा समुद्र में डाला जाय तो ऊपर निकलते समय वह पूर्ण भरकर निकलता है। तव वह भला किस प्रकार भरा हुआ निकलता है। आप बताओ प्रभो। अथवा दीपक के संसर्ग से रूई की वत्ती भी दीपक का तेजस्वी रूप प्राप्त कर लेती है। उसी प्रकार जैसे पारस के छुवाने से लोहा कुंदन हेम सुवर्ण बन जाता है। वह यह नहीं देखता कि वह लोहा पंडित के घर का है अथवा हिंसक पापी कसाई का छूरा है।

एक लोहा पूजा घर राखत—एक घर बधिक परयो।
यह दुविधा पारस नहिं देखत—कंचन करत खरो॥

इसी प्रकार हे श्रीगुरु महाराज आपका यह लघु सेवक आपको प्रणाम करके परिपूर्ण हो गया है और बार-बार आपके चरण-कमलों में नित्य का अपना साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम भेज रहा है।

(१०५)

हे दयानिधि श्रीगुरुदेव सेवक का दण्डवत स्वीकार करो और वाणी तथा इस लेखनी में दिव्य रूप धरके हे नाथ प्रवेश करो। संसार के कल्याण के लिए और आपकी कीर्ति बढ़ाने ,तथा आपका जय-जयकार करने के लिए ही यह "प्रवचन-रत्नाकर" लिख रहा हूँ। हे श्रीगुरुदेव सब अपराध क्षमा करके आगे कथा प्रसंग को बढ़ाओ। आप सब उदार, विद्वान्, शीलवान कथा रसिक पवित्र श्रोता मण्डली को आगे की कथा सुनाने के पहले यह बताना चाहता हूँ कि श्रीगुरु महाराज की प्रार्थना करने से एक बोध हुआ है। महाराज श्री मानो हमसे कह रहे हैं कि बेटा—वत्स क्या लोहे को पारस पर बार-बार रगड़ना पड़ता है ? वह तो एक बार ही छुआने से स्वर्ण हो जाता है। अब तुम स्वर्ण नहीं, पारस हो गये हो। अतः निर्भय होकर श्रीराम कथा में मन लगाओ। कथा सब तुम्हारे चित्त में आती जायेगी। मन, बुद्धि, चित्त से एकाग्र होकर इस मंगल कथा रूपी भागीरथी को श्रीगंगासागर तक ले चलो। महाराज श्री की यह बाणी सुनकर यह सेवक गद्‌गद् कण्ठ से उनका स्मरण करता हुआ कथा प्रसंग को अब आगे बढ़ाता है।

श्रीहरिः

श्रीराम वाण

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवेनमः ॥

अज्ञानरूपी अन्धकार के लिए जिनका अमोघ ज्ञान शालाका के समान है। जिनका प्रकाश हृदय के अन्धकार को मिटा देता है। जिनका स्मरण करते ही शिष्य में समस्त विद्यायें स्वयं ही आ जाती है। उन श्री गुरुचरणों की मैं बन्दना करता हूँ। जिनका स्मरण करने से काव्य की दिव्य ललित शक्ति आ जाती है। सब प्रकार की मंजु मधुर रसालवाणी जिह्वा पर शोभित होती है। जिनकी वक्तृत्व को कला मिठास के आगे अमृत भी फीका नीरस लगने लगता है। प्रत्येक अक्षर के सामने प्रत्येक रस सेवकों का भांति हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। अभीष्ट अर्थ खुल जाता है। स्वयं भी बोध हो जाता है तथा दूसरों को भी बोध करा देता है तथा अक्षर भी अभीष्ट फलदायी बन जाता है। जिससे आत्म रहस्य का ज्ञान ही नहीं अपितु उसका सम्पूर्ण बोध हो जाता है।

वही श्रीगुरुचरणारविन्द जब अन्तःकरण में आकर हृदय सिंहासन पर विराजते हैं तब कवि की वाणी स्वयं ही मुखरित तथा लेखनी गतिमान हो जाती है और सम्पूर्ण अन्तरंग ज्ञान को अपने आप शब्द वैभव प्राप्त हो जाता है। इसलिए उन परम पावन मुनिमन वन्दित साधक जन आराधित मनोवांछित वस्तुओं की पूर्ति हेतु श्री गुरु जी महाराज के चरणारविंदों का स्मरण करके आगे नई कल्पना, नई सूझ प्रकट करने जा रहा हूँ।

सज्जनों! आप ध्यान लगाकर सुनिये, यह रूपक अद्भुत है और आप भी विचार करिएगा। आज संसार भर के बुद्धिमानों में तीन बातें बहुत प्रसिद्ध हैं। कम-से-कम बहत्तर कोटि भारतीयों के हृदय में तीनों बातें दृढ़ता से भरी हुई है। श्रीराम-श्रीरामराज्य-श्रीराम वाण। संसार में राम-राम सब कहता है। सबके घर में राम नाम से किसी-न-किसी का नाम जरूर होगा। यथा— रामदास, रामनाथ, रामचन्द्र, रघुवीर प्रसाद आदि। मरते-जीते, उठते, बैठते, सुख दुःख में राम-राम जप करके जीव सुख शान्ति संतोष प्राप्त करता है। यहाँ भी सुख प्राप्त करता है। परलोक भी बनता है। यथा—

सुर दुर्लभ सुख करि जगमाहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं ॥

उनका नाम लेने से परलोक में भी उन्हीं का सायुज्य प्राप्त करता है और उनको जपते-जपते उन्हीं का रूप हो जाता है। उन्हीं में मिल जाता है, तद्रूप हो जाता है। भगवती उमा नित्य प्रति अपनी दिनचर्या में श्रीविष्णु सहस्रनाम का रोजाना पाठ करती थीं। एक दिन प्रभु आशुतोष सदाशिव भोले बाबा को कहीं जाना था शीघ्र ही। बोले प्रिये, तुम भी जल्दी तैयार हो जाव। कुबेर के घर चलना है, जल्दी भोजन भिक्षा भी कर लो, रास्ता दूर का है। भगवती भवानी ने हाथ जोड़कर अति नम्रतापूर्वक

कहा कि हे नाथ और तो सब हो गया है। तैयारी में कोई देर नहीं है। केवल श्रीविष्णुसहस्रनाम का पाठ बाकी है। श्रीभोले बाबा बोले, अरे भाई एक हजार नाम जपने में तो देर लगेगी ही और यदि मैं तुमको एक हजार नाम के बराबर एक ही नाम बता दूँ तो। भगवती मुस्कुराकर बोलीं "हे नाथ इससे अच्छी क्या बात होगी ? मैं अपने माता-पिता के यहाँ से ही त्रिलोकीनाथ श्रीजगन्नाथ नारायण के सहस्रनाम बिना जपे भोजन पानी कुछ नहीं लेती हूँ।

यदि आप विश्वनाथ जी महाराज कृपा करें तो महान् उपकार होगा। तो श्रीशिवजी महाराज बोले। सुनो प्रिया जी—

राम-रामेति-रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत् तुल्यं श्रीराम नाम वरानने ॥

सहस्रनाम के बराबर मनोरम श्री रामनाम है।

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

मरते समय भी जीव श्री रामनाम ही स्मरण करना चाहता है।

जन्म-जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंतराम कहि आवत नाहीं ॥

सज्जनो ! ऐसे अणु-अणु व्याप्त श्रीराम घट-घट वासी क्या कभी मनुष्य या राजा महाराज हो सकते हैं ? कौन मान सकता है। राजा तो श्रीराम के पहले और बाद में भी बहुत हुए हैं। परन्तु क्या इतनी समाज के दिल की गहराई तक व्यापकता पाये हैं ? कदापि नहीं। राजा तो सत्य हरिश्चन्द्र, मान्धाता, शिवि, दधीचि, दिलीप, महाराज युधिष्ठिर भी हो गए हैं। परन्तु क्या कोई हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, युधिष्ठिर माला में जपता है ? अथवा मरते समय कोई हरिश्चन्द्र रटता है ? अथवा बाद में भी बहुत राजा हुए हैं। नेपोलियन, अशोक, अकबर, समुद्रगुप्त परन्तु क्या कोई इन प्रतापी राजाओं के नाम की माला फेरता है ? अथवा मरते समय कोई अपने कुटुम्बियों को कहता है कि दादा हुमायूँ, अकबर, बाबर जपो अथवा चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, अशोक जपो ऐसा कोई नहीं कहता, क्योंकि ये ऐतिहासिक प्रतापी पुरुष जरूर थे, परन्तु अन्तर्यामी नारायण नहीं थे। अतः श्रीराम परब्रह्म हैं। इसी भाँति सज्जनों रामवाण का भी प्रताप है। हम तो सज्जनो सम्पूर्ण भारतवर्ष में ही घूमते रहते हैं। अक्सर सभी जगहों पर एक बड़ा मार्मिक वाक्य लिखा हुआ आप सबने भी देखा होगा। जैसे—दमा दमन, दम और खाँसी पर रामवाण, डोंगरे का बालामृत, बच्चों की कमजोरी पर रामवाण। अर्कपुदीन हैजे पर राम-वाण। क्या बात है इस युगों पुराने हथियार में जिसका डंका दमामा आज भी बज रहा है। देश में दुनिया में आज विज्ञान ने बहुत भारी उन्नति कर लिया है। नए-नए महान् संहारक हथियार बन गए हैं। फिर भी युगों प्राचीन बूढ़ा रामवाण आज भी घर-घर छाया है।

कोई नहीं लिखता कि "दमादमन" दम और खाँसी पर एटम बम अथवा अणुबम या परमाणु बम या पिस्तौल, तोप, टैंक नहीं लिखकर पुराने रामवाण को ही यह प्रतिष्ठा मिली है या और भी बहुत से राजा, महाराजा हुए। हथियार तो सज्जनो सभी बाँधते थे, परन्तु क्या किसी वीर का आयुध इतनी

महिमा पाया है। कोई नहीं कहता कि "अर्कपुदीना" हैजे पर मियाँ अकबर खाँ की बन्दूक या श्रीशिवाजी महाराज का बघनखा या महाराणा प्रताप की तलवार। सब रामवाण ही कहते हैं। कभी आपने सोचा कि आखिर रामवाण में क्या खास बात है, इसको तो किसी ने देखा भी नहीं, केवल सुना है कि श्रीराम के वाणों का प्रताप अपार, अथाह, अपरम्पार था। अच्छा मान लो किसी राजा का हथियार नहीं, किसी देवता का ही रखना है तो लिखना चाहिए—अर्कपुदीना हैजे पर श्रीशंकर जी महाराज का त्रिशूल या नारायण का सुदर्शन चक्र अथवा यम का पाश या इन्द्र का वज्र परन्तु नहीं रामवाण ही लिखा जाता है। गोस्वामी जी महाराज भी लिखते हैं—

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना।।

अर्थात् सागर लाँघते समय श्रीहनुमान जी महाराज रामवाण की भाँति गए, इतना ही नहीं मारीच—

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहु नीचा।।

उस वाण प्रताप से बहुत काफी परिचित तथा प्रभावित था। उसे वह राम वाण कभी नहीं भूला था। सज्जनो अब रामवाण की क्या महिमा है, आप भी ध्यान लगाकर सुनिये।

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं, स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं, रामः शरं मारुततुल्यवेगम्।।

(वा. रा. यु. ६७—१६५)

तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं, प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम्।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं, रामः प्रचिक्षेप निशाचराय।।

(वा. रा. यु. ६७—१६६)

इसके बाद भगवान श्रीराम ने ब्रह्मदण्ड तथा बिनासकारी काल के समान भयंकर एवं तीखा वाण, जो सूर्य की किरणों के समान उद्दीप्त इन्द्रास्त्र के समान अभिमन्त्रित, शत्रु नाशक, तेजस्वी सूर्य और प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान, हीरे और सुवर्ण से विभूषित, सुन्दर पंख से युक्त, वायु तथा इन्द्र के वज्र और अशनि के समान वेगशाली था। हाथों में लिया और उस निशाचर को लक्ष्य करके छोड़ दिया।

स सायको राघवबाहुचोदितो, दिशः स्वभासा दश सम्प्रकाशयन्।
विधूमवैश्वानरभीमदर्शनो, जगाम शक्राशनिभीमविक्रमः।।

(वा. रा. यु. ६७—१६७)

(१०६)

श्रीरघुनाथ जी की भुजाओं से प्रेरित होकर वह वाण अपनी प्रभा से दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ इन्द्र के वज्र की भाँति भयंकर वेग से चला। वह धूम रहित अग्नि के समान भयानक दिखाई देता था। वे सब वाण दिव्य थे तथा सब सुवर्ण जटित अलंकृत महाभयंकर थे।

अपूरयत् तस्य मुखं शिताग्रैः, रामः शरैर्हेमपिनद्ध पुङ्खैः।
सम्पूर्ण वक्त्रो न शशाक वक्तुं, चुकूज कृच्छ्रेण मुमूर्च्छ चापि ॥

(वा. रा. यु. ६७—१६४)

तब श्रीरामचन्द्र जी ने सुवर्ण जठित पंख वाले अपने तीखे वाणों से उसका मुंह भर दिया। मुंह भर जाने पर वह बोलने में भी असमर्थ हो गया और बड़ी कठिनाई से आर्तनाद करके वह मूर्च्छित हो गया।

इतना ही नहीं वाणों की कितनी कोटियाँ श्रीरघुनाथ जी के पास थीं सुनिये—

अग्निदीप्तमुखान् वाणांस्तत्र सूर्यमुखानपि।
चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रांश्च-धूमकेतुमुखानपि ॥
ग्रहनक्षत्रवर्णांश्च महोल्कामुखसंस्थितान्।
विद्युज्जिह्वोपमांश्चापि ससर्ज विविधाञ्छरान् ॥

उसके द्वारा उन्होंने अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अर्द्धचन्द्र, धूमकेतु, ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा बिजली की प्रभा के समान प्रज्ज्वलित मुख वाले नाना प्रकार के वाण प्रकट किये। भयंकर सांप के समान रामबाण कठिन थे।

तानेउ चाप श्रवन लगि-छाँड़े विसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु व्याल ॥

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः।
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥

(वा. रा. यु. १०८—३)

मातलि के इस वाक्य से श्रीरामचन्द्र जी को उस अस्त्र का स्मरण हो आया। फिर तो उन्होंने फुफकारते हुए सर्प के समान एक तेजस्वी वाण हाथ में लिया।

यं तस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः।
ब्रह्मदत्तं महद् वाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥
(वा. रा. यु. १०८—४)

यह वही वाण था जिसे पहले शक्तिशाली भगवान् अगस्त ऋषि ने रघुनाथ जी को दिया, पर वह विशाल वाण ब्रह्मा जी का दिया हुआ था और युद्ध में अमोघ था।

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥
(वा. रा. यु. १०८—५)

अमित तेजस्वी ब्रह्मा जी ने पहले इन्द्र के लिये उस वाण का निर्माण किया था और तीनों लोकों पर विजय पाने की इच्छा रखने वाले देवेन्द्र को ही पूर्वकाल में अर्पित किया था।

यस्य वाजेषु पवनः फले पावक भास्करौ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥
(वा. रा. यु. १०८—६)

उस वाण के वेग में वायु की, धार में अग्नि और सूर्य की, शरीर में आकाश की तथा भारीपन में मेरु और मन्दराचल की प्रतिष्ठा की गयी थी।

जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम्।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥
(वा. रा. यु. १०८—७)

सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषोपमम्।
नरनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥
(वा. रा. यु. १०८—८)

वह सम्पूर्ण भूतों के तेज से वनाया गया था। उससे सूर्य के समान ज्योति निकलती थी। वह सुवर्ण से भूषित, सुन्दर पंख से युक्त, स्वरूप से जाज्वल्यमान, प्रलयकाल की धूमयुक्त अग्नि के समान भयंकर दीप्तिमान, विषधर सर्प के समान विषैला, मनुष्य, हाथी और घोड़ों को विदीर्ण कर डालने वाला तथा शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य का भेदन करने वाला था।

द्वाराणां परिघाणां च गिरीणां चापि भेदनम्।
नानारुधिरदिग्धाङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥९॥

वज्रसारं महानादं नानासमितिदारुणम् ।
सर्वंवित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ।।१०।।
कङ्कगृध्रबकानां च गोमायुगणरक्षसाम् ।।
नित्यभक्षप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ।।११।।

बड़े-बड़े दरवाजों, परिघों तथा पर्वतों को भी तोड़-फोड़ देने की उसमें शक्ति थी। उसका सारा शरीर रक्त में नहाया और चर्बी से परिपुष्ट हुआ था। देखने में भी वह बड़ा भयंकर था। बज्र के समान कठोर, महान् शब्द से युक्त, अनेकानेक युद्धों में शत्रु सेना को विदीर्ण करने वाला, सबको त्रास देने वाला तथा फुफकारते हुए सर्प के समान भयंकर था। युद्ध में वह यमराज का भयावह रूप धारण कर लेता था। समर भूमि में कौए, गीध, बगले, गीदड़ तथा पिशाचों को वह सदा भक्ष्य प्रदान करता था। (९—११)

नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम् ।
वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रै र्गरुत्मतः ।।

(वा. रा. यु. १०८—१२)

वह सायक बानर यूथपतियों को आनन्द देने वाला तथा राक्षसों को दुःख में डालने वाला था। गरुड़ के सुन्दर विचित्र और नाना प्रकार के पंख लगाकर वह पंख युक्त बना हुआ था।

तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम् ।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ।।१३।।
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः ।
वेद प्रोक्तेन बिधिना संदधे कार्मुके बली ।।१४।।

(वा० रा० यु० १०८-१३-१४)

वह उत्तम वाण समस्त लोकों तथा इक्ष्वाकुवंशियों के भय का नाशक था। शत्रुओं के कीर्ति का अपहरण तथा अपने हर्ष की वृद्धि करने वाला था। उस महान् सायक को वेदोक्त विधि से अभिमन्त्रित करके महाबली श्रीराम ने अपने धनुष पर रक्खा। सज्जनों! श्रीराम वाण की महिमा बहुत बड़ी है। उसका प्रधान कारण यह है कि श्रीराम का वाण कभी अपने लक्ष्य से च्युत नहीं होता तथा लक्ष्य भेदन करके फिर वापस श्रीराम के तूणीर में वे वाण चले आते थे। यथा—

रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः ।
रावणस्य हरन् प्राणान् विवेश धरणी तलम् ॥
(वा० रा० यु० १०८-१६)

शरीर का अन्त करके रावण के प्राण हर लेने वाला वह वाण उसके खून में रंग कर वेगपूर्वक धरती में समा गया ।

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्र कृतच्छविः ।
कृतकर्मा निभृतवत् तूणींरं पुनराविशत् ॥
(वा. रा. यु. १०८-२०)

इस प्रकार रावण का वध करके खून से रंगा हुआ शोभाशाली वाण अपना काम पूरा करने के पश्चात् पुनः विनीत सेवक की भाँति श्रीरामचन्द्र जी के तरकस में लौट आया । अतः श्रीराम वाण का यह प्रताप है । वहीं सज्जनो रावण के वाणों की क्या दशा थी ? उस रण भूमि में आप देखिये ध्यान से—

विफल होंहि रावन सर कैसे । खल के सकल मनोरथ जैसे ॥

जिस प्रकार दुष्ट क्रूर पुरुष के वांछित मनोरथ कभी पूर्ण नहीं होते, उसी भाँति रावण के शर एक भी लक्ष्य पर नहीं लगते थे । जबकि श्रीराम का एक भी वाण खाली नहीं जाता था ।

ततः पावक संकाशैर्हेमवज्र विभूषितैः ।
जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥
(वा. रा. आ. २६-२९)

तब तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने सोने और हीरे से विभूषित अग्नितुल्य तेजस्वी सायकों द्वारा उस सेना के बचे-खुचे सिपाहियों का संहार कर डाला ।

ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः ।
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ॥
(वा. रा. अरण्य-२६-३०)

जैसे बज्र बड़े-बड़े वृक्षों को नष्ट कर डालता है उसी प्रकार धूमयुक्त अग्नि के समान प्रतीत होने वाले उन सोने की पंख वाले बाणों ने उन समस्त राक्षसों का विनाश कर डाला ।

राक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिना ।
सहस्रं तु सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ॥
(वा. रा. अरण्य-२६-३१)

उस युद्ध के मुहाने पर श्रीराम ने कर्णि नामक सौ बाणों से सौ राक्षसों का और सहस्र बाणों से सहस्र निशाचरों का एक साथ ही संहार कर डाला ।

ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् ।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥
(वा. रा. अरण्य-३०-२४)

तदनन्तर श्रीराम ने समराङ्गण में खर का बध करने के लिए एक अग्नि के समान तेजस्वी बाण हाथ में लिया, जो दूसरे ब्रह्मदण्ड के समान तेजस्वी था ।

स तद् दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता ।
संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥
(वा. रा. अरण्य ३०-२५)

वह बाण बुद्धिमान् देवराज इन्द्र का दिया हुआ था । धर्मात्मा श्रीराम ने उसे धनुष पर रखा, और खर को लक्ष्य करके छोड़ दिया ।

कटि तट परिकर कस्यो निषंगा । कर को दण्ड कठिन सारंगा ॥

सारंग कर सुन्दर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो ।
भुजदण्ड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे ।
ब्रह्माण्ड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे ॥
बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥

बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोर्वाहि राम सर निकरन्हि हए॥
भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदण्ड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मन्दोदरी उर कंप कंपित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लह लहात जनु ब्याल॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥

और बाण प्रताप सुनिए—

तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इन्द्र धनुष अनेक की बर बारि तुंग तमाल ही॥
प्रभु देखि हरष विषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥
माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥

ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास॥
काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥

(११५)

सज्जनों ! अब आप इन श्रीराम बाण का अन्तिम चमत्कार सुनिये। जहाँ इकतीस बाण छूटे तो एक ही चाप से परन्तु लक्ष्य भिन्न-भिन्न भेदन किया। यथा—

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस।।

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा।।
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा।।

श्रीराम बाण तो घोर मंदमति खल, पाप, राशि राक्षसों के लिए तो घर आए तीर्थ के ही समान हो गए थे। नहीं तो भला वे राक्षस तीर्थ कहाँ कर पाते। यथा—

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।।
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही।।

अतः प्यारे श्रोताओं आप को हमने तीन बातों पर प्रारम्भ में विचार करने को कहा था। श्रीराम श्रीरामराज्य और श्रीराम बाण। हमने आप को संक्षेप में ही बताया है।

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्हके बिमल बिचार।।

●:०:●

॥ श्राहांरः ॥

श्री धर्ममूर्ति श्रीराम

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह :।
धी विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

अर्थात्-धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय, निग्रह, पवित्रता, अचौर्य, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध। ये सनातन धर्म के दश लक्षण हैं। यह दशों लक्षणों से युक्त धर्म महान् मंगलकारी है। इनमें से एक लक्षण भी जिनमें उतर जाय, वहीं सिद्धों का सिद्ध और पीरों का पीर हो जाता है। फिर दो-चार लक्षण जिसमें आ जांय उसका तो सज्जनों फिर कहना ही क्या है? दशों लक्षण जिसमें परिपूर्ण रूप में साङ्गोपाङ्ग विराजमाव हों, उसे अपना परम सौभाग्य समझ कर कृतार्थ होने के लिए जिसमें पूर्ण समाये हों, वह कोई मनुष्य नहीं हो सकता। वह सिवा प्रभु के दूसरा कोई नहीं है।

अतः भाइयों श्रीराम ही परब्रह्म हैं। नरलीला करने के लिए तथा सारे संसार को शिक्षा देने के लिए ही इस धराधाम पर प्रभु आए हैं। साक्षात् धर्मम्य धर्म मूर्ति ही नहीं, शोभा सम्पन्न श्री धर्म ही हैं। जिनमें सभी लक्षण परिपूर्ण हैं। सज्जनो! अब हम एक-एक लक्षण पर प्रकाश डालेंगे। आप ध्यान से सुनिए।

श्रोहरिः

धृति (धीरज)

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ।।

श्रीकरुणाकर अशरण शरण करुणा वरुणालय-विशुद्ध सत्वमय परममनोहर अदृश्य-अग्राह्य-अव्यपदेश्य परब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत विनोद-श्रीमद्राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र रूप में धीरज का सागर लहराता है। जिसका पारावार नहीं है। सर्वथाऽपि पूर्णतम पुरुषोत्तम वेदान्त वेद्य भगवान का ही श्रीराम चन्द्र रूप में प्राकट्य होता है। तभी तो उनके दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, अनुगमन मात्र से ही प्राणियों की परम गति होती है। समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म कारण समस्त ब्रह्माण्ड प्रपंचमय क्षेत्र के कूटस्थ निर्विकार भासक श्रीराम ही हैं। जिस आनन्द सिन्धु सुखरासी के एक तुषार कण से अनंत ब्रह्माण्ड आनंदित, प्रसन्न, मुकलित होता है वही श्रीराम हैं। वे आनंदके भी आनंददाता, सुख के भी परम सुख हैं। प्राण के भी महाप्राण हैं। पहला धीरज तो प्रभु का श्री विश्वामित्र के साथ दिखता है जब यज्ञ विध्वंस के लिए सुबाहु-मारीच आए तो प्रथम युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर भी श्रीराम प्रभु सुमेरु के समान अटल-अचल बने रहे। अधीर नहीं हुए, धीरज नहीं खोया। फिर जनकपुर में देखा गया कि कितने राजाओं का भयंकर कोलाहल हो रहा था। सब डर गए थे। यथाः—

कोलाहलु सुनि सीय सकानी । सखीं लवाइ गईं जहँ रानी ।।

परन्तु श्रीराम धैर्य से अपने आसन पर बैठे रहे। जब भगवान् परशुराम आए, सब डर गए। परन्तु इतना लक्ष्मण से गरमागरम संवाद हो रहा था, तो भी प्रभु श्रीराम शान्ति और धीरज नहीं त्यागे, बैठे रहे। यथा :—

देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला ।।
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ।।

भगवान् परशुराम के कोप से सुर, असुर, नगर, नर, नारी त्रसित भयाक्रान्त हो चुके थे। उस समय भी प्रभु श्रीराम हर्ष-विषाद रहित शान्ति मर्यादा में बोले—

सभय बिलोके लोग सब-जानि जानकी भीरु ।
हृदय न हरषु-विषादु कछु, बोले श्रीरघुबीरु ।।
नाथ संभु धनु भंजनिहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ।।
आयसु काह कहिअ किन मोही । सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ।।

उस महाक्रोध के वातावरण में महान् धीरज का परिचय देते हुए प्रभु श्रीराम बोले - सेवक को आज्ञा दीजिए। इतना ही नहीं, जब अति क्रोध में भरकर भगवान् परशुराम श्रीलक्ष्मण को मार डालने को उद्यत हो गए, तब

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुल भानु ।।

भृगुपति का कोप कृसानु के तुल्य बढ़ रहा था। उसमें वीर लक्ष्मण का उत्तर आहुति सरीखे पड़ रहा हो तो क्रोध को शान्ति करने के लिए रघुकुलभानु प्रभु श्रीराम शीतल जल के समान मधुर बचन बोले—

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ।।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ।।
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने ।।

यहाँ पर धीरज लगता था, मूर्तिमान स्वरूप में ही है।

अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी ।।

और अन्त में वही हुआ, जिसका भय पहले से ही सबको था। श्रीराम पर ही श्रीपरशुराम जी महाराज क्रोधित हो गए। इनकी शान्ति प्रियता अपार धीरज को चुनौती सी दे दिया। श्रीरघुकुल भूषण श्रीराम को ही युद्ध के लिए ललकारने लगे। यथा—

छलु तजि करहि समरु सिव द्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही ।।
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ ।।

भृगुपति भगवान् परशुराम कुठार उठाए, युद्ध का आह्वान करते हैं। परन्तु धैर्यशाली श्रीराम सिर नवाए, मन में मुसकाते धीरज का महान् परिचय दे रहे हैं।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठार आगें यह सीसा ।।
जेंहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी ।।

इसलिए सज्जनों श्रीराम प्रभु के धीरज का यह दूसरा उदाहरण आपने सुना और अब सुनिये— धीरज का महान् उदाहरण जो कहीं भी किसी में देखने को तो क्या सुनने को भी नहीं मिला। दारुण बनवास का प्रकरण आया और श्रीराम लक्ष्मण सीता को महाराज दशरथ ने कैकेयी की आज्ञा से चौदह वर्ष का वनवास देने पर भी कोई हर्ष विषाद नही हुआ।

(११९)

प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य में सदास्तुसामंजुलमंगलप्रदा ।।

जिनको पहले यह कहा गया कि आपको कल प्रातःकाल श्रीअयोध्या का राज्य सिंहासन दिया जायेगा और भोर होने के पहले ही जिन्हें चौदह वर्ष का बनवास। वह भी तापस वेष विशेष उदासी बनकर रहने को आज्ञा दी गयी, परन्तु दोनों ही अवस्था में श्रीराम प्रभु धैर्यशालो वने रहे। कोई भी दुःख तो क्या किंचित मलिनता भी नहीं आयी। चेहरे पर मुखाम्बुज श्री ज्यों की त्यों पूर्ण बनी रही। चेहरे पर उदासी तक नहीं आयी। मन में महान् धीरज बना रहा। इतना ही नहीं, इस महान् दारुण-आदेश को सुनकर भी प्रभु विचलित नहीं हुए। अपितु—

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू ।।
बोले बचन विगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन ।।
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।

मुनिगन मिलनु विसेषि बन सर्बाहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ।।

भरतु प्रान प्रिय पार्वाहि राजू। विधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ।।
सेवहि अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं विषु मागी ।।
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं ।।

इतना ही नहीं सहर्ष बनवास जाने को तैयार हो जाते हैं। कोई दुःख क्षोभ नहीं होता। अपितु दुःखी क्षुभित महाराज दशरथ जी को देखकर कहते हैं कि माँ—

अंब एक दुखु मोहि विसेषी। निपट विकल नरनायकु देखी ।।
थोरेहिं बात पितहिं दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ।।
राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु बड़ अपराधू ।।
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ।।
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ।।

माता को सराहि करके प्रभु ने महाराज दशरथ के चरणों में प्रणाम करते हुए निवेदन किया, हे तात मंगल के समय व्यर्थ स्नेह को छोड़ कर शोच का त्याग करिये और हमें बनवास जाने की आज्ञा दीजिए।

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥
धन्य जनमु जगती तल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥
आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आयउं मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥

यह रहा सज्जनों धीरज का प्रगाढ़ उदाहरण। जो दुनियाँ के इतिहास में दीपक लेकर खोजने पर कहीं नहीं मिल सकता। क्योंकि प्रभु श्रीराम ही धर्म के विग्रहवान शाश्वत एक मूर्ति हैं। सब अंग धर्म के जिनमें परिपूर्ण हैं। कहीं भी न्यूनता नहीं हैं। इतना ही नहीं, अपितु अपार प्रसन्नता का अनुभव किया है।

मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥

नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥

माता के पास जाकर भी धीरज को संभाले रखा। क्योंकि महान् ममता की बाढ़ में धीरज बह न जाय। अतः नम्रता से माता से बोले। यथा—

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥
धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहु मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनंद अंब अनुग्रह तोरें॥

बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥

माता को तो सुनते ही बाण सम बचन लगे। पिता दुःख के महासमुद्र में डूब रहे थे। नगरवासी बिकलातुर थे। परन्तु श्रीराम प्रभु का धीरज अडिग, अचल निश्चल रहा। यह है धीरज। हमने आप सबको पहलेही बताया है कि प्रभु श्रीराम में पूर्ण धृतिः (धीरज) प्रतिष्ठित है। प्रभु श्रीराम महान् धैर्यशाली हैं। यत् किंचित श्रृष्टि में यदा-कदा कहीं-कहीं धैर्य दीखता है। यह उन्हीं प्रभु का ही प्रसाद प्रताप है। अब आप जरा संग्राम भूमि में धीरज देखिए। रावण प्रबल प्रतापी रथ, अस्त्र-शस्त्र, साजसज्जा सेना से परिपूर्ण है। युद्ध में पहले से ही लगा है। पुराना मंजा हुआ योद्धा है। प्रभु श्रीराम अकेले धरणी पर खड़े होकर लड़ने जा रहे हैं। वह रथारूढ़ है। यह दृश्य देखकर सुर, मुनि, गंधर्व, बानर, भालू डर गए। बिभीषण तो अधीर हो गए।

रावनु रथी विरथ रघुबीरा। देखि विभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहि तन पद त्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना॥

तव प्रभु भक्तराज विभीषण को घोर अधीर देखकर मुस्कराकर बोले। वीर यह रथ क्षण भंगुर है और नाशवान् है। हम तुमको अजेय रथ बतलाते हैं।

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर विग्यान कठिन को दंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर॥
सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरसि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुखपुंज॥

अर्थात् प्रभु ने उस मंगलमय रथ की कल्पना किया, जो अजेय, अपराजेय था। जिसमें शौर्य और धीरज ही दो चक्के हैं। सत्य-शील ये ही उसके पताका हैं। अतः श्रीराम प्रभु का धीरज अपार है। प्रभु श्रीराम धर्म के पालन, उद्धार तथा चरितार्थ करने आए थे। प्रभु श्रीराम में धर्म के दशों लक्षण परिपूर्ण हैं। हम अल्पमति अपनी मति से प्रभु के इस अपार धीरज पर क्या प्रकाश डाल सकते हैं। हमारा परिश्रम तो उसी भाँति है, जैसे चींटी महासागर का थाह लेने की घोषणा करे। अपंग पर्वत शिखर पर चढ़ने की चेष्टा करे, अन्धा दूर की वस्तु देखने का निष्फल प्रयास करे, परन्तु प्रभु कृपा और श्रीगुरु महाराज की अमृतमयी वाणी एवं अमित कृपादृष्टि ही इसमें काम कर रही है। हम तो निमित्त मात्र ही हैं। यह "प्रवचन रत्नाकर" जिसमें श्रीराम प्रभु के पावन चरित्र से ही हमने रत्न खोजने शुरू किये हैं, अवश्य ही रत्नाकर बनकर सब जगत का कल्याण करेगा। ऐसी प्रेरणा श्रीगुरु महाराज हमारे हृदय में दे रहे हैं। अतः सज्जनो अब दूसरे अंग पर चर्चा प्रारम्भ करेंगे।

श्रीहरिः

क्षमा

क्षमा ही सज्जनों का दिव्य भूषण है।

कल्याणानाम निधानं कलिमल मथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयंयन्मुमुक्षो सपदिपरिपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्म द्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये राम नाम ।।

जो स्वयं कल्याण के ही निधान हैं। कलिकाल के महान् मल को मथन करने वाले हैं और पावनों के भी पावन हैं। जो (भगवान) मुमुक्षु जनों के एक मात्र पाथेय हैं। जिनकी कृपा से ही परम पद प्राप्त होता है। जो शान्ति विश्राम के एक ही स्थान हैं तथा चतुर सज्जनों के जीवन-धन हैं। और धर्मरूपी वृक्ष के मूल हैं, बीज हैं, वही प्रभु श्रीराम हैं। प्रभु श्रीराम में धर्म के सभी अंग प्रतिष्ठित हैं। अब हम क्षमा देखते हैं—

सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा ।।

हाँलाकि इन्द्रपुत्र ने अक्षम्य अपराध किया था, तो भी श्रीरघुकुल तिलक श्रीराम प्रभु ने पहले क्षमा प्रदान करके जीवित रहने दिया। अब प्यारे श्रोताओं आप का कथा में प्रेम तथा उत्साह देखकर ही मुझमें नई-नई सूझ उपजती है। हम समझते हैं, इस कथा की गंगा के लिये आप सब ही नरेश,भागीरथी के समान हमको प्रतीत होते हो। जिसमें गंगोत्री से श्री गंगासागर तक पावन लहरों का हिलोर अति ही मनोहारी है। अब हम आपको श्रीराम के गूढ़ क्षमा का उदाहरण प्रारम्भ करते हैं। देखो श्रीराम प्रभु ने प्रारम्भ में दो प्रतिज्ञा किया था। यथा —

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ-जाइ सुख दीन्ह ।।

चित्रकूट में सन्त महात्माओं का वह दुःख देखकर श्रीराम प्रभु द्रवित हो गए थे। यथा —

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुबीर नयन जल छाये।।

नयनों में जल आ जाने पर कारुणीक श्रीराम प्रभु ने भुजा उठाकर के प्रतिज्ञा किया कि इस पृथ्वी पर से मैं राक्षसों का नाश कर डालूंगा। सम्पूर्ण बसुन्धरा अम्बरा को मैं राक्षस हीन कर डालूंगा। जिन्होंने इतने अत्याचार निरीह साधु पुरुषों पर किया है। वे अधम राक्षस अब पृथ्वी पर रहने लायक नहीं हैं। अतः उनका बध मैं अवश्य ही कर डालूंगा। यह प्रतिज्ञा चित्रकूट में महात्मा अमलात्मा सन्त परमहंसों के सामने किया था और दूसरी प्रतिज्ञा घायल पक्षीराज जटायु के सामने किया। यथा—

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ।।

हे जटायु भक्त आप जाव अपने सुरधाम को । लेकिन हे तात इस दारुण सीताहरण प्रसंग को स्वर्ग में महाराज दशरथ को नहीं सुनाना । हाँ यदि हम राम है तो रावण अपने परिवार, कुटुम्बियों, सेना सहित स्वयं जाकर ही सुनायेगा । अर्थात् मैं रावण का वन्धु बान्धवो, कुटुम्ब, सेना सहित नाश कर डालूँगा । श्रीराम प्रभु की दो प्रतिज्ञा थी । राक्षसों का पृथ्वी से नाश करना तथा रावण का परिवार सहित बध कर डालना । और दोनों प्रतिज्ञा ही अमोघ थी । परन्तु जब सागर के तट पर बिभीषण आये शरणागति में तो पहले दूर से भक्तराज ने अपना परिचय दिया यथा —

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता । नयनानंद दान के दाता ।।
बहुरि राम छबि धाम बिलोकी । रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ।।
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन । स्यामल गात प्रनत भय मोचन ।।
सिंघ कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन मन मोहा ।।
नयन नीर पुलकित अतिगाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ।।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बंस जनम सुरत्राता ।।
सहज पाप प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ।।

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि-त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।

अस कहि करत दण्डवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ।।
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ।।

अर्थात् उसको मिलते ही प्रभु ने लंकेश कहकर सम्पूर्ण लंका का राज्य ही तुरन्त दे डाला । प्रभु की दोनों प्रतिज्ञा को भक्तराज बिभीषण पहले ही बता देते हैं, कि महाराज आपने रावण को परिवार सहित बध करने की प्रतिज्ञा की है । सो प्रभु मैं दशानन का भ्राता हूँ । और दूसरी प्रतिज्ञा राक्षसों को पृथ्वी से नाश करने की है । सो प्रभु मेरा भी जन्म निशाचर वंश में ही है । आपकी दोनों प्रतिज्ञा हमी पर पहले लागू होती है । परन्तु प्रभु ने दीन बचन सुनने पर क्षमा कर दिया । यह है क्षमा —

अब आप देखिये। सुबेल गिरि के भारी मैदान में प्रभु श्रीराम और राक्षसराज रावण का युद्ध चल रहा है। प्रभु श्रीराम के प्रचण्ड प्रहार से रावण घायल हो गया है। रथ, सारथी, घोड़े मार डाले गए। उसको हताश उदास देखा तो परम कारुणीक महान् क्षमावान् प्रभु बोले —बीर आज तुम अब बहुत थक गये हो। इसलिये आप अपने सुरक्षित लंकागढ़ चले जाओ। भोजन आराम करो। दवा दारू करो। मरहम पट्टी करके खूब आराम करो। कल फिर तैयारी करके नये रथ सारथी सहित मैदान में आना, तब हम फिर युद्ध करेंगे। बिधान यह है कि शत्रु घायल हो जाय तो और शीघ्र ही उस पर प्रहार करना चाहिये। संभलने अथवा तैयारी का मौका तक नहीं देना चाहिये। परन्तु महान् क्षमावान् प्रभु श्रीराम ने क्षमा प्रदान किया उस दिन भी—

अनुजानामि गच्छत्वमिदानीं वाण पीडितः।
प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलंमम्॥

ऐसा उदाहरण सम्पूर्ण इतिहास में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। सभी लोग शत्रु को छल, बल, कपट, शौर्य किसी भी प्रकार से बध ही करना चाहते हैं। परन्तु धन्य हैं श्री रामचन्द्र महाप्रभु जिनमें क्षमा शोभती है। और क्षमा सबल को ही शोभा देती।.यथा—

क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो बिषदन्त विहीन विनीत सरल हो॥

इतना ही नहीं, रावण को प्रभु ने उपदेश में भी क्षमा की महिमा बताई थी।

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥

क्षमा तो सज्जनों सत्पुरुषों का ही भूषण है। फिर प्रभु में तो क्षमा अपने को धन्य करने के लिये होती है।

छमा सील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ।।

प्रभु को क्षमा माँगने में भी कहीं कोई संकोच नहीं होता। श्रीजनकपुर धाम में सम्पूर्ण स्वयंवर की प्रजा के सामने महान् क्रोधी भगवान् ब्राह्मण कुल भूषण परशुराम से भी प्रभु क्षमा माँगते हैं। कैसी क्षमा की विशेषता है।

सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे ।।

हे बिप्र जी हम सब प्रकार से ही आप से हारे हुए हैं। आप हमारे सब अपराधों को हे प्रभु क्षमा करो। क्षमा की महिमा वहुत बड़ी है।

छमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ।।

प्रभु नारायण तो अनादि काल से क्षमावान है। उनका भूषण ही क्षमा है। आप श्रीप्रभु के मुखारबिन्द से जो पावन उपदेश नारद को मिला जो प्रभु ने श्रीलक्षण को वताये उनमें क्षमा ही प्रधान है। आप सुनो।

सन्तन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा ।।
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्हते मैं उन्ह के बस रहऊँ ।।
षट विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ।।
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी ।।
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ।।

गुनागार संसार दुःख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।।

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ।।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र पद प्रेमा ।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।।
बिरति बिबेक विनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला ।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ।।

इन उपदेशों में प्रभु ने क्षमा को ही प्रधान रखा है बाकी सब उसके अंग हैं तथा सज्जनों क्षमा ऐसा महान् प्रकाशमान रत्न है, जो सब जगह ही प्रतिष्ठा पाता है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में प्रभु श्री नारायण द्वारिकाधीश महाबली मित्र पार्थ को क्षमा की महिमा बताते हैं।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नाति मानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(श्रीमद्भगवद्गीता अं० १६—३)

तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर भीतर की शुद्धि और किसी में भी शत्रु भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव यह सब तो हे अर्जुन दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं। यह क्षमा दैवी संपदशाली पुरुषों के परम लक्षणों में से एक है। यह देवता का सुलक्षण है।

एकः क्षमावतां दोषो—द्वितीयो नैवोप पद्यते।
यदैनं क्षमयायुक्तम्—असक्तं मन्यते बुधैः॥

क्षमावान् पुरुष में केवल एक ही दोष कहा गया है, दूसरा नहीं, क्षमायुक्त पुरुष को विद्वान लोग असमर्थ समझते हैं। परन्तु वह शोभा है, असमर्थता नहीं। "क्षमा वीरस्य भूषणम्"। यह क्षमा सनातन धर्म का ही एक अंग है। थोड़ी बहुत सबमें रहती है। परन्तु पूर्णता तो प्रभु में ही होती है। क्योंकि वही धर्म के साक्षाद् मंगलमय पावन स्वरूप हैं। और उन्हीं से तुषार कण की भाँति प्राप्त होकर सारे संसार को क्षमाशील बनाती है। अतः धन्य हैं श्री रामचन्द्र प्रभु, जिनमें यह क्षमा पूरी तरह प्रतिष्ठित है।

यतः परहिताः सर्वे क्षमा साराहि साधवः।

अतः सज्जन साधु पुरुषों का क्षमा ही आधार है।

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥

खल की क्रूर वाणी तथा उनके अघात को सन्त लोग, सज्जन पुरुष क्षमा करते हुए ऐसे ही सह लेते हैं। जैसे वर्षा की बिकराल बूँदों को महान् पर्वत तटस्थ भाव में रहकर बिनु कुछ बोले सह जाते हैं।

सहनं सर्व दुःखानां—अप्रतिकार पूर्वकम्।
चिन्ता विलाप रहितं साततिक्षा निगद्यते॥

परन्तु अल्प प्राण, अल्प वीर्य पुरुष क्षमा को असक्ति समझ बैठते हैं। यह उनकी अज्ञानता ही है।

शुचिः पिशाचो विकलो विचक्षणः, क्षमोप्यसक्तः बलवांश्च दुष्टः।
निश्चिन्तं चौरः सुभगोऽपि कामी, को लोकमाराधयितुं समर्थः॥

अर्थात् जो बहुत पवित्र ढंग से रहता है, स्पर्शास्पर्श बचाता है। त्रिकाल स्नान संध्या करता है। तन, मन से पवित्र, शुचि रहता है। लोग उसे ही पिशाच समझते हैं। तथा जो बिलक्षण, बिचक्षण बुद्धि रखता है, नई-नई कल्पनायें किया करता है, उसे लोग पागल या विकल समझते हैं। और जो वीर पुरुष क्षमावान हैं, उसे असक्त यानी नपुंसक समझते हैं। और जो वीर बलवान पुरुष हैं, उसे लोग सोचते हैं बहुत दुष्ट होगा। क्योंकि बलवान है। अतः गुण्डा होगा। जो प्रभु भरोसे पर निश्चिन्त है, हाय-हाय नहीं करता, जो मिल जाता है, उसी में सन्तोष करके सन्तुष्ट रहता है, उसे ही लोग चोर समझते हैं। सोचते हैं दिन भर तो भजन ही करता है। खाने-पीने का जुगाड़ कहाँ से करता होगा। अतः पक्का चोर होगा। और जो शरीर से सुन्दर है, सुभग है, प्रसन्न है, शोभावान है, उसे ही लोग कामी स्त्रैण समझ बैठते हैं। अतः इस दुविधा वाले संसार को कौन संतोष दे सकता है। कोई भी नहीं। अतः प्यारे मनोहर श्रोताओं आपने सनातन धर्म के प्रधान दश लक्षणों में दो का वर्णन संक्षेप में सुन लिया। ये दोनों लक्षण आनंदकंद सच्चिदानंद पूर्णतम पुरुषोत्तम परमात्मा परमतत्व परमादरणीय परमगुणवान्, शोभावान प्रभु श्रीराम में पूर्णरूपेण शोभा प्राप्त करते हैं।

श्रीहरिः

दमः

बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ।।

इस शरीर में दश इन्द्रियाँ हैं। जो मन के आधीन हैं। मन बुद्धि के आधीन है, मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है, वही इन्द्रिय अपने व्यापार में सफल होती है। मन बिहीन इन्द्रिय मात्र चिन्ह या गोलक ही बन कर रह जाती है।

इन्द्रियाँ बहुत प्रवल हैं। ये सबको नाच नचाती हैं। इन्होंने किसी को भी नहीं छोड़ा। बड़े-बड़े ऋषि मुनि इनके चपेट में आकर धूलिधुसरित होते देखे गए हैं।

सोउ मुनि ग्यान निधान मृग नयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट ।।

एक-एक इन्द्रिय के वश में जाकर क्या-क्या दुर्गति उठानी पड़ती है जरा सोचो—

कुरङ्ग-मातंङ्ग-पतंङ्ग-भृङ्ग-मीना हताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते, यः सेवते पंचभिरेव पंच ।।

हिरण, हांथी, पतिंगा, भँवरा, मछली ये एक ही इन्द्रिय के वशीभूत होकर नाश को प्राप्त हो जाते हैं। हिरन-नाद के कारण श्रवण सुख लोभ से, हाथी-हथिनी के स्पर्श सुखलोभ से, पतंग-दृष्टि के लोभ से, मछली-जीभ के स्वाद के लोभ से मारे जाते हैं। जब एक-एक इन्द्रिय के बशीभूत इन प्राणियों की यह दशा है, तब दशों इन्द्रियों के जो दास बन चुके हैं, उनका नाश होने में कितना बिलम्ब है अर्थात् बिल्कुल नहीं। इन्द्रियों के वश में होने से यह दशा है, और इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं वह देव कोटि का महामानव हो जाता है, सभी तो छोड़ दीजिए। एक इन्द्रिय पर भी जिसका वश है वह सिद्ध है। कहते हैं कि प्रभु श्रीराम जब जंगल में गए तो वीर लक्ष्मण को भेजा कि जावो इस जंगल के राजा से आज्ञा माँग लो कि हम यहाँ १४ साल तक निवास करना चाहते हैं, तो धर्मात्मा लक्ष्मण जी महाराज गए। वह जंगली राजा नंगा ही रहता था। श्री वीर लक्ष्मण ने पूछा कि हे जंगल के राजा साहब ? प्रभु श्रीराम पत्नी तथा भाई सहित आप के जंगल में रहना चाहते हैं। हमें आज्ञा लाने भेजा है तो वह कुछ बोला नहीं, केवल एक हांथ से जबान जिह्वा तथा एक हांथ

से उपस्थ इन्द्रिय पकड़ लिया। श्री लक्ष्मण जी सोचे कि पूरा जङ्गली है। मुख से तो कुछ बोलता नहीं, सीधे श्रीराम प्रभु के पास चले आए और उसकी सारी क्रिया श्रीराम प्रभु को वताया कि महाराज वह कुछ बोला नहीं महा जङ्गली है। जङ्गली हरकतें करता था। कहाँ भेज दिया आपने मुझे। वह तो अपनी जबान और उपस्थ इन्द्रिय पकड़ कर खड़ा हो गया, पूंछने पर कुछ बोला नहीं।

श्रीराम प्रभु बोले, वीर उसने जङ्गल में रहने की आज्ञा तो दे दिया और दो निर्देश भी दिए हैं, तुम नहीं समझे। वह बहुत बुद्धिमान है। तुम उसे महा जङ्गली कह रहे हो। वीर उसने संकेत में ही कह दिया कि जिह्वा और जननेन्द्रिय को वश में रख सको तो यहाँ आराम से रह सकते हो। कोई भय नहीं है। इन्द्रियों की परवशता ही सर्वत्र दुःखदायी है। यथा—

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनाम्॥
(श्री म. भ. गी. ३-४०)

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान विज्ञान नाशनम्॥
(श्री म. भ. गी. ३-४१)

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यःपरं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
(श्री म. भ. गी. ३-४२)

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥
(श्री म. भ. गी ३-४३)

इन्द्रियां, मन और बुद्धि इसके वास स्थान कहे जाते हैं और यह काम इन मन बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके इस जीवात्मा को मोहित करता है। इसलिए हे अर्जुन तू पहले इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले इस काम पापी को निश्चय पूर्वक मार डाला है। क्योंकि जो इन्द्रियों से परे उसे ही श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म कहते हैं इन्द्रियों से परे मन है, और मन

से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से अत्यन्त परे है वही आत्मा है। इस प्रकार बुद्धि से परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार से बलवान् और श्रेष्ठ अपनी आत्मा को जानकर, बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो इस दुर्जय कामरूपी शत्रु को मार डालो। इन्द्रियों की यह महिमा है सज्जनों। इन्द्रियों का दमन ही "दम" कहलाता है। कहते हैं ब्रह्मा जी महाराज के पास देवता, दानव, मानव सब गए और बोले, विधाता आपने हमारा सबका जनम तो दिया, परन्तु कुछ उपदेश नहीं दिया। विधाता हँस कर बोले "द"। केवल एक अक्षर "द" ही बोले। देवता, दानव, मानव, सब अपने-अपने लोकों को वापस चले गए और एक ही "द" का तीनों ने अलग-अलग अर्थ किया। देवताओं ने दमन, दम अर्थ किया और बोले देवता अधिक इन्द्रिय लोलुप होते हैं। अतः धाता विधाता ने हमको इन्द्रिय दमन का आदेश दिया है।

दानवों ने उसी "द" का दया अर्थ किया और सोचा हमारी हिंसक क्रूर प्रकृति है। अतः जगत्सृजनहारकमलयोनिब्रह्मा ने हमको दयामय जीवन बिताने की आज्ञा दिया है उन सबने उसी "द" का दया अर्थ कर लिया और मनुष्यों ने "द" शब्द का दान अर्थ किया और सोचा कि हम लोग रात-दिन स्व परिवार के ही भरण-पोषण में लगे रहते हैं, परोपकार हेतु दान नहीं देते। अतः जगत् धाता विधाता कमल योनि चतुरानन रुण्डपिण्डमुण्ड निर्माता प्रभुब्रह्मा ने हमारे सबके कल्याण के लिए दान का उपदेश दिया है। सज्जनो! यह तो ब्रह्मा का उपदेश रहा है। अब आप श्रीराम प्रभु के उपदेश में भी "दम" की महिमा सुनिये। भगवती श्रीसीता जी को खोजते-खोजते श्रीराम प्रभु महाभागा भीलनी सेवरी के आश्रम पर आए। सेवरी की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। यथा—

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि-पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे॥

कंद मूल फल सुरस अति-दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए-बारंबार बखानि॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ।।

सबरी की अद्भुत अलौकिक प्रीति देख कर प्रभु ने बहुत कृपा की और महापुण्य मय नवधा भक्ति का उपदेश दिया।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुन धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुर पद पंकज सेवा-तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन-करइ कपट तजि गान ।।

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें सन्त अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।

तो प्यारे श्रोताओं! इसमें छठी भक्ति "छठ दम सील" इन्द्रिय दमन ही है। वह प्रभु में पूर्ण हैं।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं ।।
मोहिं अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी ।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ।।

अतः सज्जनों! श्रीराम ही श्री नारायण के अवतार परब्रह्म हैं। सगुण निर्गुण वही हैं। अतः धर्म का यह तीसरा लक्षण भी प्रभु श्रीराम में परिपूर्ण है। उन्हीं से उपदेशित सारा संसार इन्द्रिय दमन की पावन शिक्षा ग्रहण करता है।

—:०:—

श्रीहरिः

अस्तेय: (अचौर्य)

किसी की भी सम्पत्ति को विना मालिक के पूछे या उससे छिपा कर उठा लेना चोरी है। समस्त ब्रह्माण्ड की सम्पदा पड़ी हो और मन न डिगे। उसकी किसी भी वस्तु को उठाने या चुराने का मन भी न हो वही अस्तेय है। श्रीराम प्रभु तो इस प्रकार के चोरो को दण्ड देने के लिए ही आते हैं, वह चोर श्वान की भाँति होता है। सबसे सशंकित तथा भयभीत रहता है। चारों तरफ से डरा हुआ होता है। यथा :—

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥

चोरी वैसे भी बहुत बड़ा अपराध है। भगवान् राम में अस्तेय पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित था। नहीं तो अपार वैभव राशि लंका में जीती गई, परन्तु प्रभु जैसे गये थे, वैसे ही तीनों वापस आ गए। एक तोला भी नहीं लिया। प्रभु मात्र इशारा कर देते तो पूरीं स्वर्णमयी लंका कब की श्रीअयोध्या में आ जाती। परन्तु प्रभु के मन में कभी भी यह कुभाव प्रगट नहीं हुआ।

कहते हैं, लंका जीतने पर वानरों ने एक सभा किया और सभा में सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव रखा गया कि लंका तो जीत ली गयी है, और अब श्री अवध ही चलना है। अतः लंका जीत की कोई निशानी श्रीअयोध्याजी जरूर ले चलनी चाहिए। क्योंकि आगे आने वाली पीढ़ी को कैसे मालूम पड़ेगा कि हमारे वीर पूर्वजों ने कभी सोने की लंका भी जीती है। अतः भविष्य की नवीन यादगार के लिये यहाँ लंका से निशानी बतौर जरूर कुछ ले चलना चाहिए। फिर विचार किया गया कि लंका में तो सब सुन्दर ही है। अरे जहाँ का किला, मकान, बाजार, हाट अस्पताल, वाचनालय, स्नानघर, शौचालय सब पक्के सोने का ही है. वहाँ के ऐश्वर्य का क्या कहना ? इसलिए क्या चीज ले चला जाय, किसी ने कुछ राय दिया. किसी ने कुछ राय दिया और फिर सबने श्रीहनुमान जी महाराज से पूछा कि पवन पुत्र हम लोगों ने तो युद्ध के समय ही लंका देखा है-वह भी बाहर ही बाहर। आप तो भगवती विदेह नंदिनी श्री सीताजी को खोजते समय सम्पूर्ण लंका देखी होगी। हे बानर शिरोमणे ! आप बता सकते हो कि इस लंका

पुरो में सबसे लुभावनी मन भावनी चीज क्या है ? या इस लंका नगरी की कौन सी वस्तु अच्छी लगी है। आप को याद है कि नहीं। श्रीहनुमान जी महाराज बोले, वीरों हमने लंका को खूब अन्दर-बाहर से देखा है और यह संसार भी देखा है। परन्तु इस सम्पूर्ण सृष्टि में हमको लंकाधिपति राक्षसराज रावण का राज सिंहासन जितना अच्छा लगा, उतनी दूसरी कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगी। सूर्य, चन्द्र भी जिसके आगे निंदित होते हैं। देवराज भी जिस सिंहासन के आगे माथा टेकते हैं। यम, वरुण, कुबेर, वायु, रात-दिन जिसकी सफाई, रंगाई और पालिस में लगे रहते हैं, वैसा तेजस्वी वर्चस्वी राजसिंहासन हमने कहीं नहीं देखा। जिस राज सिंहासन पर बैठकर वह वीर अभिमानी प्रतापी राजा रावण राज्य करता था, वैसा राज सिंहासन हमारी दृष्टि में तीनों लोकों में कहीं नहीं है। जिसके पाये के नीचे महाकाल बाँधा जाता था। जो नत मस्तक होकर ही रहता था, मारे भय के ऊपर सिर भी नहीं उठाता था, वह राज सिंहासन अद्वितीय अद्भुत है जिस पर बैठकर वह त्रिलोकी का शासन करता था। सब सुनकर वानर वीर हर्षित हो उठे और श्रीपवनकुमार की बहुत सराहना किया तथा कहा कि समयोचित बात कही है आपने।

प्रभु श्रीराम, सीता, लक्ष्मण अब श्रीअयोध्या चलेगें। अतः उसी राजसिंहासन पर ही बैठ कर चलेगें। इसलिये हे वीर शिरोमणि हनुमान् जी महाराज अब आप बिलम्ब न करो, अपितु तुरन्त लंका गढ़ जाइए और रावण का वह दिग्विजयी राजसिंहासन शीघ्र ले आइये। वीर भट विजयी वानर वाहिनी के सर्व सम्मत प्रस्तावित प्रस्ताव को श्रीहनुमान जी महाराज भी 'शीघ्र नहीं टाल सके और जाने की तैयारी करने के पहले इस पारित प्रस्ताव में एक संशोधन श्रीहनुमान जी महाराज ने किया और कहा, हे भाइयों आप सबकी बात मानकर मैं अभी लङ्का नगरी जाता हूँ। परन्तु प्रधान मंत्री श्रीजाम्बवन्त से भी जरा राय मशविरा ले लेना चाहिए, क्योंकि सेना के सदा ही वे वरिष्ठ प्रधान मंत्री रहे हैं। युद्ध के उस मुहाने पर सदा अग्रणी की भाँति आगे ही रहे हैं। अतः इस लेन-देन वाले मामले में भी उनकी राय अनिवार्य है। सब विजयी वीर बानर बोले, कोई बात नहीं है। उनको भी आप इस बानर वाहिनी के प्रस्ताव को बता दो, वे नहीं, थोड़े ही करेगें, वे समझदार हितैषी उदार विचार वाले आदमी हैं। स्वीकार कर ही लेगें। ऐसा ही हम सबका विचार है। आप जाते-जाते उनसे भी राय ले लो। सबकी बात सुनकर श्रीहनुमानजी महाराज अति वेग से लङ्का नगरी की ओर जाने लगें तो बीच में श्री जाम्बवन्त जी मिल गए और बोले, अरे हनुमान जी महाराज इतने अति वेग से फिर लङ्का की ओर अब जाने का क्या प्रयोजन है ? श्री हनुमान् जी महाराज बोले कि हे प्रधान मन्त्री वीर शिरोमणि

जाम्बवन्त जी सब बानरों ने मिलकर एक प्रस्ताव किया है कि जब लङ्का जीत ही ली गयी है तो निशानी के तौर पर रावण का राजसिंहासन श्रीअयोध्या ले चला जाय। सब वीर विजयी बानरों ने इसी काम के लिए मुझे भेजा है और आप से राय लेने को कहा है। श्री जाम्बवन्त जी बोले कि हे हनुमान जी आप ने यह बात श्रीरघुनाथ जी महाराज को बताई है कि नहीं और बताया है तो उन्होंने क्या परामर्श दिया है। श्रीहनुमान जी बोले—विराजमान सागर तट के विशाल खण्ड पर श्री वीर धर्मात्मा लक्ष्मण के साथ प्रभु ने सुना तो जरूर था, परन्तु हाँ या ना कुछ नहीं बोले, और उन्होंने आप पर ही सब छोड़ दिया है। लगता है अंतिम निर्णय आप का ही होगा। श्री जाम्बवन्त जी सुनकर चकित रह गए और बोले हे वीर हमको श्रीरघुनाथ जी के पास ले चलो उन्हीं के सामने ही हम राय देंगे तथा कपिराज सुग्रीव सहित वीर विजयी बानर बाहिनी को भी बुला लो।

इतना कहकर जाम्बवन्त जो श्रीरघुनाथ जी महाराज के पास चले गये। बुद्धिमान शिरोमणि वीर हनुमान जी समझ गए, अब राजसिंहासन नहीं जायेगा। क्योंकि जाम्बवंत अतिवीर दूरदर्शी परम चतुर कूटनीतिज्ञ हैं। कोई न कोई बात ऐसी कह देंगे कि सबका मन फिर जायगा। सब बानर वीरों के साथ श्रीहनुमान जी महाराज भी श्रीरघुकुल तिलक भूषण श्रीराम के पास उपस्थित हो गए। अतिविनय तथा नम्रता पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर माथ झुकाकर जाम्बवंतजी ने श्रीरघुनाथ जी महाराज से निवेदन प्रारम्भ किया और कहा. हे प्रभु मैं बहुत पुरातन वृद्ध हूँ। मैंने इस संसार में बहुत कुछ देखा है। प्रभु जब बलि को परास्त करने को बामन अवतार श्रीहरि ने लिया, उस समय मैं पूर्ण तरुण था। जब प्रभु बलि को बाँधने के लिए आकाश तक लम्बे हुए तब उतने ही क्षण में मैंने सम्पूर्ण सशैल वन कानना इस पृथ्वी की सात बार परिक्रमा कर डाली थी। महाराज वह दृश्य भी हमने देखा है। यथा—

जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥

अब तो बहुत ही वृद्ध हो गया हूँ। प्रभु यह तो आपका ही पुण्य प्रताप है, जो इस लंका नगरी को जीत लिया। परन्तु प्रभु सुनते हैं कि श्रीहनुमान जी महाराज रावण का राजसिंहासन लाने लंका जा रहे हैं फिर वह सिंहासन श्रीअयोध्या जी चलेगा। ऐसी अनहोनी अनसुनी बात को आप चुपचाप रहकर सुन लिया तो प्रभु यह आश्चर्य है, महाराज अनुचित है। ऐसा न सुना है न देखा गया है। सृष्टि में बड़े-

बड़े नरेशों न भा युद्ध जीते हैं, समर भूमि में लड़े हैं। परन्तु किसी ने कभी भी ऐसा नहीं किया है। जैसा आप श्रीमान् करने जा रहे हैं। इस सृष्टि का महाराज मैंने वहुत ऊँचनीच देखा है और सज्जनों जाम्बवंत जी थे भी बहुत पुराने, सतयुग में वामन अवतार देखा था, त्रेता में रामावतार की यह बातचीत ही है और द्वापर में भी प्रभु श्रीद्वारिकाधीश श्रीकृष्ण से महाभयंकर युद्ध किया तथा जाम्बवन्ती का विवाह प्रभु श्रीनारायण श्रीकृष्ण जी महाराज से किया। जिनसे महारथी साम्ब का जन्म हुआ था। अतः जाम्बवंत वहुत पुराने थे। कहा कि हे महाराज -

राहुः पूर्णवपु र्विधुर्गतमलो शुद्धोदको वारिधिः।
ब्रह्मा पंचमुख शिवोऽसिततनुर्विष्णुः सितात्मा तथा ॥
सूर्यश्चैकतनुर्दिदिक्षितमखः पक्षायुताः भूधराः।
सर्वं दृष्टमिदं मया रघुपते दत्तापहारं बिना ॥

हे प्रभु हमारे सामने राहु का शरीर पूर्ण था। श्रीचक्रधारी नारायण ने समुद्र मंथन के समय उसमें से काटकर केतु पैदा किया, उस समय मैं धरती पर उपस्थित था और महाराज यह चन्द्रमा का कालापन मेरे सामने आया है। पहले इनकी गति प्रकाश बहुत अमल धवल थी, यह बात भी मैंने इन आँखों से देखो है और महाराज ब्रह्माजी के पहले पाँच मुख थे एक सिर मेरे सामने ही प्रभु महादेव ने काट डाला था, और प्रभु पहले भगवान आशुतोष चन्द्रशेखर प्रभु शिव श्याम थे और क्षीर सागर सायी प्रभु श्रीलक्ष्मी नारायण ही धवलगौराङ्गवर्ण के थे, परन्तु यह अदला-बदली मेरे सामने ही हुई है। पहले महाराज यह सविता भगवान श्रीसूर्यदेव भी एक ही थे। एक के बारह मेरे सामने ही हुए हैं। बारह राशियों पर बारह सूर्य तपते हैं और महाराज अहंकार बस प्रजापति दक्ष ने जो विराट यज्ञ हरिद्वार कनखल में किया था, जिसमें बैर वस प्रभु श्री महादेव जी महाराज को नहीं बुलाया था। उस यज्ञ को वीर वीरभद्र ने मेरे सामने ही भंग किया था और दक्ष-वध भी किया था। ऋषिपूषा के नेत्र निकाल लिए थे। महर्षि भृगु की दाढ़ी उखार डाली गयी थी, भगवती सती की मृत्यु से दुःखी वीर वीरभद्र और भगवती के कोप से जायमान श्रीभद्रकाली ने प्रजापति दक्ष का वह विशाल विराट यज्ञ तहस-नहस कर डाला था। यज्ञकुण्ड बुझा दिये गए थे, वेदियाँ भग्न कर डाली गयी थीं और अपनी स्वामिनी के मृत्यु से हुए दुःख से दुखी भूतप्रेत शिवगणों ने अति उत्पात मचाया था। उन्होंने ऋषि, मुनि, वैदिक जो शिवद्रोह में मनसा, वाचा, कर्मणा सहयोग दिया था, उनको पकड़-पकड़ के बहुत मारा तथा चारों ओर खड़े-खड़े, घूम-घूमकर

यज्ञ कुण्डों में लघुशंका कर दिया। बाद में विध्वंस यज्ञ तथा दक्ष वध से दुखी देवताओं ने महादेव जी से प्रार्थना किया, तो दक्ष प्रजापति को बकरे का सिर काट करके लगाया गया। क्योंकि श्रीनन्दीश्वर ने दक्ष प्रजापति को श्राप दिया था कि बकरे का शिर जोड़ने पर तुम्हारा नया जीवन होगा।

बाद में आशुतोष श्रीशिव जी महाराज भी पधारे और यज्ञ को पूर्ण किया। महाराज मैंने यह भी अलौकिक दृश्य देखा है और महाराज पहले सभी पर्वतों के पंख थे और ये आकाश में विहरण विचरण करते थे। एक बार विन्ध्याचल पर्वत ने भगवान दिनकर दिवाकर सूर्य का रथ मध्याकाश में ही रोक लिया था और खड़ा हो गया था। तब महाराज महान धर्म संकट सूर्यदेव के आगे उपस्थित हो गया था। विन्ध्याचल ने भगवान सूर्यदेव से कहा, हे देव आप जैसे सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं वैसे ही मेरी प्रारम्भ करिये। नहीं तो जाने नहीं दूँगा। सूर्यदेव बोले, हे पर्वतराज हम तो भगवान् विधाता के आदेश से ही सुमेरु की प्रदक्षिणा करते हैं, आपके अथवा किसी दूसरे के कहने से नहीं। अतः आप हमसे हठ मत करो। परन्तु महाराज वे पर्वतराज अडिग रहे, सीधे खड़े ही रहे। तब देवताओं ने महर्षि अगस्त को बुलाया, क्योंकि वे उसके गुरु महाराज थे। जैसे ही आकाश मण्डल में ऋषि कुंभज पधारे, उनको देखते ही वह पर्वतराज विन्ध्याचल चरणों पर साष्टाङ्ग गिर गया। उसको जमीन पर गिरा देखा तो मुनि अगस्त बोले, बेटा! अब ऐसे ही जमीन पर पड़े रहना, वह बोला, गुरुजी कब तक। वह बोले, जब तक हम इस दिशा में वापस न आ जायें। तो महाराज इतना कहकर वे मुनि दक्षिण दिशा को चले गए और तब से इस दिशा में कभी आये ही नहीं। महाराज तभी से यह विन्ध्याचल भी लेटा पड़ा हुआ है और उसी पर आपकी योग माया भगवती जो श्रीवसुदेव जी गोकुल से कन्या लाए थे और जिसको भोजराज कंस ने पैर पकड़कर पटक कर मार डालना चाहता था। वही भगवती योगमाया उसी पर्वतराज विन्ध्याचल पर विन्ध्यवासिनी होकर सदा ही विराजमान रहती हैं। यथा—

नंदगोपगृहे जाता—यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि—विन्ध्याचलनिवासिनी॥

तो महाराज इस समुद्र में मैनाक पर्वत रहते हैं, जिन्होंने वीर श्रीहनुमान जी महाराज को विश्राम करने के लिए प्रार्थना की थी। उसका भी यही कारण है। महाराज एक बार इन्द्र ने क्रोध करके अपने विशाल वज्र से इन पर्वतों के पंख काटना शुरू किया था। तब ये मैनाक पर्वत घबड़ाकर भागे और इन्द्र धाये। उस समय आतुर, कातर, व्याकुल, त्रसित भागते हुए मैनाक पर्वत को अति बलशाली पवनदेव ने अपने वेग से समुद्र में फेंक दिया था और मैनाक पर्वत पंख कटने से बच गए थे।

बाद में जब देवराज इन्द्र का क्रोध शान्त हुआ, तो मैनाक पर्वत ने पवन देव से हाथ जोड़कर अपनी कृतज्ञता प्रगट की थी और कहा था आपने हमारा जीवन बचाया है, हम आपके उपकारी हैं। कहिए इस उपकार से कब उद्धार होगा मेरा। तो पवनदेव बोले कि हे मैनाक त्रेतायुग में भगवती जानकी का पता लगाने मेरे पुत्र हनुमान जी महाराज समुद्र लांघेंगे। विशाल सागर है, अपार तरंगे हैं। अगणित जल चर हैं। अतः वह मेरा पुत्र यदि समुद्र लाँघने में कहीं थक जाय तो आपके पंख तो हैं। आप जरा सागर की गहराई से ऊपर आकर मेरे पुत्र को विश्राम के लिए कहना और विश्राम देना। इसलिए महाराज जब श्रीहनुमान जी महाराज सागर के मध्य में पहुँचे थे तो एक विशाल पर्वत सागर के मध्य में श्रीवीर बजरंगी को सहारा देने के लिए ही प्रगट हुआ था। वह बहुत गहराई में था। सागर से कह रखा था कि जब ऐसा अवसर आवे तो हमें जरा सावधान कर देना जी। इसीलिए जब श्रीहनुमान जी महाराज सागर पार जाने लगे तो सागर ने मैनाक को जगाकर प्रेरित किया था। यथा—

जल निधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥
सिन्धु बचन सुनि कान—तुरत उठेउ मैनाक तहं।
कपि कहं कीन्ह प्रनाम—जोरि पानि पद पंकरुह॥

मैनाक तुरन्त सिन्धु को प्रेरणा से ऊपर आ गए और श्रीहनुमान जी महाराज से विश्राम लेने की प्रार्थना भी की थी, तो हनुमान जी महाराज ने हालाँकि स्वीकार नहीं किया था। तो महाराज इन पर्वतों के पंख भी मेरे ही सामने काटे गये। कहने का हेतु महाराज हमने इन आँखों से सब कुछ तो देखा है, परन्तु यह नहीं देखा जो आप कर रहे हैं। महाराज हमने यह भी देखा कि धर्मात्मा नरेश किसी ब्राह्मण को कुछ दे देवें और फिर देकर लेते नहीं देखा है। महाराज और सब कुछ देखा है। प्रभु मुस्करा कर बोले—क्या बात है जाम्बवंत जी? जाम्बवंत बोले प्रभु आपको याद ही होगा—जब भक्तराज विभीषण आपकी शरणागत आये थे, तो आपने महासागर के जल से अभिषेक करके सम्पूर्ण लंका का राज्य ही दे दिया है।

एवमस्तु कहि प्रभु रन धीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा॥

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड ।
जरत विभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखण्ड ।।
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।

और अब उसका राजसिंहासन आप ले जाएंगे । देकर ले लेना यह पावन गौरवमयी मंडित रघुवंशी परम्परा नहीं रही है ।

श्रीहरिः

शौचमिंद्रिय निग्रहः

रामं कामारिसेव्यं-भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ।।

श्री रघुनाथजी महाराज धरणी का भार उतारने के लिए, सज्जनों को सुख देने के लिए तथा संसार को मंगल कल्याण शिक्षा देने के लिए ही आए हैं। अतः पवित्रता के तो प्रभु साक्षात् देदीप्य मानमूर्ति स्वरूप ही हैं। उनका नाम लेकर पवित्र हुआ जाता है। उनका चिन्तन लीला गुणधाम का स्मरण करके पवित्र हुआ जाता है। जो स्वयं मंगल के भवन धाम हैं। अमंगल तो उनका स्मरण ही नष्ट कर देता है।

जिन्ह कर नाम लेत जगमाहीं । सकल अमंगल मूल नसाहीं ।।
करतल होंहि पदारथ चारी । तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ।।

जिनका नाम स्मरण करने से सभी अमंगल दूर होते और सभी शुभ मंगल प्रगट होते हैं। यथा—

जाकर नाम सुनत सुभ होइ । मोरें गृह आवा प्रभु सोई ।।

अतः शरीर की शुद्धि फिर मन की शुद्धि फिर इन्द्रियों की शुद्धि पुनश्च वाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता ही सज्जन साधु पुरुषों का लक्षण है। दुरात्माओं के मन, वाणी और कर्म में दूसरा ही दिखता है। यथा—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।।

अतः श्रीराम ही ब्रह्माण्डाधिष्ठान परम प्रभु हैं। धर्म के सभी अङ्ग उपाङ्ग श्रीराम प्रभु में ही प्रतिष्ठित हैं। प्रभु श्रीराम ही त्रिलोकी के राजा हैं। वही सबके सर्जनहार, पालनहार हैं। अतः दिनचर्या प्रभु श्रीराम की परम पवित्र है।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।।

प्रातःकाल प्रत्यूष बेला में प्रभु श्रीराम जी उठते हैं—

उठे लखनु निसि बिगत सुनि-अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति-जागे रामु सुजान ।।

प्रातः उठि के सूर्यार्घ्य देकर नित्य नियम से सन्ध्या वन्दन तीनों काल करते थे। यथा—

बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई ।।

तथा नित्य शिव पूजन किया करते थे। बनवास के समय शिवलिङ्ग तो ले नहीं गये थे। अतः प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण और भगवती सीता मिट्टी के पार्थिव शिव बनाकर नित्य पूजन करते थे।

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा ।।

प्रभु की यह तो बाहरी दिनचर्या रही है, और मन से तो पवित्रता की क्या कहना है। पवित्रता की भी असली पवित्रता तो श्रीरघुनाथ जी महाराज से ही प्राप्त होती है।

मंगलं मंगलानां च दैवतानाञ्च दैवतं।
मंगलं भगवान् विष्णु मंगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनं हरिः ।।

मंगलायतन तो श्रीराम ही हैं। उनकी पवित्रता खोजना तो पवित्रता का ही अपमान है। उनका नाम लेकर जन्म-जन्मान्तर, कल्प-कल्पान्तर, युग-युगान्तर का पाप, ताप भग जाता है। सज्जनों हम और आप इस कथा को सुनकर ही पवित्र हो गए हैं। फिर भी नाम की पवित्रता के सन्दर्भ में पाप-ताप भगाने में समर्थ प्रभु का ही नाम है।

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां-रामरामेति गर्जनम् ।।

(रा. र. स्तो ३६)

भवसंसार के बीज दुःख को भगाने के लिए तथा सुख सम्पदा को अर्जन करने के लिए तथा यमराज के दूतों को उखारने के लिए श्रीराम नाम का गर्जन ही बहुत है।

भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ।।

और अब तो इस विषय में एक दिव्य-कथा वार्ता सुनाता हूँ। आप सज्जन श्रोताजन सावधान मन से सुनिए।

बहुत पहले की बात है। किसी नगर में एक बार दो हजार साधुओं की जमात आई। जमात में श्री ठाकुर जी महाराज, हांथी, गाय, घोड़ा, ऊँट तमाम नागा साधु जय जयकार करते हुए बहुत ही ताम-झाम से उस नगर में आए और डेरा डाल दिया। उस नगरी के नगर सेठ बहुत ही उदार साधु सेवी विनीत और भक्त पुरुष थे। उन्होंने सुना कि नगरी में साधुओं की बहुत बड़ी जमात आई है तो गए और महन्त जी सहित सभी जमात को अपने घर में भोजन का सादर निमन्त्रण दे आए और घर में ही सबकी श्रेष्ठ व्यवस्था किया। प्रसाद पाने के लिए सब जमात को अपने घर सादर लाए। सबका चरण धोया और आसन पर बैठाकर प्रेम तथा सन्मान से भोजन कराया। फिर दक्षिणा, लंगोटी, अचला, वस्त्र एक-एक कमण्डल भी भेंट किया। यह व्यवहार देखकर जमात के जो महन्त जी महाराज साहब थे, बहुत प्रसन्न हुए। आगे उन सज्जन व्यापारी महोदय को बुलाकर मङ्गलाशीष देकर बोले। भक्त प्रवर आपने हमारी तथा पूरी जमात की बहुत सेवा सुश्रूषा किया। हम सब आप पर तथा आपके व्यवहार से बहुत सुखी हैं और प्रसन्न हैं। भक्त अब हम लोग चलना चाहते हैं। आप का प्रभु सदा ही मङ्गल कल्याण करें तथा ऐसी ही साधुसेवी प्रवृत्ति बनाए रखें। फिर कभी आएगें इधर तो जरूर फिर ठहरेगें जी। सेठ जी साहब कोई तकलीफ हो तो बताइएगा। हमारे लायक कोई काम-काज हो तो भी बताइए गा। वे व्यापारी सज्जन पुरुष शीश नवाकर बोले—महाराज सब ठीक है। आप सब सन्तों की कृपा बनी है। अब और चाहिए ही क्या? रोटी-पानी प्रारब्धानुकूल मिल ही जाता है। परिवार भी प्रभु ने सब आज्ञाकारी दिया है। सब ठीक ही है महाराज ऐसी ही कृपा बनाए रखिएगा। दिल की बात तथा दुःख सन्ताप बताने से ही क्या होगा महाराज? जब अभी तक कुछ भी नहीं हुआ तो आगे भी सुधार की क्या आशा रखूं महाराज? इसलिए सब ठीक ही है महाराज। आप की कृपा मेहरबानी चाहिए सब सेवकों पर। महन्त जी महाराज को सेठ की बातों से पता चला कि हो न हो सज्जन भक्त किसी न किसी दुःख से अवश्य ही दुखी हैं। इसका आदर से अन्न जल लिया है अतः शक्ति-भक्ति प्रमाणे कुछ कल्याण तो इनका करना ही चाहिए। ऐसा मन में निश्चय करके महन्त जी महाराज उस सज्जन पुरुष से बोले। भक्त दिल की बात कहो, क्या तकलीफ है? हम अवश्य ही कुछ उपाय करेगें। पूर्ण सहानुभूति पाकर भक्त का हृदय पिघल गया तथा अपने दिल की छिपी हुई व्यथा को सुनाने के लिए लालायित हो गए। बोले-महाराज सब सुख

है। पत्नी है, पुत्र है, बहुएँ हैं, पौत्र, पौत्री हैं, धन सम्पदा भी ठीक ही है। परन्तु महाराज इन सुखों के बाद भी हम तथा हमारा पूरा परिवार दुखी, असन्तुष्ट, अतृप्त रहते हैं।

रात-दिन बिना ईंधन की ही आग और उसकी ज्वाला इस हृदय में जलती रहती है। इसका अब महाराज आप कारण भी सुनिये। हमारा एक भाई है महाराज जी और जब से वह होश संभाला है तब से आज तक वह अपनी वाणी से श्रीराम का नाम नहीं लिया, तथा कानों से प्रभु का नाम भी कभी नहीं सुना है। उसी के दुःख से हम सब दुखी रहते हैं। श्री महन्त जी महाराज बोले, अरे भाई अभी बच्चा होगा, जब सयाना होगा-बाल बच्चेदार होगा तब अपने आप ठीक हो जायगा। आप इस दुःख से दुःख मत मानो, बड़ा होने पर वह जरूर ठीक हो जायेगा। भक्तराज बोले— महाराज वह ८८ साल का बूढ़ा हो गया है। हमारा बड़ा भाई है। १२ बच्चों का बाप है। महाराज बेटे सब योग्य, आस्तिक प्रभु चरण परायण हैं। बहुएँ सब अच्छी, सुन्दर, पढ़ी-लिखी, कुलीन घरों से आई शीलवान उदार हैं। परन्तु उसी के इस दुःख से सभी दुखी रहते हैं। महन्त जी महाराज आश्चर्य में भर गए और बोले—अरे पचासी साल का हो गया और श्रीराम नाम नहीं बोलता और कभी सुना भी नहीं है। अरे भाई गूंगा, बहरा तो नहीं है। भक्त प्रवर जी बोले, महाराज बोलने की कला में रात दिन वाणी मेढक की भाँति कभी भी नहीं थमती। सुनने में अपने मतलब की बात ५ मंजिल से भी सुन लेता है बड़ा चतुर सयाना है सब बातों में। महन्त जी बोले, तब तो देखने लायक जीव है। आज तक श्रीराम नाम न बोला न सुना है। लगता है लंका नगरी से तो नहीं कहीं आ गया है। देखना चाहिए तुम्हारे ऐसे अद्भुत भाई को। कहाँ है वह तुम्हारा विचित्र भाई। जरा बुलाओ तो उसे देखें तो सही कैसा है। यह सुनकर वह भक्त अति दुःख कातरता से बोला कि महाराज मेरे उस बड़े भाई को किसी ने बता दिया था कि नीचे आज साधू सन्त जी पधारेंगे। इतना सुनते ही वह मारे डर के सबेरे से ही मकान के तीसरी मंजिल के ऊपर वाले बड़े कमरे में कानों में मोम रूई मिलाकर भर लिया है, तथा कंटोप भी पहन लिया है। मफलर भी ऊपर से बांध रखा है। सिर नीचे तकिया में गाड़ रखा है, पैर ऊपर चमगादड़ की भाँति कर रखा है। दरवाजा भी महाराज अन्दर से बन्द कर रखा है, उसी के अन्दर सबेरे से ही घुसा बैठा है। बाहर नहीं निकल रहा है। जब तक आप लोग रहेंगे महाराज, वह बाहर निकलेगा भी नहीं। श्रीमहन्त जी महाराज ने सुना तो महान् आश्चर्य से भर गए कि यह पुरुष श्रीराम नाम से इतना डरता है, क्या बात है? अतः ऐसे दर्शनीय पुरुष को अवश्य देखना चाहिए। अतः श्रीमहन्त जी महराज ने घोषणा करके सभी जमात को तो अब सियाराम बोलकर वापस भेज दिया तथा स्वयं और चार शिष्य जो जरा कुछ अपने में दमखम रखते

थे, तथा मल्ल प्रकृति के भी थे उन्हीं को रोक लिया। चारों चेले तथा श्री महन्त जी महाराज उन मंजिलों में आखिरी मंजिल की सीढ़ियों पर छिप गए और भक्त को बोले, जाओ आप अपने भाई को बुलाओ।

उससे बोल दो कि सन्त महात्मा महापुरुष चले गए और उन्हीं के साथ ही श्रीराम नाम उच्चारण का खतरा भी चला गया। अतः भाई चल अब नीचे उतर। महन्त श्री के ऐसा कहने पर वह भक्त राज व्यापारी साहब ऊपर गए। बड़ी मुश्किल से दरवाजा आदि तोड़ कर पसीना से लथपथ अपने भाई को होश में किया और प्रार्थना किया कि हे प्यारे सहोदर भ्राता जी अब नीचे चलो। महात्माओं वाली जमात चली गयी। अब कोई भी नीचे प्रभु का नाम लेने वाला नहीं है। अतः डर मत नीचे चल। ताश की पत्ती पर जुआ खेल। बीड़ी धुन्धकार, निन्दा चुगली कलह ईर्ष्या में चल कर गोता मार। अब सत नाम का खतरा नहीं है। बहुत समझाने बुझाने विनय करने पर वह अद्भुत चमत्कारी पुरुष तीन मन्जिल तो धड़ल्ले से उतर आया, परन्तु जब चौथी मन्जिल यानी आखिरी मन्जिल आई तो चौकन्ना हो गया और सावधानी से पग धरने लगा। चारों शिष्यों सहित श्री महन्त जी नीचे की ही सीढ़ियों में छिपे थे। जैसे ही वह नीचे वाली सीढ़ियों पर आया, श्री महन्त जी महाराज झपटे और उसे पकड़ लिया। तब तक चारो चेला भी आगए और पकड़ कर आराम से धरणी पर पटक दिया। चारों चेला हाथ पैर पकड़ लिए और महन्त जी महाराज उसकी छाती पर झुक करके उसके शीश को ऊपर उठाया तथा दोनों कानों में जोर-जोर से जय सियाराम जय जय सियाराम—श्रीराधे श्याम, श्री गौरी शंकर हर-हर महादेव उलट पलट के भर दिया। हालांकि वह बहुत झटका, चमका, दमका, उछला तो भी महातमा जी साहब की पकड़ बहुत मजबूत थी। फिर शिष्यों ने पकड़ रखा हो, अतः छुड़ा पाना बहुत कठिन था। जमात के श्रीमहन्त जो महाराज साहब ने दोनों कानों में मङ्गल मय, पवित्र शुचि नाम भर दिया। और फिर छोड़ दिया, तथा कहा जा छोड़ दिया है। भगत तेरा अन्न जल लिया था इसीलिए तेरे कल्याण के लिए तेरे कानों में भगवान का सर्व हितकारी गुणकारी नाम सुनाया है। तूने श्रद्धा से तो नाम लिया नहीं, श्री गुरु नहीं बनाया और न गुरुभक्ति ही दिखाई और न श्री गुरु दक्षिणा ही दिया। तो भी बलात ही सही हमने तेरा कल्याण ही किया है। भक्त तुझे तकलीफ तो जरूर हुई होगी इस धर पकड़ में। परन्तु कुछ भी कल्याण प्राप्त करने के लिए शारीरिक कष्ट तो उठाना ही पड़ता है। तुझे तो बहुत कम ही उठाना पड़ा है। भगत तेरे कान में मैंने जो प्रभु का नाम सुनाया है। तुझे इसकी महिमा अभी नहीं मालूम पड़ेगी। परन्तु भक्त एक बात का याद रखना कि कभी भी कोई तुझे इसके बदले में कुछ देना चाहे तो इसके बदले में कभी कुछ नहीं लेना। कोई लाख दे बहकाए, समुझावे तो भी इस राम नाम के बदले

कुछ नहीं लेना। यह हमारी शिक्षा याद रखना और इतना कहकर श्री महन्त जी महाराज अपने शिष्यों सहित आगे की जमात के साथ तीर्थाटन में चले गए। उस व्यापारी भक्त का भाई भी ठीक हो गया और भक्त भी हो गया। समय पाकर उस धर्मात्मा व्यापारी के उस बन्धु की मृत्यु भी हुई।

महाराज धर्मराज को अदालत में उसे यमदूतों ने पकड़ कर खड़ा किया। भगवान धर्मराज ने उसका कर्मखाता देखा तो पुण्य के स्थान पर भी पाप ही भरा था। प्रभु यमराज की भृकुटी टेढ़ी हो गयी। नेत्र कोर प्रान्त लाल हो गए, उसकी ओर मुख करके गंभीर वाणी में बोले। अरे तूने जीवन भर अपकार ही किया है। सदा ही दूसरे को दुःख में ही अपना सारा पराक्रम लगाया है। माता-पिता, श्री गुरु का आदर सन्मान भी कभी नहीं किया। सदा ईश्वर निन्द और परनिंदा में ही समय बिताया है। दूसरे की चुगली में ही रस लिया है। आए-गए अतिथि अभ्यागत्, याचक को कभी एक रोटी एक लोटा पानी नहीं दिया, दो शब्द मधुर वाणी के भी नहीं कहे हैं। सदा ही परधन, परदार पर ही कुदृष्टि रखा है। कभी भी संसार के मङ्गल कल्याणकारी हितकारी महान्यायवादी कारुणीक प्रभु का स्मरण नहीं किया है। तीर्थाटन, दान, ध्यान नहीं किया। श्रद्धा, तर्पण, हवन, सूर्यार्घ्य नहीं दिया। देव पितर नहीं पूजे। भगवान आशुतोष सदा शिव को कभी एक लोटा जल भी नहीं चढ़ाया। कभी भी व्रत, उपवास करने की कोशिश भी नहीं किया, अपितु परम पावन पर्व एकादशी निर्जला के दिन भी चारपाई पर बैठ कर 'अण्डा, मुरगी, मांस ही खाया है। कभी भी श्रीगङ्गा, यमुना, नर्मदा जी के परम पवित्र अमृत तुल्य पावन नीर में स्नान, मज्जन, मार्जन नहीं किया। सदा पग-पग पर झूठ, छल 'कपट, मक्कारी का ही सहारा लिया है। सदा ही जुआ, सट्टा, लाटरी में ही अपनी खोटी बुद्धि लगाया है। सदा ही उठते, बैठते, खाते-पीते सोते गऊ, ब्राह्मण गुरु की घोर निंदा ही किया है। गौशाला, मन्दिर का दान ही खाया है। भाई, बहिन, बेटी का हिस्सा भी हड़प कर लिया। सदा सबको धोखा ही दिया है। विश्वासघात की फिराक में ही लगा रहा है। सदा सर्वदा ही प्रभु की निंदा मन लगाकर ही किया है। कभी भी रामायण, गीता, भागवत, वेद पुराण न सुना है न पढ़ा है, अपितु इन सबको बेकार समझ कर हँसी उड़ाया है। अहर्निश तिलक माला भस्म कण्ठी का मजाक परिहास ही उड़ाया है। सदा ही परधन की चोरी में ही एकाग्रता रखी है। सदा ही मोहग्रस्त ही रहा है। मन, क्रम, बचन से सदा ही कृतघ्नता को आदर दिया है। एहसान फरमोसी का तू जीता-जागता पुतला ही रहा है। कभी भी दूसरे का उत्कर्ष, उन्नति तुझे सहा नहीं गया है। ईर्ष्या की भट्ठी में सदा सर्वदा तू सुलगता रहा है। कभी भी दूसरे के गुण की तूने सराहना नहीं किया है। सदा ही परगुण में तू ने दोष ही देखा है। कभी भी कूप वावली तड़ाग, बाग, बगीचा धर्मशाला पूर्त कर्म का अनुष्ठान नहीं किया है।

कभी भी गऊ ग्रास, काग, श्वान बलि भी नहीं निकाला है। कभी कोई मधुर भाषण नहीं किया है। नराधम अब तेरे सभी कर्मों का फल विधि पूर्वक मिलेगा और तुझे भोगना पड़ेगा। तब तक कर्म खाता के अन्त में उन्हें वह भी दिखाई दिया कि एक सन्त महापुरुष ने इसके कान में श्रीराम नाम जोर-जोर से सुनाया है। श्रीराम नाम आते ही धर्मराज का क्रोध कुछ ठण्डा पड़ गया और बोले भाई मरने के कुछ दिन पहले एक महात्मा ने तेरे कान में श्रीराम नाम सुनाया था। हालांकि तूने कोई श्रद्धा या गुरु दक्षिणा देकर नहीं सुना। वे स्वयं अपनी दयालुतावश तुझे सुनाया है। परन्तु कान में श्रीरामनाम तो जरूर ही पड़ गया है। अतः बोल उस श्रीराम नाम के बदले में क्या चाहता है? पहले तुझे इसी कर्म का फल दूंगा। बाद में तेरे कुकर्मों का फल मिलेगा। अतः बोल स्वर्ग जायगा कि पुनर्जन्म चाहता है। या पुण्य के बदले में जो चाहता है बोल। उस भक्त की आँख खुल गयी। सोचा श्रीमहन्त जी महाराज जाते-जाते कह गए थे कि इसके बदले में कोई कुछ दे तो लेना नहीं। भगवान् यमराज उस राम नाम के बदले में चाहता है बार-बार पूछ रहे है। सब सोच विचार कर वह बोला—महाराज महात्मा जबरदस्ती ही श्रीराम नाम सुना गए थे। अतः इसके बदले में क्या हो सकता है? हमको तो मालूम नहीं है। आप ही सोच-समझकर इसके बदले में जो होता है देने की कृपा करें। हम तो पापी, नादान, गँवार हैं महाराज। आप तो प्राणी मात्र के कर्मों के फलदाता हैं। इसके बदले में जो भी कुछ होता हो हमें वही दे दीजिए। हमसे पूछने की क्या बात है? यमराज सुनकर स्तब्ध रह गए। वे जल्दी से सोच नहीं पाए कि श्रीरामनाम के बदले में क्या हो सकता है। अतः वे फिर उसको फुसलाते समझाते हुए बोले। भक्त कुछ माँग ले हठ मत कर और श्रीराम के बदले में तो यह मेरा लोक भी छोटा है। हम भला इसके बदले में क्या दे सकते हैं। श्रीरामनाम कहने वाला हमारे लोक को लाँघकर चला जाता है। उपनिषदों में एक आख्यान आता है कि जब नचिकेता यमराज जी महाराज के यहां गया था और बात-चीत संवाद हो रहा था तो बीच में ही उस लोक में जोर-जोर से बाजा बजने लगे और भगवान यमराज जी भी बात-चीत छोड़कर बीच में ही एक माला लेकर अपनी पुरी के प्रधान फाटक पर आकर खड़े हो गए।

यह दृश्य देखकर वहां उपस्थित दरबारी जनों से जब ज्ञानी नचिकेता ने पूछा कि यह क्या बात हुई? जो यमराज जी अपना आसन छोड़कर फूल-माला हाथ में लेकर दौड़ पड़े हैं। तब दरबारियों ने कहा कि कोई भक्त स्वर्ग जा रहा है। श्रीरामनाम के प्रभाव से उसी का दर्शन एवं सत्कार करने यमराज जी गए हैं। इस मार्ग से जब-जब कोई भक्त जाता है, तो पूरे लोक में दिव्य मंगल वाद्य बजते हैं, और स्वयं प्रभु धर्मराज ही उसका स्वागत सत्कार करते हैं। यहाँ अर्घ्यपाद लेकर ही वह पावन स्वर्गभूमि को जाता है। इसलिए यमराज बोले कि भाई श्रीरामनाम के बदले में मेरे पास कुछ भी नहीं है, उसको बहुत

समझाया, परन्तु वह माना नहीं और माँगा कुछ भी नहीं। तब यमराज महाराज की परेशानी बढ़ गयी। सोचा यह समस्या शायद मुझसे हल नहीं होगी। अतः उस भक्त को साथ लेकर देवराज, सुरराज, पुरंदर इन्द्र की सभा स्वर्गलोक गए। आकाश गंगा के तट पर देवराज की देव सभा में जाकर यमराज जी महाराज ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया। हें देवराज हमारी भी सुनिये। देवराज मघवाइन्द्र की दृष्टि जब यमराज पर पड़ी तो आदर से लोकपाल समझकर आसन दिया और कुशलता पूछकर आने का कारण पूछा, तो यमराज ने उस भक्त की ओर इशारा करते हुए बताया कि महाराज ये मृत्यु लोक से एक भक्त जी आए हैं। इनके कान में एक महात्मा ने श्रीराम नाम सुनाया था। हमने इनसे कहा कि इस श्रीराम नाम के बदले में तुम जो चाहो माँग लो, परन्तु ये भक्त जी कहते हैं कि आप ही समझ लीजिए और श्रीराम नाम के बदले में जो भी कुछ होता हो उसे ही हमें दे दीजिए, तो महाराज जी श्रीराम नाम के बदले में क्या चीज हो सकती है? हमारा दिमाग काम नहीं कर रहा है। अतः श्रीमान् के पास इस भक्त प्रवर को लाया हूँ। देवराज इन्द्र हँसकर उस भक्त से बोले श्रीराम नाम के बदले में तुम यहीं स्वर्ग सुख क्यों नहीं माँग लेते हो। यहीं हमारे पास ठाठबाट से रहना। माँगो कि हमें स्वर्ग चाहिए, सुख चाहिए! देवराज इन्द्र ने बहुत दिखाया, परन्तु वह भक्त बिल्कुल ही नहीं डिगा।

बोला महाराज जी आप तो यमराज जी से भी बड़े देवता दिखाई देते हैं। आप ही सोचकर दे दीजिए। श्रीराम नाम के बदले में जो होता हो देवराज इन्द्र ने ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा घोड़ा, नंदन कानन, स्वर्गीय अप्सराओं का सुख बहुत सब्ज बाग दिखाया परन्तु उसने हठ हट नहीं छोड़ा, तो देवराज इन्द्र भी कुछ परेशान नजर आने लगे और श्रीयमराज जी महाराज से कहा, भाई यह तो मानता नहीं है। अतः चलो अब कैलाश पर्वत पर चल कर भगवान बाबा श्रीविश्वनाथ शिवजी से ही इसका निर्णय लेंगे; क्योंकि इस संसार भर में सबसे ज्यादा श्रीरामनाम वही जपते हैं। अतः देवराज इन्द्र यमराज जी महाराज के साथ उस भक्त को लेकर कैलाश गए और प्रभु श्रीचन्द्रशेखर आशुतोष श्रीशिवजी महाराज से अति नम्रतपूर्वक प्रार्थना करके बोले, ये मृत्युलोक से एक भक्तजी आए हैं जो श्रीरामनाम के बदले में जो भी होता हो यमराज जी से माँग रहे हैं, तो महाराज हम दोनों व्यक्तियों को पता नहीं है कि एक श्रीराम नाम के बदले में क्या होता है? आप तो महाराज रात-दिन श्रीरामनाम जपते हो। यथा—

तुम पुनि राम-राम दिन-राती। सादर जपहुँ अनंग अराती।

अतः अब आप ही हम सबकी परेशानी को हल करिये, और बताइए कि श्रीराम नाम के बदले में क्या होता है? शीश कलाधर शोभायमान् कुन्देन्दु गौर प्रभु श्रीशिवजी महाराज सब वार्ता सुनकर

मुस्कुराये और बोले कि हे देवराज आप ठीक कहते हो। हम श्रीराम नाम रात-दिन जपते तो जरूर हैं, परन्तु श्रीरामनाम के बदले में भी कुछ हो क्या सकता है? हमको तो भाई मालूम नहीं है। फिर उस भक्त से बोले—भक्त! क्यों देवराज, यमराज को परेशान कर रहे हो? यहीं कैलाश में बास माँग लो। छानों-घोंटो पड़े रहे हो। वह धीरजवान और भाग्यवान भक्त बोला, कि हे भोलेनाथ आप ही सोच-समझ कर विचार कर लीजिए, जो भी होता हो दे दोजिए। श्रीमहादेव जी महाराज बाले, भाई वैसे तो हम सब दे सकते हैं; दिला सकते हैं पर श्रीरामनाम के बदले में जो तुम कहते हो, तो वह बात हमको भी नहीं मालूम है। अतः हम विवश हैं। आगे के उपाय पर विचार करो।

भगवान् श्रीशिव देवराज इन्द्र यमराज सबने मिलकर एक मन्त्रणा किया, और कहा कि भाई हम सब नहीं समझ पा रहे हैं। अतः अब चलो श्रीबैकुण्ठ धाम ही चलें। प्रभु जगदाधार जगन्नाथ जगन्नियन्ता से ही पूँछे। सब लोग मिलकर उस भक्त को साथ लेकर श्रीबैकुण्ठ धाम पधारे। परमात्मा श्रीनारायण के दरबार में उपस्थित होकर नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर शीश झुकाकर अति आदर स्नेह से प्रार्थना किया, कि देव-देव जगत्पते ये भक्तराज पधारे हैं, मृत्युलोक से और कहत हैं कि श्रीराम नाम के बदले में जो होता हो वही दीजिए। तो प्रभु हम सब लोगों को यह पता नहीं है कि एक ही श्रीराम नाम के बदले में क्या होता है? फिर बहुत श्रीराम नाम के विषय में हम लोग क्या जानेंगे? अतः श्री चरणों में हम तीनों व्यक्ति उपस्थित हुए हैं। प्रभु श्री जो निर्णय देंगे वही मान्य होगा और आगे के लिए परम्परा बनी रहेगी। फिर श्रीयमराज को लोक-लोक भटकना नहीं पड़ेगा निर्णय हो जायगा। श्रीचक्रपाणि गदाधर प्रभु सुनकर किंचित मुस्कराये और उठे तथा उस भक्त को उठाकर अपने गोद (अङ्क) में बैठा लिया तथा श्रीमहादेव देवराज इन्द्र तथा प्रभु श्रीयमराज को अपने-अपने लोकों को जाने की आज्ञा दे दिया। प्रभु श्रीशिव तथा बुद्धिमान देवराज मघवापुरंदर इन्द्र तो सब समझ गए और अपने-अपने लोकों को चले गए। परन्तु यमराज महाराज उसी भक्त की ओर देखते वहीं खड़े रहे। प्रभु बोले आप भी जाइएगा जी। श्रीयमराज जी महाराज बोले—प्रभु आपने तो यह बताया नहीं कि एक श्रीराम नाम के बदले में क्या होता है? हम अभी चले जाँय कल फिर ऐसा ही कोई मामला आ पड़े तो कहाँ-कहाँ भटकेंगे। प्रभु श्री बोले, अरे आप अभी भी नहीं समझे कि एक श्रीराम नाम के बदले में क्या होता है? तो सुनिये। इसी एक श्रीराम नाम के बदले में इसने देवराज पुण्यात्मा इन्द्र का दर्शन करके स्वर्ग भी देख लिया और फिर प्रभु त्रिलोकीनाथ, कामारि त्रिपुरारि काम दहन त्रिलोचन आशुतोष श्रीशिवजी महाराज का महापुण्यवान दर्शन कर लिया और फिर उसी श्रीरामनाम के पुण्य से श्री वैकुण्ठ धाम आ गया। मेरा

श्री सहित दर्शन करके अब मेरी गोद में बैठ गया है। अतः हे यमराज जी अब आप ही सोचिये, जरा विचारिये कि इससे बढ़कर अब श्रीराम नाम के बदले में क्या होगा ? और क्या हो सकता है ? इसी श्रीराम नाम के बदले में यह मेरी अङ्क में बैठ गया।

अर्थात् सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लिया तथा सारुप्य हो गया है। वह मेरे महास्वरूप में ही मिल गया है। अर्थात् यह अब नर नहीं रहा है श्रीनारायण हो बन गया है। आवागमन में शाश्वत मुक्ति पा गया है। अब इसका प्रारब्ध कर्म कुछ भी नहीं रहा है। जरा, जन्म-मृत्यु, आधि-व्याधि रहित होकर अखण्ड सच्चिदानन्द परमानन्द अखण्डानन्द मय हो चुका है। वह उस महासमुद्र में स्वस्वरूप विलीन हो चुका है, जहाँ से वह बुन्द फिर कभी भी वापस नहीं होता। अतः सज्जनो भगवान् श्रीरघुवंशमणि राघवेन्द्र श्रीअयोध्यानाथ प्रभु में "शौचमिन्द्रिय निग्रहः" का वर्णन करना छीर सागर से एक किलो दूध लेकर भागने वाली बात है। प्रभु का इन्द्रिय निग्रह अद्वितीय है जिसकी उपमा अखिल भुवन में नहीं है। भगवती श्रीसीता के अतिरिक्त किसी भी स्त्री पर मनसा भी श्रीरघुनन्दन राम की दृष्टि नहीं जाती है। स्वप्न में भी परदारा पर मनसा भी कुदृष्टि, कुविचार भी मन, बुद्धि, चित्त में अंकुरित नहीं होता। सदा सर्वदा श्रीगंगाजल के समान निर्मल, निश्कलंक, अमल, धवल पवित्र हैं। प्रभु स्वयं ही कहते हैं :—

अन्यत्सीतां विनान्या स्त्री कौशल्या सदृशी मम।
न क्रियतेऽपरा पत्नी, मनसाऽपि न चिंतये॥

अर्थात् श्री वैदेही जनकनन्दिनी के अतिरिक्त भिन्न पत्नी को मन से भी चिन्तन नहीं करते। इसीलिए भगवती के वियोग में जब कुछ अधमाधम लोगों के मिथ्या लांछन से दुःखी भगवती सीता श्रीधरती माता की गोद में दिव्य सिंहासन पर बैठकर सबके देखते-देखते समा गई थीं, तो महाधनुर्धर श्रीकमल नयन श्रीराम ने बहुत यज्ञयागादि किये। जहाँ भूरि-भूरि दक्षिणा बाँटी गयी तथा अद्भुत-अद्भुत महान् यज्ञ किये। स्वयं यजमान बनकर प्रभु आसीन हुए। यथा—

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥

उन विराट यज्ञों में यजमान पद पर बैठने के कारण पत्नी अनिवार्य थी, तो प्रभु ने भगवती श्रीसीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर अपने दक्षिण पार्श्व में प्रतिष्ठित कराया। यथा —

न सीतायाः परां भार्यां, वव्रे स रघुनन्दनः ।
यज्ञे-यज्ञे च पत्न्यर्थं, जानकी काञ्चनीऽभवत् ॥

अर्थात् श्रीरघुनन्दन श्रीराम ने श्रीसीता जी के अलावा दूसरी स्त्री नहीं किया। अपितु हर एक यज्ञों में काञ्चनी सीता ही बनाई जाती है। वैसे तो श्रीसीताराम अभिन्न हैं। सदा एक ही हैं। परन्तु मेरे प्रिय श्रोता सज्जनो आपको मैं "प्रभु का इन्द्रिय निग्रह" बता रहा हूँ। हालाँकि यह छोटे मुख बड़ी बात है। कहाँ प्रभु कहाँ हम। कहाँ उनका अपार चरित्र सागर कहाँ मैं? एक अल्पज्ञ पुरुष। मोतियों को भला कैसे पा सकता हूँ? फिर भी सज्जनो, अपने श्री गुरुजी महाराज की चरण-रज अंजन लगाने से अतीत भविष्य अनागत दिख रहा है। यथा—

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष बिभंजन ॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन ॥

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥

उसी भाँति श्रीगुरु जी महाराज की कृपा ही हमको प्रत्यक्ष रात-दिन त्रिकाल दिख रही है। जो दुरूह स्थल हैं वह सब भी सरल होते जा रहे हैं। अतः भगवान रघुकुल कमल दिवाकर श्रीरघुनाथ श्रीराम जी महाराज महान् एक पत्नी व्रतधारी हैं। यथा—

त्वां देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे
स्वप्नागता-शयनमध्यसखी त्वमेव।
दारान्तरग्रहणनिःस्पृहमानसस्य
यागे तव प्रतिकृतिर्मम धर्मपत्नी ॥

अर्थात् हे देवि चित्त में स्थापित (सदा ही स्मृति में रमी हुई अविमृस्त अविस्मरणीय) तुम्हीं मेरी गृह देवि हो तथा स्वप्न में आयी हुई तुम्हीं मेरी शय्या में सहचरी हो। अन्य पत्नी के परिग्रह की मुझे तनिक भी स्पृहा नहीं है, इच्छा नहीं है। महायागों में धर्म पत्नी की आवश्यकता होने पर तुम्हारी स्वर्णमयी प्रतिमा ही मेरी प्रिय धर्मपत्नी है। ऐसा इन्द्रिय निग्रह सिवा पुराण पुरुष पुरुषोत्तम के और भला

किसमें हो सकती है। सनातन अव्यक्त प्रभु ही ऐसे सामर्थशाली हैं। सारे शक्ति सामर्थ के प्रधान श्रोत ही वे हैं। अतः वहाँ शौच इन्द्रिय निग्रह का अभाव कहाँ। वहाँ तो पग-पग पर आदर्श हो भरा है।

अनिन्द्य अनन्त सुन्दरी तारा आई, मन्दोदरी आई, सती सुलोचना भी आई, परन्तु श्रीराजीव लोचन श्रीराम के नयन पटल ऊपर की ओर गये ही नहीं। स्वयं रावण भगिनी सूर्पनखा भी बहुत बनठन कर सज-संवरि के आई थी, परन्तु प्रभु ने वहाँ भी उसको न देखकर श्रीसीता भगवती की ओर देखकर ही बात किया।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।।

जबकि स्वयं वह मोहिनी रूप बनाकर ही आई थी। यथा—

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।

अति मनोहर रुचिर वेष रचना कर रखा था, परन्तु नीलाम्बुज स्यामल कोमलाङ्ग श्रीराम ने उसको देखा ही नहीं। अतः धन्य हैं, श्रीराम जी महाराज जिनका यश इतना निर्मल है कि जितना खोजा जाय, कहा जाय, सुनाया जाय, लिखा जाय, सब बहुत कम है। श्रीराम स्वयं ही अमोघ हैं।

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि।।

अर्थात् हे देव आपका अमोघ वीर्य और अमोघ पराक्रम है। आपका दर्शन और स्तवन भी अमोघ है और भूतलवर्ती आपके भक्त नर भी अमोघ सर्वत्र कामना साफल्य ही होंगे। वे भक्त इह लौकिक सकल कामनाओं को प्राप्त करेंगे और अन्त में आपके पुराण पुरुषोत्तम स्वरूप को प्राप्त होंगे।

ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च।।

अतः श्रीराम चरित्र निर्मल, आवदार, पानीदार मोती की भाँति मूल्यवान प्रकाशवान है। जिसके कण्ठ और वाणी का वह भूषण बन जाय वह धन्य है। उसके माता-पिता धन्य हैं। वह धरणी भी धन्य है, जहाँ वह श्रीराम भक्त रहता है, तो प्यारे श्रोताओं, आपने धर्म के दश लक्षणों के वर्णन में आज शौचमिन्द्रिय निग्रह सुना है। अब आगे की बात पर ध्यान दीजिए।

—:०:—

श्रीहरिः

धीर्विद्या

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

सज्जनो ! हमारा जो यह प्रवचन चल रहा है, वह अनंत गुण गण भूषण श्रीराम के मङ्गलमय चरित्र का है । जिसमें हम आप सब श्रोताओं को यह बात प्रेम से समझा रहे हैं कि 'रामो विग्रहवान् धर्मः' श्रीराम धर्म के मूर्तिमान स्वरूप हैं । समस्त धर्म श्रीराम में ही प्रतिष्ठित हैं । वही श्रीराम ही इस धर्म के उद्धारक प्रचारक भी हैं । यथा—

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ।।

और भी—

विप्रधेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ।।

और श्रीमद्भागवद्गीता में भी यही घोषणा करते हैं । यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।६।।

(श्रीम. भ. गी. अ. ४-७)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।८।।

(श्रीम. भ. गी. अ. ४-८)

अर्थात्—

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा । हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ।।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥

इसलिए वही निर्गुण निराकार प्रभु ही सगुण साकार होते हैं । अतः उनमें बुद्धि विद्या का प्रत्यारोपण करना या खोजना ही लघुता है । प्रभु कौन हैं ? भगवती श्रुति कहतीं हैं ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्य-अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋ. वेद. सं. १-१६-४६)

इत्यादि आर्ष वचनों के अनुसार सम्पूर्ण वेदों का महातात्पर्य परात्पर परब्रह्म परमेश्वर में ही है । वह ब्रह्म जैसे निर्गुण निर्विकार है, उसी प्रकार सगुण साकार अन्तर्यामी चिद्घन आनंद स्वरूप भी है । वही परब्रह्म अचिन्त्य अनंत सौन्दर्य, माधुर्य आदि से परिपूर्ण साकार रूप में भी सर्वत्र वर्णित है । जो ब्रह्मस्वरूप ईश्वर अनंत ब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन, संहार कर सकने में समर्थ है तथा अनंतानंत प्राणियों के लिए भी अनंतानंत देह इन्द्रिय आदि का निर्माण कर उसे प्रदान करता है । वह प्रभु अपने लिए भी दिव्य गुण गण सम्पन्न सौन्दर्य माधुर्य आदि गणों से सम्पन्न दिव्य श्री विग्रह का भी निर्माण कर सकता है । तब वह रूप दिव्याति दिव्य परम मनोहर नयनाभिराम होता है । प्यारे श्रोताओं देखिए मनोभिराम की एक सुन्दर छवि का श्रद्धा से जरा अवलोकन करिये । यथा—

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन ॥
जावक जुत पद कमल सुहाये । मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये ॥
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरति बाल रबि दामिनि जोती ॥
कल किंकिनि कटि सूत मनोहर । बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
पीत जनेउ महाछबि देई । कर मुद्रिका चोरि चितु लेई ॥
सोहत ब्याह साज सब साजे । उर आयत उर भूषन राजे ॥
पिअर उपरना काखा सोती । दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन कमल कल कुंडल काना । बदनु सकल सौंदर्य निधाना ॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा । भाल तिलकु रुचिरता निवासा ॥
सोहत मौरु मनोहर माथे । मंगलमय मुकुता मनि गाथे ॥

अब आपही सोचिये ? इस अनुपम रूप राशि पर कौन अभागा होगा, जो तन-मन-धन से पूर्णता के साथ बलिहारी न्योछावर नहीं हो जायगा। अतः जड़-चेतन सभी प्राणी उस रूप माधुरी का जी भर के ध्यान करते हैं।

अतः सज्जनों! श्रीराम प्रभु के विद्या, बुद्धि, गुण पर विचार करने के पहले अपनी विद्या बुद्धि को तरोताजा करने के लिए अपने विद्या बुद्धि के एक महासागर श्रीगुरु जो महाराज के पावन चरणारेविन्दों का स्मरण करना चाहूँगा। आप सब उदारमति श्रोताओं से कथा को अति ललित करने के लिए तथा रस से परिपूर्ण करने के लिए उन दिव्य चरण कमलों का स्मरण करना जरूरी हो गया है। अतः उन चरण कमलों में मन को लगाना अनिवार्य है। अतः प्रभु के विशाल विद्या बुद्धि की थाह लगाने के लिए पहले उस विद्या बुद्धि के स्वरूप को समझना पड़ेगा, और उसके मूल में जाना पड़ेगा। क्योंकि मूल का पता पा जाने से सारा विस्तार अपने आप मालूम हो जाता है। जैसे मूल्यवान चिन्तामणि प्राप्त कर लेने से फिर कोई चीज प्राप्त कर लेना शेष नहीं रह जाता है। अतः श्री गुरु चरण कमलों का स्मरण अब फिर अनिवार्य हो गया है। वही श्रीगुरु महाराज के चरणों की कृपा जब हो जाती है, तब सरस्वती के विशाल साहित्य भण्डार में एक गूंगा भी प्रवेश करके नवरस भरी वाणी बोल सकता है। अतः सद्गुरु देव! आप ही इस सांसारिक जीव को उस अखण्ड ब्रह्म ज्ञान का बोध कराने मे परम समर्थ हे। सद्विद्या रूपी कमल का विकास आप ही हैं। संसार के अन्धकार का नाश कराने मं प्रखर सूर्य क समान आप ही तेजस्वो हैं। आप का स्वरूप हे सद्गुरुदेव! अपार अमयाद अपरंपार है। आप की सामर्थ्य शक्ति अनंत है। आप ही समस्त संसार का पालन करने वाले और परम शुभ कल्याणरूपी महारत्नों के भण्डार हैं। अपने भक्त शिष्यों के मन मधुप चित्त को मलयागिरि चन्दन के समान शीतलता और सुगन्ध प्रदान करने वाले आप ही हैं। सम्पूर्ण एकाग्रता से उपासना आराधना करने वालों में परम योग्य देवता हे श्री गुरु महाराज आप ही हैं। हे गुरुदेव! जिस प्रकार शरद निशीथिनी में व्यथित दुखित चकोर पक्षी चन्द्रमा को देख कर शान्ति सन्तोष पाता है, उसी प्रकार सज्जनों भक्तों के चित्त को आप शान्ति सन्तोष प्रदान करते हैं। आप ही आत्म साक्षात्कार के परम अधिकारी हैं और श्रुति-स्मृति के महाज्ञान रस के आप ही सागर हैं।

इसलिए हे गुरुदेव! आप का यह एक नम्र सेवक आप के चरण कमलों में नमस्कार करता है। और आप की ही सदा जय-जयकार करता है, तथा आप अपने (इस प्रवचन सागर के लिए) नई-नई विशाल उक्तियों, तरङ्गों का इस बुद्धि में विकास करो, ताकि श्रीराम कथा रस से यह प्रवचन रत्नाकर

परिपूर्ण हो जाय। हे महाराज आप के प्रताप प्रसाद से ही श्री विद्यापति महाराज, श्री गणेश जी तथा भगवती शारदा भी प्रसन्न होती हैं, और नवरस युक्त इस साहित्य प्रान्त में एक अनाड़ी भी प्रवेश कर सकता है। संसार के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय स्थान आप ही हैं। आप की वाणी ही अभय का आशीर्वाद रूपी बचन, वाणी को प्रदान करती है। उसी समय साहित्य के श्रृङ्गारादि नवरस तथा प्रसाद ओज माधुर्यादि गुण एवं व्याकरण रूपी महासागर भी गोपद के समान दिखाई पड़ता है। हे सद्गुरुदेव आप के दिव्यवाणी के एक कण का प्रसाद भी यदि पंगु मूक बधिर को कदाचित् मिल जाय तो वह लेखन तथा वाचन श्रवण में दृढ़ प्रतिज्ञापूर्वक प्रभु वृहस्पति से प्रतिद्वन्द्विता कर सकता है। इतना ही नहीं, हे श्रीगुरुजी महाराज आपकी वाणी का आशीर्वचन अथवा भयहारी कृपा का हाथ जिसके मस्तक पर छू जाय तो वह नर होते हुए भी इस मृत्यु लोक में ही भगवान सदाशिव के समान हो जाता है। अर्थात् शिव का दास हो जाता है। जिन श्री गुरुदेव महाराज का इतनी व्यापक मर्यादा एवं प्रभाव है। भला हम अल्पमति उनकी उस अपरंपार महिमा का गुणानुवाद कैसे कर सकते हैं ? भला कभी समुद्र को भी जल से सन्तुष्ट किया जा सकता है ? या कभी दिनकर, दिवाकर तेजस्वी भगवान सवितादेव सूर्यनारायण के शरीर में भी उबटन लगाकर तेल मालिस कर सकता है ? अथवा क्या कभी इन साधारण फूलों से नंदन कानन में आकाश गङ्गा के तट पर सुशोभित कल्पवृक्ष देवतरु का भी पूजन हो सकता है ? भला कपूर को सुगन्धित करने के लिए और कोई सुगन्ध खोजनी पड़ेगी ? अथवा मलयागिरि चन्दन को किस चीज का लेप लगाकर शीतलता प्रदान की जा सकती है ? तथा अमृत से पकाए गए अन्य को क्या कोई अन्य द्रव पदार्थों से पकाकर रुचिकर बनाया जा सकता है ? क्या ब्रह्माण्ड व्यापी गगन मण्डल को और ऊपर उठाने के लिए कोई और खम्भा लगाना पड़ेगा ?

ठीक इसी प्रकार श्री गुरुदेव की महिमा का पूरा-पूरा आकलन करने के लिए कौन सा साधन प्राप्त हो सकता है । जिससे उनका यह लघु सेवक उनकी महिमा का गुण गा सके। अतः हे महाराज मैं आदर पूर्वक आप के चरण-कमलों को दण्डवत प्रणाम करते हुए इस कथा को और आगे बढ़ाने के लिए आप की थोड़ी महिमा गाकर अपनी वाणी को बल ही प्रदान किया है। हे महाराज श्री आप की जय-जयकार हो। मैं अपनी बुद्धि बल से आप की महिमा का गान करके दर्प अथवा भक्ति प्रदर्शित नहीं कर रहा हूँ। यथार्थ में आप की महिमा ब्रह्मा, बिष्णु, महेश भी नहीं जान सकते। जो कहता है, हम इस महिमा को जान गए, वह कुछ भी नहीं जान पाया है। आपकी महिमा को ज्यादा बताना ही मोती पर चाँदी की कलई चढ़ाने के समान बालक्रीड़ा ही मानी जायेगी। अतः श्री गुरुनाथ को नमस्कार करके अब श्री चक्रगदाधर भगवान श्रीनारायण के पूर्ण अवतार भगवान दशरथ नन्दन श्रीराम का चरित्र और आगे बढ़ाता हूँ।

अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः ।
विष्णुर्मानुष रूपेण चचार वसुधातलम् ।।

अर्थात् भगवान विष्णु ने ही मानुष रूप में दाशरथि राम होकर समस्त वसुधा को उपकृत्य किया है । स्वयं भगवान चतुरानन ब्रह्मा ने ही प्रभु से प्रार्थना की थी । अत :—

विष्णुना वसता चापि-गृहे दशरथस्य वै ।
दशग्रीवो हतश्च्छन्नं संयुगे भीमकर्मणा ।
यमस्य नेता नमुचेश्च हन्ता ।

असितो देवलस्तात बाल्मीकश्च महातपाः ।
मार्कण्डेयश्च गोविंदे कथयन्त्यद्भुतं महत् ।।
सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च ।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः ।।
(म. भा. १२-३३६-८५)

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरि : सर्वत्र गीयते ।।
(म. भा. १८-६-२३)

महाभारत के वचन से भी यह बात प्रमाणित हो गयी कि परम शक्तिमान् सर्वज्ञ प्रभु स्वयं नारायण ही श्री कौशल्या नन्दन यशवर्धन राजाधिराजा महाराज श्रीरामचन्द्र जी हैं । उनकी धीविद्या का उदय तो सनातन है । शाश्वत है, तथा आप श्रोता जन प्रारम्भ से ही सुनिये । यथा—

गुर गृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप काल विद्या सब आई ।।
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।।

सभी शास्त्र पुराण वेद प्रभु को अल्प काल में ही आ गये वास्तव में तो भगवान वेदों की उत्पत्ति ही प्रभु के नासा पुट से जायमान श्वांस से ही हुयीं हैं । वे ही चारो वेद हैं । यथा :—

निःश्वसितमस्य वेदाः वीक्षितमेतस्य पंच भूतानि स्मित मेतस्य चराचरं, अस्य च सुप्तं महाप्रलयः ।

अर्थात् जिनके श्वांस सार रूप ही वेद हैं और जिन्होंने अपनी कृपा कटाक्ष से देख दिया तो पंच महाभूतों की उत्पत्ति हो गयी और किंचित मुस्कुरा दिये तो सम्पूर्ण चराचर में जागृति आगयी, तथा प्रभु ने अपने कृपा वाले नेत्र बन्द कर लिया तो वहीं प्रलय हो गया। चारों वेदों को सज्जनो अपोरुषेय माना जाता है। अतः इन चारों वेदों की रचना फिर कैसे हुई है, आप इसको भी सुन लीजिये। सृष्टि के आदि में भगवान श्री नारायण जब क्षीरसागर में शयन कर रहे थे। सहस्र फण धारी शेष ही स्वयं शय्या बने थे। स्वयं महालक्ष्मी भगवती चरण कमलों को दबा रही थीं, तथा हरिबाहन श्री गरुड़ जी महाराज श्री हरि के सामने ही हाँथ जोड़ नम्रता से अपने दोनों पंख फुलाये बैठे थे। सनातन पुराण पुरुष के श्वांस श्री नासापुट से निकल कर पक्षीराज गरुड़ के पंखों में टकराते रहे, और गरुड़ ने अपने पंखों पर ही सम्पूर्ण वेद अंकित कर लिया है यथा पूर्वकल्प के अनुसार श्री हरि कृपा से ही चतुरानन ब्रह्मा को उन वेदों का ज्ञान हुआ है। यथा—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥

इसीलिए श्रीहरि स्वयं जब पक्षीराज गरुड़ पर आरूढ़ होते हैं और गरुड़देव जब अपने पंख चलाते हैं तो आकाश में चारों ओर वेद ध्वनि ही होती रहती है। इसीलिए भगवान के मन्दिरों में आज भी गरुड़ घण्टी होती है। जिसका आरती, भोग में वेद ध्वनि के प्रमाण के लिए ही बजाया जाता है। अर्थात् चारों वेद ही भगवान की सहज श्वांस है। यथा—

श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी ॥

वे स्वयं ही विद्या, बुद्धि की खानि है तथा अपने भक्तों पर कृपा करके ही वे बुद्धि निर्मल प्रदान करते हैं, जिसका अनिष्ट होने वाला होता है, उसकी बुद्धि पहले ही नष्ट हो जाती है यथा संतवचन—

जाको प्रभु दारुन दुःख दीन्हा। ताकी मति आगे हरि लीन्हा ॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा ॥
काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ॥

अर्थात् काल दण्डा लेकर किसी को प्रत्यक्ष में मारने नहीं आता, अपितु उसकी बुद्धि, बल और धर्म का हरण करके उसको महाभ्रम पैदा कर देता है। भक्त राज विभीषण ने भी रावण की मति को ही धिक्कारा है। जैसा कि उन्होंने कहा—

ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिन्धु मानुष तनुधारी ॥
जन रंजन भंजन खल व्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥
सुमति कुमति सबकें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥
तब उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥

इसलिए धीविद्या के अपार राशि सुखमय परम प्रभु श्रीराम चन्द्र जी महाराज हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी प्रभु बुद्धि का ही प्रमाण मानते हैं। यथा—

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥

(श्री म० भ० गी० २।३९)

अर्थात् हे पार्थ ये बुद्धि तेरे लिए ज्ञान योग के विषय में कही गयी हैं और इसी को अब निष्काम कर्म योग के विषय में सुन। जिस बुद्धि से तू कर्मों के बन्धन को अच्छी तरह से नाश करने में समर्थ होगा।

कुव्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥

(श्री म० भ० गी० २।४१)

हे अर्जुन इस कल्याण मार्ग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है और अज्ञानी पुरुषों की बुद्धियाँ बहुत भेदों वाली अनंत होती हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।

(श्री म० भ० गी० २।४४)

अर्थात् उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्त वाले तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति वाले उन पुरुषों के अन्तःकरण में निश्चयात्मक बुद्धि का सर्वथा घोर अभाव रहता है। इसलिए वे महिमाशाली रूप को विचार नहीं सकते।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।

(श्री म० भ० गी० २।४९)

अर्थात् बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ है। इसलिए हे धनंजय समत्व बुद्धियोग का आश्रय ग्रहण कर। क्योंकि फल की वासना वाले अत्यन्त दीन हैं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

(श्री. म० भ० गी० २।५०)

समत्व बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य-पाप दोनों को ही इस लोक में त्याग देता है। अर्थात् उनसे लिपायमान नहीं होता है। इससे समत्व बुद्धियोग के लिए ही चेष्टा कर, यह सम्भव बुद्धिरूप योग ही कर्मों में चतुरता है। अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का दृढ़ उपाय है और कोई मार्ग नहीं है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।

(श्री म० भ० गी० २।५१)

क्योंकि बुद्धियोग युक्त ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप बन्धन से छूटे हुए, निर्दोष अर्थात् अमृतमय परमपद को ही प्राप्त होते हैं।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।

(श्री म० भ० गी० २।५२)

जिन कालों में तेरी बुद्धि मोहरूप दल-दल को बिल्कुल तर जायेगी, तब तूं सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को धारण कर सकेगा, प्राप्त कर सकेगा।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

(श्री म० भ० गी० २।५३)

जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थिर ठहर जायगी तब तूं समत्वरूप योग को प्राप्त होगा।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

(श्री० म० भ० गी० २।५५)

हे अर्जुन जिस काल में पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस काल में आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थिर बुद्धिवाला कहा जाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थिरधीर्मुनिरुच्यते ॥

(श्री म० भ० गी० २।५६)

दुःखों की प्राप्ति में उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गयी है स्पृहा जिनकी, तथा नष्ट हो गये हैं, राग भय और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है। सज्जनों! यह मैं आपको धीविद्या का चमत्कार सुना रहा हूँ आपने सावधानी से सुन लिया होगा।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

(श्री म० भ० गी० २।६१)

उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण स्थित होवे, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभि जायते ॥

(श्री म० भ० गी० २।६२)

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

(श्री म० भ० गी० २।६३)

विषयों को चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है, कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़ भाव उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है और स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है, बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है ।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

(श्री म० भ० गी० २।६५)

उस निर्मलता के होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है, इस प्रकार उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है ।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।

(श्री म० भ० गी० २।६६)

साधन रहित पुरुष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त के अन्तःकरण में आस्तिक भाव भी नहीं होता है और बिना आस्तिक भाव वाले पुरुष को शान्ति भी नहीं होती है, फिर शान्ति रहित पुरुष को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।

(श्री म० भ० गी० १०।१०)

अर्थात् जो प्रीति पूर्वक आस्तिक भाव से हठ, अनुराग से प्रभु का भजन करता है, प्रभु को भजता पूर्वक है । उसको प्रभु बुद्धि का योग देते हैं । ताकि वह प्रभु को ही प्राप्त कर सके । जन्म जरा मृत्यु भय से चिरंतन अवकाश प्राप्त कर ले । सांसारिक बुद्धि भी प्रभु ही देते हैं ।

(१६२)

सारद प्रेरि तासु मति फेरी । मागेसि नींद मास षट केरी ॥

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥

अतः जब समस्त संसार के प्राणीमात्र को उदर पोषण से लेकर मरण तक की मति प्रभु ही देते हैं, तो जरूर वह धीविद्या के सागर होगे हीं । सारे विश्व प्रपंच को एक ही चीज एक ही स्थान से बाँटी जाय तो वह राशि कितनी होगी, इसकी कल्पना भी हम आप नहीं कर सकते हैं । अतः श्रीराम सर्व समर्थ पालक, सृजक, संहारक कृपालु, दयासिन्धु, माता-पिता, भगिनी-भ्राता, गुरु से कोटि गुणक हितकारी हितैषी हैं । हमने अपने अल्पमति से श्रीगुरुजी महाराज की कृपा से यह चरित्र आप सबको सुनाया है । आप कथा रसिक श्रोताओं की परम सन्तुष्टी ही मेरा सन्तोष है और परम सफलता भी इसी को हम मानते हैं । अतः सज्जनों अब आगे के दो लक्षणों पर आप और ध्यान देकर सुनिये तथा कानों के भाग्य की सराहना कीजिए ।

श्रीहरिः

सत्यम् क्रोधः

सत्यम्—अक्रोधः

धर्मेतत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता ।
मित्रेऽवञ्चकता-गुरौ विनयता चित्तेऽतिगंभीरता ।।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेष्वति ज्ञानता ।
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता चैते गुणा राघवे ।।

(चाणक्य १२-१५)

श्रीराम की धर्म में तत्परता एवं मुख में मधुरता स्तुत्य थी । दान में उनका समुत्साह तथा मित्र के प्रति अवंचकता भी लोकोत्तर थी । गुरु के प्रति वे विनयी थे, उनके चित्त में गम्भीरता आचार में, पवित्रता, गुणों में रुचि, शास्त्र में निष्ठा, रूप में अति सुन्दरता एवं हरि में भक्ति भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी । सर्व शक्तिमान प्रभु को जानकर फिर कुछ जानना शेष नहीं रह जाता । यथा—

येनाश्रुतंश्रुतंभवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति ।
कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ।।

(छा० उ० अ. ६।३)

जिसके द्वारा अश्रुतश्रुत हो जाता है । अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है जैसे—

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं-स्याद्वाचारम्भण विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम् ।।

(छा० उ० ६।४)

अर्थात् हे सौम्य जिस प्रकार एक मृत्तिका के पिण्ड के द्वारा सम्पूर्ण मृन्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि विकार केवल वाणी के आश्रय भूत नाम मात्र है । सत्य तो केवल मृत्तिका ही है ।

यथा सौम्केयैन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहेमित्येव सत्यम् ।

(छा० उ० ६-५)

हे सौम्य जिस प्रकार एक लौह मणि का ज्ञान होने पर सम्पूर्ण लौहमय (सुवर्णमय लौ) पदार्थ जान लिये जाते हैं क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्वित नाम मात्र है। सत्य केवल सुवर्ण ही है।

यथा सौम्येंकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं, कृष्णायसमित्येव सत्यमेवं सोम्य स आदेशो भवतीति ।

हे सौम्य जिस प्रकार एक नख कृन्तन से अर्थात् उसके उपलक्षित लोह पिण्ड से सम्पूर्ण काषर्णामय लोहे का विकार समूह जान लिया जाता है, क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्बित केवल नाम मात्र है। सत्य केवल लोहा ही है। हे सौम्य ऐसा ही वह आदेश भी है। श्रीराम जी नर रूप ब्रह्म होते हुए भी सुर रूप देव देवियों से गुण में, ध्यान में, विवेक में, वैराग्य में, त्याग में, सौन्दर्य में, शौर्य वीर्य माधुर्य में, शील में, स्नेह में, सुख रूप में, नीति में, धर्म में, कर्म में, मर्यादा पालन में, धैर्य में, सहिष्णुता पालन में, तेज में, बल में, निपुणता में, गंभीरता में, निराभिमान में, मधुर वाक्य चरिता में, सुरसकिता में तथा मान सम्मान में, दान में, ध्यान में, ईश गुणगान में, विनय में, नम्रता में, गौरव में, मन मोहन में, दुःखियों के दुःख दूर करने में, वीरत्व में, तथा चतुर नीच को भी सम्मान देने में, निष्कपट व्यवहार में, पक्षपात रहित न्याय में, दुष्टों के दमन में, कार्यपटुता में, लोक व्यवहार में, चौदहों भुवन में, सर्वश्रेष्ठ दिख पड़े। उपमा बड़ों की बड़ों के साथ ही दी जाती है। श्रीसीताराम जी से बड़ा इन लोकों में कोई श्रेष्ठ नहीं है।

विश्वोद्भवस्थितिलयादिकहेतुमेकं ।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।
आनंद सान्द्रममलं प्रणवस्व रूपं ।
सीतापतिं विगततत्वमहं न जाने ।।

जो एक मात्र विश्व के सृजन पालन और प्रलय के हेतु हैं, जो मन्युष्यावतार धारण कर माया का आश्रय लिये हुए हैं, परन्तु माया से विगत हैं। क्योंकि वे अचिन्त्यमूर्ति कोटि सूर्य की प्रभासमान प्रकाशमान, स्वच्छ शुद्ध सच्चिदानंद आनंदमय ओंकार रूप हैं। जिनका तत्व त्रिभुवन में व्याप्त है, उन्हीं परमब्रह्म श्री सीतापति को मैं प्रणाम करता हूँ। उन श्रीसीताराम प्रभु को महिमा अपरंपार है।

सूर्य्यस्यापिभवेत्सूर्यो अग्ने अग्निः प्रभोः प्रभुः ।

अर्थात् सूर्य के भी सूर्य हैं । अग्नि के भो अग्नि हैं प्रभु के भी प्रभु श्रीराम ही हैं ।

सूर्य्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षंममेयं गुरुमत्परम् ।।

श्रीसीता भगवती युक्त सूर्य मण्डल में स्थित कमल लोचन दीर्घ नेत्र वाले वशिष्टादि गुरुओं का भवित करते हुए श्रीरामचन्द्र जी महाराज को मैं आदर पूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

रकार्थो रामः सगुण परमैश्वर्य जलधि रतार्थो जीव सकलविध कैन्कर्ण निप्रनः तयेमिध्याऽकारो युगुलमथ सम्बन्ध मनयो रनन्यार्थः श्रुत्वा निगम सम रुपोऽय महुलः ।

एकु छत्नु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ।।

रकारो ध्वज प्रोक्तों मकरश्छत्न वस्तथा ।
सर्ववर्ण सिरस्थोहि रामइतियुच्यते बुधैः ।।

यन्नामसंसर्ग वशाद्द्विवर्णों नष्टस्वरौ मूर्ध्निगतौ स्वराणाम् ।
तद्रामपादौ हृदये निधाय देही कथं नोर्ध्वगतिं प्रयाति ।।

अर्थात् जिसके नाम संसर्गवश से दो अक्षर स्वर नष्ट होते ही स्वरों के सिर पर चले जाते हैं, तो श्रीराम के चरणारविन्दों को हृदय में रखने से यह शरीर ऊर्ध्व गति को क्यों नहीं प्राप्त होगा ? अर्थात् अवश्य ही प्राप्त होकर रहेगा जी ।

सर्वलोकप्रियः साधुरदानात्मा विचक्षणः ।।१५।।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।१६।।
सच सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः ।।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।।१७।।

[वा. रा. १-१५-१७]

श्रीराम गंभीरता में समुद्र जैसे, धैर्य में हिमवान जैसे, वीर्य पराक्रम में विष्णु जैसे तथा चन्द्रमा के समान प्रिय एवं दर्शनीय हैं। क्रोध में कालाग्नि के तुल्य, क्षमा में पृथ्वी के तुल्य एवं सत्य में धर्म के तुल्य हैं। वन गमन तथा अखण्ड भूमण्डल के राज्य का त्याग करने में सर्व लोकातीत जीवन मुक्त जैसे उनके निर्मल चित्त में कोई भी विकार प्रक्रिया नहीं होती।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्य मूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥
[वा. रा. अयो. १०६।१३]

वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत्।
[वा. रा. अयो. १०६।१४]

सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये ॥
[वा. रा. अयो. १०६।१६]

नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्य प्रतिश्रवः ॥
[वा. रा. अयो. १०६।१७]

लोक में सत्य ही ईश्वर है। सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है सबका मूल भी सत्य ही है। सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है। न तो लोभ से न मोह से मैं इस सत्य सेतु का भेदन नहीं कर सकता। श्रीराम प्रभु में सत्यादि समस्त गुण सदा ही प्रतिष्ठित होते हैं।

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥
[वा. रा. अयो. १२।३०]

सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु शुश्रुषा ये सभी सद्गुण श्रीराम में स्थिर रूप से सदा ही रहते हैं।

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥

क्रूरता का अभाव, दया विद्या, शील, दम इन्द्रिय संयम और शम मनोनिग्रह ये छः गुण नर-श्रेष्ठ श्रीराम को सदा ही सुशोभित करते हैं।

उत्साहः पौरुषं सत्वमानृशंस्यं कृतज्ञता।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥

अर्थात् श्रीराम में उत्साह पुरुषार्थ, धैर्य, अक्रोध, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव ये सात प्रधान गुण श्रीराम में ही सदा प्रतिष्ठित हैं। सात ही क्यों? श्रीराम रघुकुलभूषण वैदेही रमण प्रभु में असंख्य गुण हैं। सभी गुण तथा सत्य प्रभु से ही गुण पाते हैं। वे स्वयं अपने को गुणों से विभूषित करने के लिए ही श्रीराम प्रभु की शरण जाते हैं।

श्रीहरिः

श्रीराम में असंख्य गुण

रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ।।
[वा. रा. सु. ३५।८]

हे श्री जनकनन्दिनी श्रीरामचन्द्र जी के नेत्र प्रफुल्ल कमल दल के समान विशाल एवं सुन्दर हैं । मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मनोहर हैं । वे जन्मकाल से ही रूप और उदारता आदि गुणों से सम्पन्न हैं ।

तेजसाऽऽदित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ।। ।।९।।
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः ।। ।।१०।।
(वा. रा. सु. ३५।९-१०)

वे तेज में सूर्य के समान, क्षमा में पृथ्वी के तुल्य, बुद्धि में बृहस्पति के सदृश और यश में इन्द्र के समान हैं । वे सम्पूर्ण जीव-जगत् के तथा स्वजनों के भी रक्षक हैं । शत्रुओं को संताप देने वाले श्रीराम अपने सदाचार और धर्म की रक्षा करते हैं ।

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ।।
(वा. रा. सु. ३५—११)

अर्थात् हे भामिनि श्रीरामचन्द्र जी जगत् के चारों वर्णों की रक्षा करते हैं । लोक में धर्म की मर्यादाओं को बाँध कर उनका पालन करने और कराने वाले भी वे ही हैं ।

अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ।।
(वा० रा० सु० ३५-१२)

अर्थात् सर्वत्र अत्यन्त भक्ति-भाव से उनकी पूजा होती है। ये कान्तिमान् एवं परम प्रकाश स्वरूप हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में लगे रहते हैं। साधु पुरुषों का उपकार मानते हैं और सदाचरणों द्वारा सत्कर्मों के प्रचार का ढंग जानते हैं।

राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।
ज्ञानवाञ्शीलसम्पन्नो विनीतश्च परंतपः ॥

(वा. रा. सु. ३५।१३)

अर्थात् वे राजनीति में पूर्ण शिक्षित, ब्राह्मणों के उपासक, ज्ञानवान्, शीलवान्, विनम्र तथा शत्रुओं को संताप देने में समर्थ हैं।

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥

(वा० रा० सु० ३५।१४)

अर्थात् उन्हें यजुर्वेद की भी अच्छी शिक्षा मिली है। वेदवेत्ता विद्वानों ने उनका बड़ा सम्मान किया है। वे चारों वेद, धनुर्वेद और छहों वेदाङ्गों के भी परिनिष्ठित विद्वान हैं।

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥

(वा० रा० सु० ३५।१५)

अर्थात् उनके कन्धे मोटे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी, गला शंख के समान, मुख सुन्दर है। गले की हँसुली माँस से ढकी हुई है तथा नेत्रों में कुछ-कुछ लालिमा है। वे लोगों में "श्रीराम" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
समःसमसुविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥

(वा० रा० सु० ३५।१६)

अर्थात् उनका स्वर दुन्दुभि के समान गम्भीर और शरीर का रंग सुन्दर एवं चिकना है। उनका प्रताप बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके सभी अंग सुडौल और बराबर हैं। उनकी कान्ति श्याम है।

त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः ।
त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः ।।
त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् ।
चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुः समः ।।

(वा० रा० सु० ३५।१७-१८)

उनके तीन अङ्ग (वक्षःस्थल, कलाई और मुट्ठी) स्थिर हैं। भौंहें, भुजाएँ और मेढ़ ये तीन अङ्ग लम्बे हैं। केशों का अग्रभाग अण्डकोष और घुटने ये तीन समान बराबर हैं। वक्षःस्थल, नाभि के किनारे का भाग और उदर-ये तीन उभरे हुए हैं। नेत्रों के कोने, नख और हाथ-पैर के तलवे ये तीन लाल हैं। शिश्न का अग्रभाग, दोनों पैरों की रेखायें, और सिर के बाल—ये तीन चिकने हैं तथा स्वर, चाल और नाभि ये तीन गम्भीर हैं। उनके उदर तथा गले में तीन रेखायें हैं। तलवों के मध्यभाग, पैरों की रेखायें, और स्तनों के अग्रभाग तीनों धसे हुए हैं। गला, पीठ तथा दोनों पिण्डलियाँ ये चार अङ्ग छोटे हैं। मस्तक में तीन भँवरे हैं। पैरों के अंगूठे के नीचे तथा ललाट में चार-चार रेखायें हैं। वे चार हाथ ऊँचे हैं। उनके कपोल, भुजाएँ, जाँघे और घुटने ये चार अंग बराबर हैं।

चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः ।
महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् ।।

(वा० रा० सु० ३५।१९)

अर्थात् शरीर में जो दो-दो की संख्या में चौदह अंग होते हैं, वे भी उनके परस्पर सम हैं। अर्थात् भौंह, नथुने, नेत्र, कान, ओंठ. स्तन, कोहनी, कलाई, जाँघ, अण्डकोष, कमर के दोनों भाग, हाथ और पैर। उनकी चारों कोनों की चारों दाढे शास्त्रीय लक्षणों से युक्त है। वे सिंह, बाघ, हाथी, और साँड़ इन चारों के समान चार प्रकार की गति से चलते हैं। उनके ओठ, ठोढ़ी और नासिका सभी प्रशस्त हैं। केश, नेत्र, दाँत, त्वचा और पैर के तलवे इन पाँचों अंगों में स्निग्धता भरी है। दोनों भुजाएँ, दोनों जाँघें, दोनों पिण्डलियाँ, हाथ और पैरों की अँगुलियाँ ये आठ अंग उत्तम लक्षणों से सम्पन्न और लम्बे हैं।

दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् ।
षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥

(वा० रा० सु० ३५।२०)

उनके नेत्र, मुख विवर, मुख मण्डल; जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर ये दस अंग कमल के समान हैं। छाती, मस्तष्क, ललाट, गला, भुजाएँ, कंधे, नाभि, चरण, पीठ, और कान में दस अंग विशाल हैं। वे श्री यश और प्रताप इन तीनों से व्याप्त हैं। उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं। पार्श्वभाग, उदर, वक्षःस्थल, नासिका, कंधे और ललाट ये छः अंग ऊँचे हैं। केश, नख, लोम, त्वचा अंगुलियों के पोर, शिश्न, बुद्धि और दृष्टि आदि नौ सूक्ष्म अर्थात् पतले हैं तथा वे श्रीरघुनाथ जी पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न इन तीन कालों द्वारा क्रमशः धर्म, अर्थ और काम का अनुष्ठान करते हैं।

सत्यधर्मरतः श्रीमान् संग्रहानुग्रहे रतः ।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः ॥

(वा० रा० सु० ३५।२१)

श्रीरामचन्द्र जी सत्य धर्म के अनुष्ठान में संलग्न, श्री सम्पन्न, न्यायसंगत धन का संग्रह और प्रजा पर अनुग्रह करने में तत्पर देश और काल के विभाग को समझने वाले तथा सब लोगों से प्रिय वचन बोलने वाले हैं।

भ्राता चास्य च वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः ॥

(वा० रा० सु० ३५।२२)

उनके सौतेले भाई सुमित्रा कुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। अनुराग, रूप और सद्गुणों की दृष्टि से भी वे श्रीरामचन्द्र जी के ही समान हैं।

स सुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः ।
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ ॥
विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नामस्माभिः सह संगतौ ।

(वा० रा० सु० ३५।२३½)

अर्थात् उन दोनों भाइयों में अन्तर इतना ही है कि लक्ष्मण के शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान गौर है और महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी का विग्रह श्याम सुन्दर है।

वे दोनों नरश्रेष्ठ आपके दर्शन के लिए उत्कंठित हो सारी पृथ्वी पर आपको ही खोज करते हुए हम लोगों से मिले थे। इस प्रकार अनंत गुण गण संयुक्त श्रीराम में गुण खोजना क्षीर सागर को १ तोला बकरी का दूध चढ़ाने के बराबर ही है। कुछ गुण और निम्नलिखित हैं। आप सज्जन श्रोताजन सन्मान पूर्वक सुनिये जी।

धृतिमान्, नियतात्मा, महाबली, वेदवेत्ता, आत्मवश, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, वाग्मी, कुशलवक्ता, श्रीमान् शत्रुहन्ता; सर्वाङ्ग सुन्दर, आजानुबाहु, समस्त शुभ लक्षणान्वित, धर्मज्ञ, सत्यसन्ध प्रजाहितैषी यशस्वी, शुचि, समाहित भक्त की भक्ति के वश में हो जाने वाले, साधू लोकप्रिय, आर्य, सतसंगी, शान्तप्रिय, दर्शन (कटु कहे जाने पर भी) मधुरभाषी, (मीठीवाणी) बोलने वाले, पूर्वभाषी प्रियवक्ता (प्रिय बात कहने वाले, अहंकार शून्य, वृद्धपूजक, अत्यन्त दयालु, परम तार्किक (सदा) नीरोग, तरुण वातदृक (सभा में परमश्रेष्ठ ढंग से भाषण द्वारा सारी जनता को मंत्रमुग्ध कर वशीभूत करने वाले) देशकाल का पूर्ण ज्ञान रखने वाले, सरल सत्यवक्ता अदीनात्मा ब्राह्मण भक्त प्रतिभाशाली, लोक व्यवहार दक्षकृत कल्प कालक्रिया दक्ष शाश्वत गुप्तमन्त्र (जिसकी मंत्रणा या संकल्प सबको ज्ञात न हो सके) सहाय्य सम्पन्न कालज्ञ, अमोघ क्रोध अमोघ हर्ष दृढ़ भक्ति, स्थिर प्रज्ञ समवृताकार (जिसके चेहरे के देखने से अन्तर हृदय का भाव स्पष्ट समझ में न आ सके) स्थिर विचार, स्थिर चित्त, अनाग्रही, कभी भी दुर्वचन न बोलने वाले, निरालस्य, अप्रमत्त, स्वदोषज्ञ, परदोषज्ञ, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, मनोविज्ञ, अश्वारोहण, कुशल गजारोहण, कुशल तथा रोहण, कुशल अश्वनियमन, कुशल गजनियमन, कुशल अतिरथी, सैन्य विज्ञान, कुशल अप्रधिक्य, अनसूचक, अभक्तसरी, जितक्रोध, जितदोष, शीलवान, विनयी, सर्वापराधक्षमाकारी दुःखी को सान्त्वना देने वाले, सुलक्षण, मृदुभव्य उत्साही, नित्यविजयी प्रजावत्सल, मित्रवत्सल, नीराग, निर्व्यसन, दशपद्म (कमलनेत्र, कमल चरणादि) पूर्णचन्द्र निभानन, दाक्षिण्यपूर्ण, आदित्यवत्, प्रतापी, पृथ्वीतुल्य क्षमाशील, इन्द्र के समान यशस्वी, बृहस्पति के समान बुद्धिमान् एवं वक्तृत्व शक्ति सम्पन्न, वृत्तरक्षक, स्वजन रक्षक, धर्मरक्षक, वर्णाश्रम रक्षक, मर्यादा कारक, पुरुषोत्तम, नित्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मण्यदेव, राजनीति में दक्ष, स्निग्ध वर्ण दुन्दुभि, निर्घोष स्वर, गूढ़यत्रु, चतुष्सम, चतुर्दश समद्वन्द्व, चतुर्दृष्ट, चतुर्गति, पंचस्निग्ध, अष्टदशवान, दशवृष्य, त्रिव्याप्त द्विशुल्क इत्यादि, इत्यादि।

(१७३)

रूपं वर्णः प्रभाराग आभिजात्यं विलासिता ।
लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमीगुणाः ॥
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ।
सर्वशास्त्रार्थतावज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ॥

वे वेद वेदाङ्गों के तत्व को जानने वाले हैं। धनुर्विद्या में निष्णात हैं। समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। उनकी स्मृति प्रतिभा और शक्ति महान् है।

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां चोहिते रतः ।
यशस्वी ज्ञान सम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धातारिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥१३॥
(वा.रा. १।१)

वे धर्मज्ञ हैं, सत्य प्रतिज्ञा वाले हैं, प्रजाओं के हित में संलग्न हैं। यशस्वी हैं, ज्ञानी हैं। पवित्र हैं, आत्मवशी हैं और एकाग्र चित्त वाले हैं। प्रजापति के समान वे श्री से सम्पन्न, सबका पोषण करने वाले शत्रुदमन कर्त्ता प्राणीमात्र के रक्षक, मर्यादा के पालक एवं रक्षक और स्वजनों की पीड़ा को दूर करने वाले हैं।

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।१५॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ॥
समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवान् इव ॥१७॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ॥
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथ्वीसमः ॥१८॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्मइवापरः ।
(वा. रा. १।१)

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥३३॥
(वा. रा. २।१९)

वे एक ओर समुद्र के समान गम्भीर थे, तो दूसरी ओर हिमालय के समान दृढ़ धैर्य वाले थे। वे एक ओर पराक्रम में त्रिविक्रम श्रीविष्णु के समान थे, तो दूसरी ओर चन्द्रमा के समान सौम्य और प्रिय दर्शन थे। क्रोध के समय वे यदि कालाग्नि के समान दिखाई देते थे, तो क्षमा में पृथ्वी के समान भी थे। त्याग में वे कुबेर के समान थे, तो सत्य पालन में मानो धर्म के ही अवतार थे। चाहे वनगमन हो, चाहे राज्य का परित्याग हो, उनके चित्त में कभी विकार नहीं देखा गया। उनकी यह सद्गुण राशि उन्हें समस्त मानवों के ऊपर स्थित कर रही थी। उनके गुण गण शेष शारदा भी नहीं वर्णन कर सकते, जो सहस्र फण धारी हैं। जो भगवती शारदा विद्या-बुद्धि की एक मात्र अधिष्ठात्री देवी हैं, वे भी गुण गण गायन में परवश हैं।

शृणु शिष्य वदाम्यद्य राम राज्ञः शुभावहा।
दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकाद् हि शिक्षितुम्॥

हे शिष्य अब मैं राजा श्रीराम के पवित्र दिनचर्या का वर्णन करता हूँ, जो राज्य के हित में है।

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥

(अध्यात्म रामायण १-१-३२)

आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥

(अध्यात्म रामायण १-१-३३)

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥

(अध्यात्म रामायण १-१-३४)

वत्स हनुमन् तुम श्रीराम को साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो। यह निःसंदेह समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियों के अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं और मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाली ही मूल प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी सन्निधि मात्र से इस समस्त विश्व की रचना किया करती हूँ।

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराणः।
एकःस्वयं ज्योतिरनंत आद्यः॥
मायातनुं लोकविमोहनीयाम्।
धत्ते परानुग्रह एष रामः॥॥

उन्हीं पुराण पुरुष परमात्मा श्रीराम ने संसार पर परम अनुग्रह करने के लिए एक स्वयं प्रकाश अनंत और सबमें आदि कारण होते हुए भी यह जगन्मोहन मायामयरूप धारण किया है।

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तानुक्रमिष्यन् सतु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथंचित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥

(श्रीमद् भा.य. पु. ११-४-२)

हे राजन् अनंत भगवान के अनंत गुणों का जो पुरुष पार पाना चाहता है, वह मन्द बुद्धि है, बाल बुद्धि है। सम्भव है पृथ्वी के रजः कणों को किसी प्रकार किसी समय कोई गिन भी ले, किन्तु सर्व-शक्तिमान श्री भगवान के गुणों का कोई पार नहीं पा सकता।

सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन्॥

(वा. रा. सु. ३४—२७)

अर्थात् श्री सीताजी के इस निश्चय को समझ कर पवन कुमार श्री हनुमान जी उस समय कानों को सुख पहुँचाने वाले अनुकूल बचनों द्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए बोले।

आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा॥

(वा० रा० सु० ३४-२८)

भगवान श्रीराम सूर्य के समान तेजस्वी चन्द्रमा के समान लोक कमनीय तथा देव कुबेर की भाँति सम्पूर्ण जगत् के राजा हैं।

विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः।
सत्यवादी मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा ॥

(वा. रा. सु. ३४।२९)

महा यशस्वी भगवान विष्णु के समान पराक्रमी तथा वृहस्पति जी के समान सत्यवादी एवं मधुर भाषी हैं।

रूपवान् सुभगः श्रीमान् कंदर्प इव मूर्तिमान्।
स्थान क्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः।

(वा. रा. सु. ३४।३०)

अर्थात् रूपवान्, सौभाग्यशालो और कान्तिमान् तो वे इतने हैं, मानो मूर्तिमान् कामदेव हों। वे क्रोध के पात्र पर ही प्रहार करने में समर्थ और संसार के श्रेष्ठ महारथी हैं।

बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः।
अपक्रम्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम् ॥३१॥
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ॥३२॥

(वा. रा. सु. ३४)

सम्पूर्ण विश्व उन महात्मा की भुजाओं के आश्रय में, उन्हीं की छत्र छाया में विश्राम करता है। मृगरूपधारी निशाचर द्वारा श्रीरघुनाथ जी को आश्रम से दूर हटाकर जिसने सूने आश्रम में पहुँच कर आप का अपहरण किया है, उसे उस पाप का फल मिलने वाला है, उसको आप अपनी आँखों देखेगों। क्योंकि हे जननी श्रीराम अनंतगुण गण राशि हैं। शास्तारदृष्टि में है। स्वयं अद्भुत रामायण उत्तर काण्ड भक्तियोग नामक चौदहवें सर्ग में श्रीहनुमान जी महाराज को बताया है।

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकसंहर्त्ता सर्वात्माऽहं सनातनः ॥

(अद्भुत् रामायण—१४-१)

सर्वेषां एव वस्तूनामन्तर्यामी पितास्म्यहम् ॥
मय्येवान्तःस्थितं सर्वं नाऽहं सर्वत्र संस्थितः ॥
[१४-२]

भवता चाद्भुते दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम् ।
ममैषा ह्युपमा वत्स मायया दर्शिता मया ॥
[अद्भुतरामायण १४-३]

सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थिताः ।
प्रेरयामि जगत्सर्वं क्रियाशक्तिरियं मम ॥
[अद्भुतरामायण १४-४]

ययेदं चेष्टते विश्वं मत्स्वभावानुवर्ति च ।
सोऽहं काले जगत्कृत्स्नं करोमि हनुमन् किल ॥
[अद्भुतरामायण १४-५]

संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु ।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्व प्रवर्तकः ॥
[अद्भुतरामायण १४-६]

क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ।
ताभ्यां सञ्जायते सर्वं संयुक्ताभ्या परस्परम् ॥
[अद्भुतरामायण १४-७]

श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं—पवन नंदन ? मैं सम्पूर्ण लोकों का एक मात्र स्रस्टा, सब लोकों का एक मात्र पालक तथा समस्त संसार का एक मात्र संहारक सबका आत्मा सनातन परमात्मा हूँ । मैं समस्त वस्तुओं के भीतर रहने वाला अन्तर्यामी आत्मा तथा सबका पिता हूँ सारा जगत मेरे भीतर स्थित है । मैं इस सम्पूर्ण जगतके भीतर स्थित नहीं हूँ । वत्स ! तुमने जो मेरा अद्भुत स्वरूप देखा है, यह मेरी एक उपमा मात्र है । इसे मैंने माया द्वारा दिखाया है । मैं सभी पदार्थों के भीतर स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत को प्रेरित करता हूँ । यह मेरी क्रिया शक्ति का परिचय है । हनुमन् ! यह सम्पूर्ण विश्व मेरे सहयोग से ही चेष्टाशील होता है । यह मेरे स्वभाव का ही अनुशरण करने वाला है ।

अवश्य मैं ही सृष्टिकाल में समस्त जगत की रचना करता हूँ तथा एक दूसरे रूप से इसका संहार भी करता हूँ। यह दोनों प्रकार की अवस्थाएँ मेरी ही हैं। मैं आदि मध्य और अन्त से रहित एवं माया तत्व का प्रवर्तक हूँ। मैं ही सृष्टि के प्रारम्भ में प्रधान और पुरुष दोनों को क्षुब्ध करता हूँ। फिर परस्पर संयुक्त हुए उन दोनों से ही सबकी उत्पत्ति होती है।

वाञ्छा सज्जनसंगतौ परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषितिरतिर्लोकापवादाद् भयं;
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणाः तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

अर्थात् इसके अतिरिक्त सत संगति की लालसा पराये गुणों को देखकर प्रसन्नता केवल अपनी ही स्त्री के प्रति प्रेम भगवान् शंकर की भक्ति में प्रेम आत्म संयम की शक्ति तथा असंतों दुष्टों के संसर्ग का त्याग ये सभी गुण मनुष्य को वंदनीय बनाते हैं और ये सब गुण प्रभु श्रीराम में उपस्थित थे।

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥

(श्रीरामरक्षास्तोत्र—३१)

जिनके दक्षिण पार्श्व में श्रीलक्ष्मण जी तथा वाम भाग में श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकी जी हैं। सामने श्रीहनुमान जी महाराज विराजमान रहते हैं उन रघुनन्दन श्रीराम की मैं वन्दना करता हूँ।

श्रीराम उवाच

अहमात्मा परो नित्यः सन्मात्रो विभुरीश्वरः
सद्सद्भावरहितो भेदाभेदविवर्जितः
एकोऽद्वितीयोऽविकृतो निराकारो निरंजनः
मच्छत्तपो विश्वमिदं भिन्नाभिन्नतयाश्रितम् ॥

(१७६)

यत्न त्वमन्ये वहवः तत्वानामधिपाः सुराः
मदांशाशबलेनैव खे खद्योता इवासतै ।
अहमेवादिरानन्दो निरालम्बः स्वराऽविभुः
सर्वः सर्वगतः शान्तः शुद्धश्चैतन्यविग्रहः
आकाशस्वाम्विचाकाशो दिग्दिशामस्मि शास्वती
कालस्याऽपि महान् कालो ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ।।
कारणं कारणानां च करणानामहं मनः
अणुनां परमाणीयान् महतां च महत्तरः
विभुर्विभूनामधिकस्तत्वानां तत्वमुत्तमम्
योगो निर्वाणमार्गाणामहमस्मि सनातनः ।
प्राणः प्राणवतामस्मि दमश्चास्मि तपस्विनाम्
शान्तिरस्मि मुमूर्षुणां प्रणयोऽस्मि गिरामहम्
विधिःक्रियावतामस्मि निवृत्तिरपि योगिनाम् ।।
ददक्षितानां रतिश्चास्मि वृत्तिश्चेक विवेकिनाम्
महोपनिषदं विष्णोः संगृह्य कथयामि ते ।
समना संभृष्णूनामुन्मनास्मि मदर्थिनाम्
यत् किंचित् परमं लोके तत्सतदस्मि जनार्दन
मया व्याप्तमिदं विष्णोर्विश्वमव्यक्ततेजसा ।।

(श्रीम॰ भागवत अ. २ श्लोक ४६-५६ तक)

अर्थात् प्रभु श्रीराम ने कहा मैं परमात्मा अविनाशी सत् स्वरूप सर्व व्यापक परमेश्वर सत्-असत् भाव से रहित भेदाभेद शून्य एक अद्वितीय अविकारी निराकार और माया रहित हूँ। यह विश्व मेरी शक्तियों का ही विलास है। जो भिन्न अभिन्न रूप से स्थित है। तुम तथा अन्य बहुत से तत्वाधीश्वर देवता मेरे अंशों के सहारे आकाश में जुगनू की भाँति स्थित है। मैं ही आदि आनंद स्वरूप निरालम्ब स्वराट-व्यापक सर्वरूप सर्वव्यापी शान्त शुद्ध चैतन्य विग्रह और आकाश का भी आकाश हूँ।

मैं ही दिशाओं की सनातनी दिशा हूँ। काल का भी महाकाल ज्योतियों की उत्तम ज्योति कारणों का कारण और इन्द्रियों का शासक मन इन्द्रिय मैं ही हूँ। मैं ही अणुओं में परमाणु महनोयों में महत्तर, विभुओं में श्रेष्ठ, विभु, तत्वों का उत्तम तत्व और निवृत्त मार्गियों का सनातन योग हूँ। मैं प्राणधारियों का प्राण हूँ। तपस्वियों 'का इन्द्रिय संयम हूँ। मुमुक्षुओं की शान्ति हूँ और वाणियों में ओंकार हूँ क्रियावानों की विधि और योगियों की निवृत्ति भी मैं ही हूँ। मैं ही दीक्षितों की रति और ज्ञानियों का परम वैराग्य हूँ। गमनशीलों के लिए समना तथा मेरे लिए यज्ञ करने वालों के लिए उन्मना मैं ही हूँ। विष्णो यो महोपनिषद का संग्रह करके मैंने तुमसे वर्णन किया है। जनार्दन इस प्रकार लोक में जितनी परमोत्कृष्ट वस्तुयें हैं, वे सब मैं ही हूँ। विष्णो जिसका तेज अव्यक्त है ऐसे मेरे द्वारा यह सारा विश्व व्याप्त है।

विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम्।
परिपूर्णानन्द विज्ञं-परज्योतिःस्वरूपिणम् ।।
मनसा संस्मरन् ब्रह्मा-तुष्टाव परमेश्वरम्।

जो समस्त विश्व के आधार और महाविष्णु रूप हैं, रोग शोक सेरहित नारायण हैं। परिपूर्ण आनंद विज्ञान के आश्रय हैं, और परम प्रकाश रूप हैं, उन परमेश्वर श्रीराम का मन ही मन स्तवन करते हुए ब्रह्मा जी ने उनकी इस प्रकार स्तुति की।

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं।
जारो अभ्येति पश्चात्।।
सुप्रकेतैर्घु भिरार्ग्निर्वितिष्ठन्।
रूशद्भि वर्णैरभिराममस्थात्।।

[ऋ० संहिता—१०-३-३, सामवेद—१५४८]

इस मन्त्र के चार चरणों में राम कथा के मुख्य चार अंशों का उल्लेख किया गया है। पहले चरण में बताया गया है कि भगवान् श्रीराम भद्रपतिव्रता भगवती श्रीसीताजी के साथ (वन) आये। भगवान श्रीराम प्रभु पिताजी के आदेश को पालन करने के कारण भद्र हैं। अर्थात् सत्पुरुष कि वा महापुरुष हैं।

भगवती जगज्जननी मिथिलेश कुमारी जनक नन्दिनी सीताजी ने अयोध्या के राजसुखों का परित्याग करके पतिदेव श्रीराम प्रभु के साथ कष्ट सहन किया। अतएव वे भी भद्रा अर्थात् पतिव्रताओं की मुकुट मणि हैं। दूसरे चरण में कहा गया है कि पीछे से छिपकर दुराचारी रावण बहिन के सम्मुख आया। रावण विद्वान था। उसने यह नीति अवश्य पढ़ी होगी कि– मातृवत परदारेषु।

ॐ यो ह्वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानंद आत्मा।
यः सच्चिदानंदाद्वैते कचिदात्मा भूः भुवः सुवस्तस्मै नमोनमः॥

ओं जो जगत प्रसिद्ध श्रीराम चन्द्रजी हैं। वे निश्चय ही भगवान षडविधि ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। अद्वितीय परमानंद स्वरूप हैं, जो सच्चिदानन्द अद्वितीय एक चित स्वरूप हैं। भूः भुवः स्वः ये तीन लोक हैं। उन श्रीरामचन्द्र जी को निश्चय ही मेरा बारंबार नमस्कार है।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेसदासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥
आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥१५॥
नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
जलजारुणनेत्रान्तःस्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥१६॥
सहस्राकंप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः।
शङ्खचक्रगदापद्म बनमाला विराजितः॥१७॥
अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः।
करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः।
श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः॥१८॥

(अध्यात्म रामायण १५-१८)

अर्थात् उनका वर्ण नील कमल के समान अभिराम था और वे पीताम्बर धारण किए हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं और वे चार हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए हुए थे। गले में आजानु लम्बिनी

सर्वतु कुसुमोज्वला वनमाला शोभा दे रही थी। उनके अपांग गुलाबी थे। वे चमचमाते हुए कुण्डलों को अपने कानों में पहिने हुए थे। सहस्त्रों सूर्य की भाँति उनकी कान्ति थी। सिर पर किरीट मुकुट सुशोभित था और अलकावली कालो कुंचित थी। नेत्र युगल विकसित कमल युगल की भाँति सुन्दर थे। विशाल भी थे और अपने भक्तों के प्रति करुणारस उनमें उमड़ सा रहा था। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित था और हार बाजूबन्द एवं नूपुर आदि अलंकारों से वे विभूषित थे, ओठों पर मंद-मंद मुसकान छिटक रही थी। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी। मानो हृदय में विराजमान अनुग्रह रूपो चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही थी।

श्यामाम्बुदाभ्रमरविन्दविशालनेत्रं ।
बन्धूकपुष्पसदृशाभरपाणिपादम् ।।
सीतासहायमुदितंधृतचापबाणम् ।
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेशम् ।।

(श्री यामुनाचार्य)

जो नील मेघ के समान श्याम वर्ण हैं, जिनके कमल के समान विशाल नेत्र हैं, जो बन्धूक पुष्प के समान अरुण ओष्ट हस्त और चरणों से सुशोभित हैं, जो भगवती जगज्जननी सीताजी के साथ विराजमान एवं अभ्युदयशील हैं. जिन्होंने धनुष वाण को धारण किया है जिनका वेष बड़ा ही सुन्दर है, उन श्रीराम प्रभु को मैं सिर से नमस्कार करता हूँ।

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय, नम आर्यं
लक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन ।
उपासित लोकाय नमः साधु वाद निकषणाय ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ।।

(श्री भा. ५।१९।३)

ओंकार स्वरूप पवित्र कीर्ति भगवान् श्रीराम प्रभु को नमस्कार है। आप में सत्पुरुषों के लक्षण शील और आचरण विद्यमान हैं। आप बड़े ही संयतचित्त लोकाराधन तत्पर साधुता की परीक्षा के लिए कसोटी के समान और अत्यन्त ब्राह्मण भक्त हैं। ऐसे महापुरुष श्रीमहाराज श्रीराम को हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

यत् तद् विशुद्धानुभवमात्रमेकं ।
स तेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनम् ।
ह्यनामरूपं निरऽहं प्रपद्ये ।।

(श्री. भा. ५।१९।४)

भगवन आप विशुद्ध बोधमात्र अद्वितीय अपने स्वरूप के प्रकाश से गुणों के कार्यरूप जागृदादि सम्पूर्ण अवस्थाओं का निराश करने वाले सर्वान्तरात्मा परमशान्त शुद्ध-बुद्धि से ग्रहण किए जाने योग्य नाम रूप से रहित और अहंकार शून्य हैं। मैं आपकी शरण में हूँ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति राम पदे नासौ परं ब्रह्माभिधीयते ।।

(रा० पू० ता० उ० ६)

भाव यह है कि जिस नित्यानंद चिदात्मा में योगी लोग रमण करते हैं वहीं परब्रह्म श्रीराम शब्द वाच्य भी है।

कोशलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलावजमहेशबन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ।।

(श्रीराम—उत्तर—२)

कोशलपुरी के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर और कोमल दोनों चरण कमल श्रीब्रह्माजी और श्रीशिवजी महाराज द्वारा वंदित हैं। श्रीजानकी जी के कर-कमलों से दुलराये हुए हैं और चिन्तन करने वाले के मनरूपी भंवर के नित्य संगी हैं। अर्थात् चिन्तन करने वालों का मनरूपी भंवर सदा उन चरण कमलों में ही बसा रहता है।

रामो रक्षति सज्जनान् नहि कदा रामं बिना सद्गतिः ।
रामेणाशु निवार्यते भवभयं रामाय भक्त्या नमः ।।
रामात्सम्भवति प्रशान्ति सरणी रामस्य नैवोपमा ।
रामे मे रमतां मनः प्रतिदिनं हे राम पाह्याश्रितम् ।।

श्रीराम सज्जनों की रक्षा करते हैं। श्रीराम के बिना कभी सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती। श्रीराम के द्वारा ही जन्म-मरण भय का निवारण होता है। ऐसे श्रीराम के लिए भक्ति पूर्वक नमस्कार है। परम शान्ति का मार्ग श्रीराम से समुद्भूत होता है। श्रीराम की कोई उपमा ही नहीं है। उन श्रीराम में मेरा मन रमण करता रहे। हे श्रीराम मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए। क्योंकि आप ही एक शरणागत वत्सल हैं।

कर्म योगेश्वरं धीरं रामं सत्यवतां वरम्।
रक्षितारं च धर्मस्य बन्देऽहं पुरुषोत्तमम्॥
हर्तारं भवविघ्नानां दातारं सुखसम्पदाम्।
त्रातारं साधुलोकानां नेतारं राममाश्रये॥

जो कर्म योगेश्वर धैर्य सम्पन्न सत्यवादियों में सर्वश्रेष्ठ और धर्म के रक्षक हैं, उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ। जो भय और विघ्नों के नाश करने वाले सुख सम्पत्ति के दाता और साधु समाज के रक्षक हैं उन लोक नायक श्रीराम का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो-भूयो नमाम्यहम्॥

जो सब प्रकार की आपत्तियों को हरण करने वाले सब प्रकार की सम्पत्तियों को देने करने वाले हैं। ऐसे लोकाभिराम श्रीराम प्रभु को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ।

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ॥११॥
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्।
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः॥ १२॥
श्रीवत्सवक्षा नित्यः श्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥१३॥
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः।
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ॥१४॥
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम्।

(वा० रा० यु० १०½ से १४½)

(१८५)

निश्चय ही ये श्रीरामचन्द्र जी महान योगी एवं सनातन परमात्मा हैं। इनका आदि मध्य और अन्त नहीं हैं। ये महान से भी महान अज्ञानान्धकार से परे सबको धारण करने वाले परमेश्वर हैं। जो अपने हाथ में शंख, चक्र और गदा धारण करते हैं। भगवती लक्ष्मी कभी जिनका साथ नहीं छोड़तीं, जिन्हें परास्त करना सर्वथा असम्भव है तथा जो नित्य स्थिर एवं सम्पूर्ण लोकों के अधीश्वर हैं, उन सत्य पराक्रमी भगवान् विष्णु ने ही समस्त लोकों के हित की इच्छा से मनुष्य का रूप धारण करके बानर रूप में प्रकट हुए। सम्पूर्ण देवताओं के साथ आकर राक्षसों सहित आपका बध किया है। क्योंकि आप देवताओं के शत्रु और समस्त संसार के लिए भयंकर थे।

कर्त्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठः ज्ञानविदां विभुः।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ॥६॥
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्ध्यसे।
ऋतुधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ॥७॥
त्रयाणामपि लोकानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः।
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः ॥८॥
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ।
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परंतप ॥९॥

(वा० रा० यु० ११७-६ से ८½)

श्रीराम आप सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक ज्ञानी में श्रेष्ठ और सर्व व्यापक हैं। फिर इस समय आग में गिरती हुई सीता की उपेक्षा कैसे कर रहे हैं। आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ श्रीविष्णु ही हैं। इस बात को कैसे नहीं समझ रहे हैं। पूर्वकाल में वसुओं के प्रजापति जो रितधामा नामक वसु थे वे आप ही हैं।

श्रीहरि।

विराट पुरुष श्रीरामचन्द्रजी

आप तीनों लोकों के आदिकर्त्ता प्रभु ही हैं। रुद्रों में आठवें रुद्र और साध्यों में पाँचवें साध्य भी आप ही हैं। दोनों अश्विनी कुमार आपके कान हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं। शत्रुओं को सन्ताप देने वाले देवसृष्टि के आदि मध्य और अन्त में आप ही दिखाई देते हैं।

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव वृहद्बलः॥
सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः।
प्रभवश्चाव्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परात्परः॥
प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति।
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च॥

दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च ।

सहस्रचरणः श्रीमाञ्छतशीर्षः सहस्रदृक् ॥

त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।

अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥

त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान् ॥

(वा० रा० यु० ११७-१३ से २२½ तक)

आप चक्र धारण करने वाले सर्व समर्थ श्रीमान् भगवान नारायणदेव हैं। एक दाढ़ वाले पृथ्वीधारी बाराह हैं तथा देवताओं के भूत और भावी शत्रुओं को जीतने वाले हैं। रघुनन्दन आप अविनाशी ब्रह्म हैं। सृष्टि के आदि मध्य और अन्त में सत्य रूप से विद्यमान हैं। आप ही लोकों के परम धर्म हैं। आपही विषवक्सेन तथा चार भुजाधारी श्रीहरि हैं। आप ही शार्ङ्गधन्वा हृषिकेश अन्तर्यामी पुरुष और पुरुषोत्तम हैं। आप किसी से पराजित नहीं होते। आप नन्दक नाम खड्ग धारण करने वाले श्रीविष्णु एवं महाबली श्रीकृष्ण हैं। आप ही देव सेनापति तथा गाँवों के मुखिया और नेता हैं। आप ही बुद्धि, सत्व, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलय के कारण हैं। आप ही उपेन्द्र 'वामन' और मधुसूदन हैं। इन्द्र को भी उत्पन्न करने वाले महेन्द्र और युद्ध का अन्त करने वाले शान्त स्वरूप पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षि गणों ने आपको शरणदाता तथा शरणागतवत्सल बताया है। आप ही सहस्रोशाखा रूप सींग तथा सैकड़ों विधि वाक्य रूप मस्तकों से युक्त वेद रूप महावृषभ हैं। आप ही तीनों लोकों के आदिकर्त्ता और स्वयं प्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं। आप सिद्ध और साध्यों के आश्रय और पूर्वज हैं। यज्ञ बषट्कार और ओंकार भी आप ही हैं। आप श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं। आपके आविर्भाव और तिरोभाव को कोई नहीं जानता। आप कौन हैं इसका भी किसी को पता नहीं है। समस्त प्राणियों में गउओं में तथा ब्राह्मणों में आप ही दिखाई देते हैं। समस्त दिशाओं में आकाश में और नदियों में भी आप ही की सत्ता है। आपके सहस्रों चरण सैकड़ों मस्तक और सहस्रों नेत्र हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियों को पृथ्वी को और समस्त पर्वतों को धारण करते हैं।

पृथ्वी का अन्त हो जाने पर आप ही जल के ऊपर महान सर्प शेषनाग जी के रूप में दिखायी देते हैं। श्रीराम सबके हृदय में रमण करने वाले परमात्मा आपही तीनों लोकों को तथा देवता गन्धर्व और दानवों को धारण करने वाले विराट् पुरुष नारायण हैं।

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती।
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिता प्रभो ॥
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा।
संस्कारास्त्वभवन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना ॥
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्।
अग्निःकोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ॥
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ता पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः।
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बध्वा सुदारुणम् ॥
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर।
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रमम् ॥
अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः।
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ॥
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥

(वा. रा. यु. का. ११७ सर्ग २३ से ३१ तक)

मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा हैं। प्रभू मुझ ब्रह्मा में जिनकी सृष्टि की है। वे सब देवता आपके विराट् शरीर में रोम हैं आपके नेत्रों का बन्द होना रात्रि, और खुलना

ही दिन है । वेद आपके संस्कार हैं । आपके बिना इस जगत का अस्तित्व नहीं है । संम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है । अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है । वक्षस्थल में श्री वत्स का चिन्ह धारण करने वाले भगवान श्रीविष्णु आप ही हैं । पूर्व काल में वामनावतार के समय आप ही अपने तीन पगों से तीन लोक नाप लिये थे । आपने अत्यन्त दारुण दैत्यराज बलि को बाँधकर इन्द्र को तीनों लोकों का राजा बनाया था । सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं, और आप साक्षात् विष्णु हैं । आप ही सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण एवं प्रजापति हैं । धर्मात्माओं में श्रेष्ठ रघुवीर आप ने रावण का वध करने के लिए ही इस लोक में मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया था । हम लोगों का कार्य आपने सम्पन्न करा दिया, श्रीराम आपके द्वारा रावण मारा गया, अब आप प्रसन्नता पूर्वक अपने दिव्य धाम में पधारिये । देव आपका बल अमोघ है । आपके पराक्रम भी व्यर्थ होने वाले नहीं है । श्रीराम आपका दर्शन अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखने वाले मनुष्य भी इस भूमण्डल में अमोघ ही होगें । आप पुराण पुरुषोत्तम हैं । दिव्य रूपधारी परमात्मा हैं । जो लोग आपमें भक्ति रक्खेगें वे इस लोक और परलोक में अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेगें ।

रामः परमात्मा प्रकृतेरनादिरानंद एकः पुरुषोत्तमो हि ।

(अ. वा. का १ सर्ग १७ श्लोक)

श्रीराम प्रकृति से परे परमातमा अनादि आनन्द घन अद्वितीय एवं निश्चय ही पुरुषोत्तम हैं । जगत् जननी श्रीविदेहनंदिनी ने पवन कुमार को उपदेश करते हुए जिनके सम्बन्ध में कहा ।

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
सर्वोऽपाधिविर्निमुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥

(अ. वा. का. १ सर्ग ३२ श्लोक

जो सच्चिदानन्द अद्वितीय समस्त उपाधियों से रहित सत्ता मात्र आवड़ मनस गोचर परे ब्रह्म हैं । वे श्रीराम ही हैं, ऐसा समझो । वे शील सिन्धु शरणागत वत्सल दीनदयाल है । वे ही सबके प्रेरक प्रदाता दाता हैं । श्रीराम ही सृष्टि के सरजनहार पालनहार हैं वे—

अस सुभाव कहुँ सुनेऊँ न देखेउँ । केहि खगेस रघुपति सम लेखेऊँ ॥

प्यारे सज्जनों ! आपने बहुत देर से राम प्रभु के असंख्य गुण सुन रहे हैं और उत्साह तथा उत्सुकता बराबर बढ़ती ही जारही है। आप सबका यह कथा स्नेह ही हमें नई-नई—कोटि प्रदान करता है तथा आगे का सारा इतिहास श्रीगुरुनाथ महाराज की कृपा से हमको दीख जाता है और हम यत्न पूर्वक आप सब तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। आपका यह अनुपम अनुराग कथा स्नेह प्रभु भक्ति देखकर हमें एक दिव्य कथा याद हो गई है। श्रीरामचरित तो अपार है, अगाध है। फिर भी उन्हीं की कृपा से जो-जो उत्तम श्लोक के उत्तम चरित हमें सूझते हैं। हम आपको बताने में कोई संकोच या कसर नहीं रक्खेगें।

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना ।।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ।।
गूढहुँ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ।।

आप हमारे अधिकारी भक्त शीलवान, उदार मना आस्तिक श्रोता जन हैं। आपको इसी कड़ी में एक परम विचित्र आख्यान सुनाते हैं। सुनिये—द्वापर के युग में नंदरानी महारानी वृजेन्द्र गेहनी पुत्र वत्सला महाभागा पुनीता श्रीयशोदा जी महारानी चिन्तामणि मद कार्तिक मास की पूर्णिमा की रात अपने आँगन प्रांगण में उस पूर्णिमा की रात जब श्रीचन्द्रदेव अपनी पूर्ण कला से सुदूर नभ व्योम वीथी में विराजमान थे। जिनकी छिटक चन्द्रिका चाँदनी सी नन्दवावा के प्रांगण में पूर्व विकसित प्रफुल्लित विकसित थी तो महारानी यशोदाजो अपने ललन गोविन्द श्रीश्यामसुन्दर कृष्ण को निन्दा दिला रही थीं। नन्दरानी के चेहरे पर स्पष्ट चिन्ता की रेखाएँ उभर आयीं थी। वे कभी लोरी गाती थीं कभी-कभी लाड़-प्यार से श्रीकृष्ण के दिव्य अंगों को सुहराती, कभी थपथपाती थीं, कभी कोई कथा सुनाती थीं परंतु जब-जब यशोदा जी नींद लाने के लिए जो भी परिश्रम करती रहती थीं, श्रीकृष्ण नयन कमल मूँदे रहते थे। महाभागा यशोदा सोचतीं कि शायद अब श्रीकृष्ण को नींद आ गई है। जैसे ही कथा कहानी बन्द करतीं नारायण प्रभु अपने विशाल-नयन कमल खोलकर मातु श्री को निहारने लगते थे। यशोदा जी सोचने लगीं, रात आधी बीत चली है। श्रीकृष्ण को नींद नहीं आ रही है। जरूर किसी की नजर लग गयी है। आज तभी तो रात वीती जा रही है। लालन को निद्रा नहीं आ रही है। तमाम उपाय सोचने लगीं—फिर सोचा छोटी-छोटी कथा सुनाती हूँ कथा तो जल्दी ही समाप्त हो जाती है। नींद नहीं आ रही है। अत सोचने लगीं कोई अनुपम अद्भुत लम्बी कथा सुनाऊँ जो पुण्यप्रद एवं प्रेरणादायक हो। अतः थोड़ा देर सोचकर मन को खुश करके श्रीमहारानी यशोदाजी ने कथा सुनाना प्रारम्भ किया। बोलीं लल्लन सुनो !

(१८१)

रामो नाम बभूव हुं तदऽवला सीतेति हुं तौ पितु ।
र्वाचा पंचवटो वने निवसतातामाहरद्रावणः ।।
रामस्येति पुरातनीं निजकथां श्रुत्वा तु मात्रेरितां ।
सौमित्रे क्व धनुः धनुः धर्नुरिति व्यग्रा गिरः पान्तु वः ।।

वहुत पहले की बात है बेटा इस धरणी पर श्रीरामनाम से एक परम प्रतापी धर्मात्मा राजा हुए हैं। वच्चों का आदत होती है कोई कहानी कथा कहिए, तो बीच-बीच में हुँकारी भरते जाते हैं। सुनाने चाले को यह बताते हैं कि हम सुन रहे हैं, तुम आगे सुनाओ फिर क्या हुआ है। इसो प्रकार इस कथा को भी सुनकर श्रीकृष्ण प्रभु बीच-बीच में हुँकारी भरते जाते थे। आगे सुनाने को यशोदाजी को प्रेरित करते थे और बेटा उनकी प्राणप्रिय बल्लभा हृदयेश्वरी परम पतिव्रता पत्नी का नाम श्रीसीता जी था और बेटा वे श्रीराम अपने माता-पिता के बहुत भक्त थे। पिता की ही आज्ञा मानकर श्रीराम श्रीअयोध्या का राज्य त्यागकर चौदह वर्ष के लिए बनवास गये और वहाँ जाकर पंचवटी वन में वास करते थे। एक दिन वहाँ जगत दारुण कारण रावण नाम का अत्याचारी राक्षस आया और उनकी भार्या भगवती जानकी का अपहरण कर लिया, श्रीकृष्ण प्रभु ने अपने पूर्व अवतार रामावतार की कथा अपनी माँ के मुख से सुनी तो पलने में बहुत प्रसन्न हो गए। परन्तु जब यह सुना कि दुर्दान्त रावण श्रोसीता जी को चुराये जा रहा है तो उसी रात उस पलने में लेटे-लेटे ही जोर-जोर से बोलने लगे कि हे वीर लक्ष्मण धनुष कहाँ हैं और जोर-जोर से उछलने लगे। यशोदाजी डर गईं कि यह मेरा कन्हैयालाल अभी बहुत-छोटा है परन्तु यह आगे वाली कथा कैसे जान गया है। लक्ष्मण और धनुष वाली बात तो मैंने बतायी नहीं इसको यह आगे की कथा कैसे मालूम पड़ गयी। सोचने लगी जरूर कोई नजर टोना लग गया है। मारे डर के श्रीनन्द बाबा को बुलाया और सब बात बताई श्रीनन्द बाबा ने श्रीगर्ग मुनी को बुलाया और शान्ति पाठ करा करके श्रीशिव अभिषेक कराया और नन्द यशोदा को बताया कि ये परं ब्रह्म श्रीराम हैं। धरणी भार उतारने के लिए श्रीकृष्ण हुए हैं तो सज्जनों यह निर्मल पावन श्रोराम चरित्र, माता द्वारा शिशु अवस्था में श्रोकृष्ण को सुनाया गया था।

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः ।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ।।

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुश्चैव प्रभाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ।।
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ।।
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ।।
बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ।।
न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते ।।
सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ।।
कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहुमन्यते।
मन्यते परया प्रीत्या महत्स्वर्गफलं ततः ।।
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः।
उत्तरोत्तरं च युक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ।।
अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुस्मान्देशकालवित्।
लोके पुरुषसारतः साधुरेको विनिर्मितः ।।

(वा० रा० प्रथम सर्ग ९ श्लोक से १८ तक)

वे बड़े रूपवान और पराक्रमशील थे, किसी का दोष नहीं देखते थे। संसार में वे अनुपम थे। गुणों में दशरथ के समान और उनके योग्य पुत्र थे। प्रसन्नात्मा और मृदुभाषी थे। यदि उन्हें कोई कठोर बात भी कह देता तो उसका उत्तर नहीं देते थे। कोई कभी एक भी उपकार कर देता तो सदैव उसे याद रखते। उससे संतुष्ट और कोई सैकड़ों अपराध कर देता तो भी उन्हें भूल जाते थे। अस्त्राभ्यास काल में

भी समय-निकालकर शील ज्ञान और आयु में श्रेष्ठजनों का संगकर उनसे शिक्षा लेते थे। वे बुद्धिमान तथा मिष्ठभाषी थे। मिलने वालों से पहिले स्वयं प्रिय वचन बोलते थे। बल और पराक्रम चढ़े-बढ़े होने पर भी उन्हें कभी गर्व नहीं होता था, कभी कोई झूठी बात तो उनके मुख से निकलती ही न थी। विद्वान होते हुए भी बड़े-बूढ़ों की भक्ति करते थे। उनका प्रजा के प्रति और प्रजा का उनके प्रति अनुराग था। वे दयालु क्रोध को जीतने वाले ब्राह्मणों पूजक दीन दयाल धर्म के ज्ञाता इन्द्रियों को सदा वश में रखने वाले और भीतर बाहर से पवित्र थे। कुलोचित आचार का आदर करते एवं स्वधर्म को बहुत महत्त्व देते थे और उसके द्वारा ही महत स्वर्ग फल पाने के प्रति विश्वासी थे। किसी अश्रेय कार्य में उनकी कम प्रवृत्ति नहीं होतो थी। न शास्त्र विरोधी बातें सुनने में कभी रुचि होती थी। वे अपनी बातों के समर्थन में साक्षात वृहस्पति के समान एक से एक युक्ति देते थे। वे निरोग एवं तरुण थे। वे अच्छे वक्ता सुगठित शरीर से युक्त तथा देश कालविद थे। ऐसा लगता था, जैसे विधाता ने संसार के समस्त पुरुषों के सार तत्व को समझने वाले साधु पुरुष के रूप में श्रीराम को प्रगट किया हो। आगे बाल्मीकि ने पुनः कहा है।

दृढ़भक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः।
निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित् ॥

(वा० रा० अयोध्या काण्ड प्रथम सर्ग २४ श्लोक)

वे गुरुजनों के प्रति दृढ़ भक्ति रखने वाले स्थिर प्रज्ञ थे। असत् वस्तुओं को कभी ग्रहण नहीं करते थे। कभी दुर्वचन नहीं बोलते थे। श्रीराम प्रभु ही समस्त वेद उपनिषदों के प्रतिपाद्य विषय हैं। वे मन गोचरातीत हैं।

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः।
रक्षको योगिनाम् नित्यं वर्ततेऽसौ महायशाः ॥
यश्चसर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्नकारकः।
विनायको धर्म नियता सोऽपि मद् वचनात् किल ॥
योऽपि वेदविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः।
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयंभूः प्रतिचोदितः ॥
ये च प्रजानां पतयो मरीचाद्या महर्षयः।

सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ॥
या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम् ।
पत्नी नारायणस्याऽसौ वर्तते मदनुग्रात् ॥
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ।
साऽपि स्वरनियोगेन चोदिता सम्प्रवर्तते ॥
या शेषपुरुषान् घोरान्नरकान्तारयत्यपि ।
सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायनी ॥
पार्वती परमा देवी ब्रह्मविधाप्रदायनी ।
याऽपि ध्याता विशेषेण सोऽपि मद्वचनानुगा ॥

जो अंगिरा के शिष्य रुद्र गणों में अग्रगणी तथा योगियों के रक्षक वामदेव हैं । वे भी मेरी आज्ञा के अनुसार ही बर्ताव करते हैं। जो सम्पूर्ण जगत के पूज्य तथा विघ्नकारक हैं। वे धर्म नेता विनायक देव भी मेरे कथनानुसार ही कार्य करते हैं।

जो वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ तथा देव सेना के अधिपति है। वे भगवान स्कन्द भी नित्य प्रति स्वयंभू से प्रेरित होकर ही कार्य करते हैं। जो प्रजाओं के अधिपति मरीच आदि महर्षि हैं, वे मुझ परमेश्वर के ही आदेश से विविध लोकों की सृष्टि करते हैं। जो समस्त भूतों को प्रचुर सम्पत्ति प्रदान करते हैं, वे भगवान नारायण की पत्नी लक्ष्मी देवी मेरी अनुग्रह से ही कार्य रत होती हैं, जो सरस्वती देवी विपुल वाक् शक्ति प्रदान करती हैं, वे भी मेरी आज्ञा से प्रेरित होकर ही अपने कार्य में तत्पर होती हैं। जो स्मरण करते ही सम्पूर्ण पुरुषों का घोर नरक से उद्धार करती हैं। वे सावित्री देवी भी मुझ परम देव की आज्ञानुसार चलने वाली हैं। जो विशेष रूप से ध्यान करने पर ब्रह्मविद्या प्रदान करने वाली हैं, वे परा देवी पार्वती भी मेरी आज्ञा का अनुसरण करने वाली हैं।

योऽनन्तमहिमानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः ।
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः ॥

योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः ।
पिबत्यऽखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः ।।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ ।
अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छाशनमधिष्ठिताः ।।
गन्धर्वा उरगा यक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणा ।
भूतरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयंभुवः ।।
कला काष्ठा निमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षणाः ।
ऋर्त्विगद्मासपक्षाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः ।।
युगमन्वन्तराणेव मम तिष्ठन्ति शास्त्रने ।
पराश्चैव प्रर्धाश्च कालभेदास्तथा परे ।।
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
नियोगा देव वर्तन्ते सर्वाण्येव स्वयंभुवः ।।

जो नाम से अनन्त हैं। जिनकी महिमा भी अनन्त है तथा जो सम्पूर्ण देवताओं के प्रभु हैं। वे शेष भी मेरी ही आज्ञा से समस्त लोकों को सिर पर धारण करते हैं। जो अग्नि देव नित्य बड़वा रूप से स्थित हो सम्पूर्ण सागर के जल को पीते रहते हैं। वे भी मुझ परमेश्वर के आदेश से ही चलते हैं। आदित्य वसु रुद्र मरुद् गण दोनों अश्विनी कुमार तथा अन्य सम्पूर्ण देवता मेरे शासन में ही रहते हैं। गन्धर्व, नाग, यक्ष, सिद्ध, साध्य, चारण, भूत, राक्षस तथा पिशाच भी मुझ स्वयंभू के शासन में ही स्थित हैं। कला काष्ठा निमेष मुहूर्त दिवस क्षण ऋतु वर्ष मास और पक्ष भी मुझ प्रजापति के शासन में स्थित हैं। युग मन्वन्तर परार्ध पर तथा अन्यान्य काल-भेद भी मेरी ही आज्ञा में स्थित हैं। जड़-जंगमादि चतुर्विध मुझ स्वयंभू की आज्ञा से ही चलते हैं।

पत्तनानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।
ब्रह्माण्डानि च वर्तन्ते देवस्य परमात्मनः ।।

अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया ।
प्रवृत्तान पदार्थौघैः संहतानि समन्ततः ।।
ब्रह्मण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मजैः ।
हरिष्यन्ति ममाज्ञाभिः परस्य परमात्मनः ।।
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
भूतादिराविप्रकृति नियोगात् मम वर्तते ।।
या शेषसर्वजगतां मोहिनी सर्व देहिनाम् ।
मायाऽपि वर्तते नित्यं साऽपि स्वरनियोगतः ।।
विधूय मोहकलिलं यथा पश्यति यत् पदम् ।
साऽपि विद्या महेशस्य नियोगात् वशवर्तिनी ।।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।
मयैव पूर्यते विश्वं मय्येव प्रलयं—व्रजेत् ।।

सम्पूर्ण नगर चौदहो भुवन तथा निखिल ब्रह्माण्ड मुझ परमात्म देव के शासन से ही कार्य रत रहते हैं। अतीत काल में जो असंख्य ब्रह्माण्ड हो गये हैं। वे भी सम्पूर्ण पदार्थ समूहों के साथ मेरी आज्ञा से ही अपने कर्तव्य पालन में प्रवृत्ति हुए थे। चारो ओर भविष्य काल में जो ब्रह्माण्ड होगें वे भी अपनी समस्त वस्तुओं के साथ सदा मुझ—परमात्मा की आज्ञा का ही पालन करेंगे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि अहंकार तथा आदि प्रकृति भी मेरे आदेश से ही कार्य करते हैं। जो समस्त लोकों एवं सम्पूर्ण देह धारियों को मोह में डालने वाली हैं। वह माया भी मुझ ईश्वर के आदेश से ही सारा व्यवहार करती है। जो मोह रूपी कलि का नाश करके सदा परमात्म पद का साक्षात्कार कराती है। वह ब्रह्म विद्या भी मुझ महेश्वर के ही आधीन है। इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ यह सारा जगत मेरी शक्ति से ही उत्पन्न हुआ है। मुझसे ही इस विश्व का भरण-पोषण होता है तथा अन्तोगत्वा सबका मुझसे ही प्रलय होता है।

अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ऽन्यत् तन्न् विद्यते ।।
इत्येतत् परमं ज्ञानं भवते कथितं मया ।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारवन्धनात् ।।
मायामाश्रित्य जातोऽहं गृहे दशरथस्य हि ।
रामोऽहं लक्ष्मणो ह्येष शत्रुघ्नो भरतोऽपि च ।।
चतुर्धा सम्भूतोऽहं कथितं ते—निलात्मज ।
माया स्वरूपं च तव कथितं यत् प्लवंगम ।।
कृपयातद्धृता धारयं न विस्मंतव्यमेव हि ।
येनायं पठ्यते नित्यं संवादो भवतो मम ।।
जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान् ।।
योवा विचारेछ्थं स याति परमां गतिम् ।।
यस्त्वेतच्छृणुयान्नित्यम्भक्तियुक्तो दृढ़व्रतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।

(अद्भुत रामायण उत्तर काण्ड चतुर्दश सर्गः)

मैं ही स्वयं प्रकाश सनातन भगवान ईश्वर हूँ, मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूँ। मुझसे भिन्न दूसरी किसी वस्तु की सत्ता नहीं हैं। हनुमान् यह परम् ज्ञान मैंने तुमसे कहा है। इसे जानकर जीव जन्म मृत्यु रूप संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। पवन नन्दन मैंने माया का आश्रय लेकर राजा दशरथ के घर में अवतार लिया हूँ। वहाँ मैं राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न इन चारो रूपों में प्रकट हुआ हूँ। यह सारी बात मैंने तुम्हें बता दी, कपि श्रेष्ठ मैंने कृपा पूर्वक तुम्हें अपने स्वरूप का परिचय दिया है। इसे सदा हृदय में धारण करते रहना चाहिए। कभी भूलना नहीं चाहिए। जो तुम्हारे और मेरे इस संवाद का नित्य पाठ करेगा वह जीवन मुक्त होगा और समस्त पापों से छुटकारा पा जायेगा। जो विशुद्ध आचार-विचार

वाले ब्रह्मचर्य परायण द्विजों को यह उपदेश सुनाता है अथवा जो इसके अर्थ का विचार करता है। वह परम गति को प्राप्त होता है। जो दृढ़ता पूर्वक व्रत का पालन करते हुए भक्ति भाव में प्रति दिन इस प्रसंग को सुनता है।

वह भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है। इसलिए मनीषी पुरुषों विशेषतः ब्राह्मणों को चाहिए कि वे सम्पूर्ण प्रयत्न के साथ इस प्रसंग को पढ़ें सुनें और सदा इसका मनन करें। श्रीराम प्रभु ही समस्त जगत के पालनहार सृजनहार संहारक हैं। वे ही सबके हृदय गुफा में विराजने वाले निराकार अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वे ही परम विभू हैं तथा अणु भी वे ही हैं। वे करुणा सागर दीनबन्धु जगत्त्राता हैं। सबको अभय देने वाले हैं तथा सम्पूर्ण जड़ जंगम चराचर पर सदा ही अनुग्रह दृष्टि रखने वाले परम कारुणीक हैं। वे भी श्रीरघुवंश मणि रघुकुल कमल दिवाकर हैं।

सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान्दानेन राघव।
गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्॥
सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि-राघवे॥
आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्॥
मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः।
पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरे जनाः॥

(वा० रा० अयोध्याकाण्ड सर्ग १२-२६-३३)

वीर श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने सत्य के द्वारा समस्त लोकों पर, दान के द्वारा द्विजों पर, सेवा के द्वारा माता-पिता आर्चायादि गुरुजनों पर और धनुष वाण के द्वारा युद्ध में शत्रु भाव रखने वालों पर विजय प्राप्त की है। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता विद्या और गुरु सेवा—ये सद्गुण भी श्रीराम में अटल रूप में वास करते हैं। क्रूरता का अभाव, दया, शास्त्र ज्ञान शील इन्द्रिय संयम मनोनिग्रह छः गुण पुरुषोत्तम श्रीराम को सदा सुशोभित रखते हैं। वस्तुतः धर्म के सार तत्व महान्

तेजस्वी श्रीराम सम्पूर्ण मनुष्यों के मूल हैं तथा और जगत के दूसरे समस्त प्राणी पत्र पुष्प फल और शाखा रूप हैं। ऐसे अनन्त कल्याण गुण गण समुद्र, सर्व गुण निलय सर्वस्व सार श्रीरामचन्द्र जी महाराज के अपार चरित्र को शेष शारदा भी अनन्तकाल तक चाह कर भी गुण वर्णन नहीं कर सकते। फिर साधारण की तो बात ही क्या है।

नभ उड़ाहि नहि पावहि अन्ता।
तुमहि आदि नभ मसक प्रजन्ता॥

श्रीहरिः

श्रीरामस्तवराजः

अस्य—श्रीरामचन्द्रस्तवराजस्तोत्र मन्त्रस्य सनत्कुमारऋषिः । श्रीरामो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । सीता बीजम् हनुमान् शक्तिः श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

इस श्रीरामचन्द्रस्तवराजस्तोत्रमन्त्र के सनतकुमार ऋषिः श्रीराम देवता अनुष्टुप छन्द सीता बीज तथा हनुमान शक्ति हैं और श्रीराम की प्रसन्नता के लिए जप में इसका विनियोग है ।

सूत उवाच—

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा प्रत्युवाच मुनीश्वरम् ।।

सूत जी कहते हैं कि एक समय की बात है धर्म नन्दन राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रसन्न चित होकर सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ का तत्वता ज्ञान रखने वाले सत्यवती कुमार मुनीश्वर व्यास जी इस प्रकार प्रश्न किया ।

युधिष्ठिर उवाच—

भगवन् योगिनाम् श्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद ।
किं तत्त्वं किं परम् जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम् ।।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ।।

युधिष्ठिर बोले भगवन आप योगियों में श्रेष्ठ हैं । सम्पूर्ण शास्त्रों के विशेष विद्वान् हैं । अतः आपके मुख से यह सुनना चाहता हूँ कि तत्व क्या है ? सर्वोत्तम जपनीय मन्त्र कौन सा है तथा कौन सा ध्यान मोक्ष का साधक है । मुनि प्रवर यह सब बात आप मुझे बताइये—

वेद व्यासउवाच—

धर्मराज महाभाग श्रृणु वक्ष्यामि तत्वतः ।
यत् परं यद् गुणातीतं यज्योतिरमलं शिवम् ।।
तदैव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम् ।।

अर्थात् वेद व्यास जी ने कहा महाभाग धर्म राज सुनो । मैं सब बातें ठीक-ठीक बताता हूँ । तत्व क्या है, यह सुनो—जो सर्वोत्कृष्ट तीनों गुणों से अतीत निर्मल एवं कल्याणमय है । वही कैवल्य पद का कारण भूत परम तत्व है ।

श्री रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः ।।

अब सर्वोत्तम जपनीय मन्त्र सुनो "श्रीराम" यह परमोत्तम जपनीय मन्त्र है । इसी को तारक ब्रह्म कहा गया है । यह ब्रह्म हत्या आदि पापों का नाश करने वाला है । ऐसी वेद वेत्ताओं की मान्यता है ।

श्री राम रामेति जनाः ये जपन्ति च सर्वदा ।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ।।

जो लोग श्री राम-राम इस मन्त्र का सदा जप करते हैं उन्हें भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे, इसमें संशय नहीं है ।

स्तवराजं पुरा प्रोक्तं नारदेन च धीमता ।
तत् सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि हरिध्यानपुरस्सरम् ।।

अर्थात् पूर्व काल में बुद्धिमान महात्मा नारदजी ने जिस स्तवराज का पाठ किया था, वह सब मैं श्रीहरि का बताऊँगा ।

तापत्रयाग्निशमनं सर्वाघौघनिकृन्तनम् ।
दारिद्र्य दुःखशमनं सर्वसम्पत्करं शिवम् ।।

वह स्तवराज आध्यात्मिक आदि तीनों तापों की अग्नि को शान्ति करने वाला है। सम्पूर्ण पाप शक्ति का उच्छेद तथा दरिद्रता के दुःख को दूर करने वाला है। यह मंगलमय स्तोत्र समस्त सम्पदाओं की प्राप्ति कराने वाला है।

विज्ञानफलदं दिव्यं मोक्षैकफलसाधनम्।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णं जगन्मयम्॥

जो विज्ञान रूप फल देने वाले दिव्य तथा मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति के एकमात्र साधन है उन सच्चिदानन्द घनकृष्ण रूप जगन्मय श्रीराम को नमस्कार करके मैं उनके स्तव राज का वर्णन करूँगा।

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमंडपमध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥

अयोध्या नगरी में रम्य रत्न मण्डप के भीतर कल्पवृक्ष के नीचे उसके मूल भाग के समीप शुभ रत्न सिंहासन का ध्यान करें।

तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
स्मरेन् मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम्॥
पितुरङ्कं गतं राममिन्द्रनीलमणिप्रभम्।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाम्बराबृतम्॥

उस सिंहासन के मध्य भाग में अष्ट दल कमल सुशोभित है। जो नाना प्रकार के रत्नों से परिवेष्ठित है उस कमल के ऊपर कर्णिका स्थान में दशरथ नन्दन श्रीराम का चिन्तन करें। उनका तेज सहस्रों सूर्यो की पूंजीभूत प्रभा को तिरष्कृत कर रहा है। वे श्रीराम अपने पिता चक्रवर्ती महाराज दशरथ की गोद में बैठे हैं। उनकी अंगकान्ति इन्द्रनील मणि की प्रभा को लज्जित कर रही है उनके सम्पूर्ण अंग अत्यन्त कोमल हैं नेत्र बड़े-बड़े हैं तथा वे रघुनन्दन विद्युत के समान चमकीले पीताम्बर से सुशोभित हैं।

भानुकोटिप्रतीकाशकिरीटेनविराजितम् ।
रत्नग्रैवेय केयूर रत्नकुण्डलमण्डितम् ।।

करोड़ों सूर्यों के समान उदभासित कमनीय किरीट उनके मस्तक को प्रकाशित कर रहा है। रत्न मय कण्ठहार मणिमय केयूर तथा रत्न निर्मित कुण्डलों से वे मण्डित है।

रत्नकंकणमंजीरकटिसूत्रै रलंकृतम् ।
श्रीवत्सकौत्सुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ।।

रत्नों के ही बने हुए कंकण मंजीर तथा कटि सूत्र उनके हस्तपाद एवं कटिभाग को अलंकृत किए हुए हैं। उनका वक्षस्थल श्रीवत्स चिन्ह अर्थात् स्वर्णमयी रेखा तथा कौस्तुभ मणि से ये दीप्यमान है। मोतियों के हार उनकी शोभा बढ़ाते हैं ।

दिव्यरत्नसमायुक्तमुद्रिकाभिरलंकृतम् ।
राघवं द्विभुजं बालं राममीषत्स्मिताननम् ।।

उनकी कराङ्गुलियाँ दिव्य रत्न जटित मुद्रिकाओं से अलंकृत हैं। रघुनन्दन श्रीराम का बालरूप दो भुजाओं से अलंकृत हैं। उनके मुख पर मन्द-मन्द मुसकान की छटा छिटकी हुयी है।

तुलसीकुन्दमन्दारपुष्पमाल्यैरलंकृतम् ।
कर्पूरागुरुकस्तूरीदिव्यगन्धानुलेपनम् ।।

उनके ग्रीवा भाग को अलंकृत कर रही कर्पूर अगुरु कस्तूरी तथा दिव्य गन्ध पदार्थों से तैयार किया गया अनुलेप उनके श्रीअंगों की शोभा बढ़ा रहा है।

योगशास्त्रेष्वभिरतं योगेशं योगदायकम् ।
सदा भरतसौमित्री शत्रुघ्नैरपि शोभितम् ।।

वे योग शास्त्रों में अभिरत हैं। योगेश्वर तथा योगदाता हैं। भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न ये तीनों भाई सदा साथ रहकर उनकी ही वृद्धि में सहायक हो रहे हैं।

विद्याधरसुराधीश सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः ।
योगिन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम् ।।

विद्याधर गण, देवराज इन्द्र सिंह गन्धर्व किन्नर योगेन्द्र वृन्द तथा नारद आदि देव ऋषि दिन रात उनकी स्तुति करते हैं ।

विश्वामित्रवशिष्ठादिमुनिभिः परिसेवितम् ।
सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिवृन्दैश्च सेवितम् ।।

विश्वामित्र तथा वशिष्ठ आदि मुनि सदा उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं । सनक सनंदन आदि मुनिवर्य एवं योगियों के समुदाय उनकी समाराधना में सन्लग्न है ।

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ।
मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् ।।
सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञमानंदकरसुन्दरम् ।
कौशिल्यानंदनं रामं धनुर्बाण धरं हरिम् ।।

रघुबीर राम बड़े बीर हैं । धनुर्वेद के विशिष्ठ ज्ञाता हैं । दिव्य विग्रह कमल नयन श्रीराम मंगल के आश्रय हैं । सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ और तत्व के ज्ञाता हैं । आनन्द कारक सौन्दर्य से सुशोभित हैं। कौशिल्या नन्दन भगवान श्रीराम अपने एक हाथ में धनुष, और वाण धारण करते हैं ।

एवं संचिंतयद् विष्णुं यज्ज्योतिरमलं विभुम् ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा मुनिवर्यः स नारदः ।।

इस भगवान के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए इस प्रकार निर्मल व्यापक ज्योतिमय विष्णु स्वरूप श्रीराम का बारंबार चिन्तन करके मुनिवर्य श्रीनारद जी का हृदय पंकज आनन्दातिरेक से खिल उठा ।

सर्वलोकहितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयन्नद्भुतं हरिम् ।।

वे दोनों हाथ जोड़ अद्भुत महिमा वाले श्रीहरि का चिन्तन करते हुए सम्पूर्ण लोकों के हित के लिए रघुकुल नन्दन श्रीराम का स्तवन करने लगे ।

यदैके यत् परं नित्यं यद् नन्तं चिदात्मकम् ।
यदैकं ब्यापकं लोके तद्रूप चिन्तयाम्यहम् ।।

जो एक मात्र अद्वितीय-परम नित्य अनन्त चिन्मय केवल तथा लोक में सर्वत्र व्यापक है। श्रीराम के उस स्वरूप का मैं चिन्तन करता हूँ ।

विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानरूपं स्वसुखैकहेतुम् ।
श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ।।

जो विज्ञान के हेतु विमल विशाल नयनों से सुशोभित प्रज्ञान स्वरूप तथा आत्मा नन्द के उपलब्धि के अद्वितीय कारण हैं । उन आदि देव परात्पर हरिलोक रमण श्रीरामचन्द्र जी का मैं भजन करता हूँ ।

कविं पुराणं पुरुषं पुरस्तात् सनातनं योगिनमीशितारम् ।
अणोरणीयान्स्मनंत वीर्यं प्राणेश्वरं राममसौ ददर्श ।।

इतना कहते-कहते नारदजी को प्राण वल्लभ श्रीराम के प्रत्यक्ष दर्शन हुए, वे श्रीराम कवि अर्थात् त्रिकालदर्शी पुराण पुरुष आदि पुरुष, सनातन योगी ईश्वर अणु से भी अणु तथा अनन्त बल पराक्रम के सिन्धु हैं ।

नारद उवाच—

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् ।
कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ।।

दर्शन के पश्चात् श्रीनारद जो बोले, जो नारायण जीवमात्र के अधिष्ठान् जगन्नाथ, मनोहर सम्पूर्ण जगत् के पालक, कवि पुराण पुरुष तथा वाणी पति है। उन दशरथ नन्दन श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

राजराजं रघुवरं कौशिल्यानंदवर्धनम्।
भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम्॥

जो राजाओं के भी राजा रघुकुल के श्रेष्ठ पुरुष तथा कौशिल्या माता का आनन्द बढ़ाने वाले हैं। जो सर्वोत्कृष्ट तेज समस्त विश्व के अधीश्वर रघुकुल के नाथ तथा जगद्गुरु हैं। उन श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकीवल्लभंविभुम्।
सौमित्रिपूर्वजं शान्तं कामदं कमलेक्षणम्॥

अर्थात् जो सत्य स्वरूप है, सत्य भाषण जिन्हें प्रिय है। जो श्रेष्ठ हैं। जनक किशोरी के प्राण वल्लभ हैं, तथा सर्वत्र व्यापक हैं। उन शान्त स्वरूप एवं सर्व काम पूरक लक्ष्मणाग्रज कमल नयन श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

आदित्यंरवि मीशानं घृणिं सूर्यमनामयम्।
आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करुणामयम्॥

जो अदिति नन्दन, ईश्वर, घृणी सूर्य स्वरूप रोग सहित आनन्द मय सौम्य तथा करुणामय है। उन राघवेन्द्र श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

जामदग्निं तपोमूर्ति रामंपरशुधारिणम्।
वाक्पतिं वरदं वाच्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम्॥

जो तपो मूर्ति परशुधारी जमदग्नि कुमार परशुराम स्वरूप हैं। वाणी के अधिपति वरदायक प्रत्येक शब्द के वाच्यार्थ रूप तथा गरुड़ वाहन लक्ष्मी पति हैं। उन श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्री शार्ङ्गं धारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम् ।
हलधृक् विष्णुमीशानं बलरामं कृपानिधिम् ।।

जो सच्चिदानन्द विग्रह शारंग धनुष धारण करने वाले हलधर रूप विष्णु स्वरूप तथा ईशान स्वरूप हैं। उन करुणावरुणालय बलराम रूपधारी श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीवल्लभं कृपानाथं जगन्मोहनमच्युतम् ।
मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमव्ययम् ।।१।।
वासुदेवं जगोद्‌योनिमनादिनिधनं हरिम् ।
गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ।।२।।
गोगोपालपरीवारं गोपकन्यासमावृतम् ।
विद्युतपुंजप्रतीकाशं रामं कृष्णं जगन्मयम् ।।३।।

जो श्री वल्लभ कृपानाथ जगन्मोहन, अच्युत, मत्स कूर्म, बराह आदि रूपधारी, अविनाशी वासुदेव जगत् के उत्पत्ति के स्थान आदि अन्त रहित हरि (भयहारी) गोविन्द (गौओं के इन्द्र) गोपति, विष्णु, गोपी, जन मनोहर गउओं और गोपालों से आवृत गोप कन्याओं से घिरे हुए विद्युत् पुंज के समान पीत वस्त्रधारी श्याम विग्रह रूप रामकृष्णमय यह जगत है। उन श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

गोगोपिकासमाकीर्णं वेणुवादनतत्परम् ।
कामरूपं कलावन्तं कामिनीकामदं विभुम् ।।
मन्मथं मथुरानाथं माधवं मकरध्वजम् ।
श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम् ।।

जो गउओं तथा गोपिकाओं से आवृत, वेणु वादन में तत्पर, इच्छानुसार रूपधारी सम्पूर्ण कलाओं से सम्पन्न अपनी कामना करने वाली प्रेयसियों की इच्छा पूर्ण करने वाले व्यापक कामदेव स्वरूप मथुरा नाथ माधव मकरध्वज श्रीधर श्री की प्राप्ति कराने वाले श्री जी के स्वामी लक्ष्मी निवास तथा परात्पर पुरुषोत्तम हैं। उन श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

भूतेशं भूपतिं भद्रं विभूतिं भूमिभूषणम् ।
सर्वदुःखहरं वीरं दुष्टं दानववैरिणम् ।।
श्रीनृसिंहमहाबाहुँ महान्तं दीप्ततेजसम् ।
चिदानंदमयं नित्यं प्रणवं ज्योतिरूपिणम् ।।
आदित्यमण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् ।
भक्तिप्रियं पद्मनेत्रं भक्ताना मोप्सितप्रदम् ।।
कौशल्येयं कलामूर्ति काकुस्थं कमलाप्रियम् ।
सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम् ।।

जो भूतनाथ, भूपति भद्र स्वरूप, विभूतिमय भूमि के भूषण, सर्व दुःखहारी, वीर दुष्टों तथा दानवों के वैरी, श्रीनृसिंह स्वरूप विशाल बाहु महान उदिप्त, तेजस्वी, चिदानन्द मय नित्य प्रणवस्वरूप ज्योतिमर्मय सूर्यमण्ड में व्याप्त निश्चित अर्थ स्वरूप भक्ति प्रिय कमल नयन भक्तों के अभीष्ट दाता, कौशिल्या कुमार कला मूर्तिक काकुस्थ कुलभूषण, कमला वल्लभ सिंहासन पर आशीन, नित्य व्रतधारी तथा नित्य अकल्मस हैं। उन श्री राम को मैं प्रणाम करता हूँ।

[३८—४१ तक]

विश्वामित्रप्रियं दान्तं स्वदारनियतव्रतम् ।
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालनतत्परम् ।
सत्यसन्धं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम् ।
सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम् ।।
दशग्रीवहरं रौद्रं केशवं केशिमर्दनम् ।
बलिप्रमथनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम् ।।
नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत्प्रियम् ।
शुद्धं सूक्ष्मं परं शान्तं तारकं ब्रह्मरूपिणम् ।।

(२०६)

जो विश्वामित्र जी को परम प्रिय है, जिनके मन और इन्द्रियाँ सबवश में हैं। जो नियम पूर्वक अपनी ही पत्नी में अनुराग रखने वाले हैं। जो यज्ञ के स्वामी, यज्ञ पुरुष, यज्ञ पालन परायण सत्य प्रतिज्ञ, क्रोध विजयी, शरणागत वत्सल, सर्व क्लेशोपहारी विभीषण को वर देने वाले, दशमुख रावण का संहार करने वाले रौद्र रूप केशिमर्दन केशव वाली को मथ डालने वालो वीर वानर राज सुग्रीव को अभीष्ट राज्य प्रदान करने वाले, नर, वानर, तथा देवताओं से सेवित श्रीहनुमानजो के प्रियतम् शुद्ध एवं सूक्ष्म स्वरूप परम शान्त तथा तारक ब्रह्मरूप हैं। उन भगवान श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

[४२ से ४५ तक]

सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम्।
सर्वकारणकर्त्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥
निरामयं निराभासं निरावाधं निरंजनम्।
नित्यानंदं निराकारमद्वैतं तमसःपरम् ॥
परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्।
मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥

जो सम्पूर्ण भूतों के आत्मा रूप से उनके भीतर स्थित है। सबके सनातन आधार, समस्त कारणों के कर्ता, प्रकृति के परम निदान कारण निरामय आभास शून्य निरावाध निरंजन, नित्यानन्द निराकार, अद्वैत अज्ञानान्धकार से परे परात्पर तत्व रूप तथा सत्यानन्द विज्ञानघन स्वरूप हैं। उन श्रीरघुश्रेष्ठ श्रीराम को शिर नवाकर मैं मन से प्रणाम करता हूँ।

[४६-४७-४८]

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्।
नमामि पुण्डरीकाक्षमभेदं गुरुतत्परम् ॥

जो सूर्य मण्डल के मध्य भाग में उसके आत्मा रूप से विराजमान हैं। अभेद हैं और श्रीगुरु चरणों की सेवा में तत्पर रहते हैं। उन सीता सहित कमल नयन श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

नमोस्तु वासुदेवाय ज्योतिषां पतये नमः ।
नमोस्तु रामदेवाय जगदानंदरूपिणे ॥५०॥

ग्रहों और नक्षत्रों के अधिपति वासुदेव नन्दन श्रीकृष्णचन्द्र को बारम्बार नमस्कार है। जगदानंद स्वरूप श्रीरामदेव को प्रणाम है।

नमो वेदान्तनिष्ठाय योगिने ब्रह्मवादिने ।
मायामयनिकाराय प्रपन्नजनसेविने ॥५१॥

जो वेदान्तनिष्ठ अर्थात् उपनिषदों में ब्रह्म रूप से प्रतिपादित, योगी ब्रह्मवादी, माया मय जगत का बध करने वाले, तथा शरणागत जनों का सेवन अर्थात् उन पर अनुग्रह करने वाले हैं। उन श्रीराम को नमस्कार है। ५१॥

वन्दामहे महेशान् चण्डकोदण्डखण्डनम् ।
जानकीहृदयानंद वर्धनं रघुनंदनम् ॥५२॥

अर्थात् महेश्वर के प्रचण्ड कोदण्ड का खण्डन तथा श्रीजनक नन्दिनी के हार्दिक आनन्द का संवर्धन करने वाले श्रीरघुनन्दन की मैं वन्दना करता हूँ।

उत्फुल्लामलकोमलोत्पलदलश्यामाय रामापते ।
कामाय प्रमदामनोहरगुणग्रामाय रामात्मने ॥५३॥
योगारूढमुनीन्द्रमानससरोहंसाय संसारिणां ।
विध्वंसस्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय तुभ्यं नमः ॥

जो प्रफुल्ल निर्मल एवं कोमल नीलोत्पल दल के समान श्याम हैं। कमनीय कामस्वरूप हैं। जिनका गुण समुदाय प्रमदाजनों के मन को हर लेने वाला है तथा जो योगरूढ़ मुनीश्वरो के मानसरोवर में बिहार करने वाले हंस रूप हैं। उन संसार बन्धन के नाशक उदिप्त तेजस्वी रघुकुल भूषण एवं योगियों के हृदय में रमण करने वाले आप श्रीराम स्वरूप परम पुरुष को नमस्कार है।

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठमादित्यचन्द्रानलसुप्रभावम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं, नमामि रामं तमसः परस्तात् ।।

जो संसार के स्रष्टा वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ सूर्य चन्द्रमा और अग्नि के समान उत्तम प्रभावशाली सर्व स्वरूप सर्वत्र व्यापक और तम से परे हैं। उन भगवान श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ। ५४।

निरंञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं निराश्रयं निष्कमप्रपंचम् ।
नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरंतरं राममहं भजामि ।।५५।।

जो निरंजन, निरुपम निरीह अन्य आश्रय से रहित निष्कलानिवैसव अथवा अखण्ड दृश्य प्रपंच से अतीत, नित्य ध्रुव निर्विषय स्वरूप तथा निरंतर (व्यवधान शून्य) व्यापक हैं। उन श्रीरामचन्द्र जी का मैं भजन करता हूँ। ५५।

भवाब्धि पोतं भरताग्रजंतं भक्ति प्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।
भूतत्रिनाथं भुवनाधिपंतं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ।।५६।।

जो भवसागर से पार होने के लिए जहाज हैं। जिन्हें भक्ति प्रिय है। जो पाँचों भूतों तथा तीनों लोकों के नाथ हैं। संसार रूपी रोग का निवारण करने के लिए जो एकमात्र वैद्य एवं चतुर्दश भुवनों के अधिपति हैं। उन सूर्यवंश प्रदीप भरताग्रज श्रीराम का मैं भजन करता हूँ। ५६ ।।

सर्वाधिपंयं समरांगधीर सत्यं चिदानंदमयस्वरूपम् ।
सत्यं शिवं शान्तिमयं शरण्यं-सनातनं राममहं भजामि ।।

जो सर्वेश्वर समरांगण के धीर वीर, सत्यात्मा चिदानन्द स्वरूप सत्य, शिव एवं शान्तिमय हैं। उन शरणागत वत्सल सनातन श्रीराम का मैं भजन करता हूँ। ५७ ।।

कार्यक्रिया कारणमप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम् ।
कुमारवेद्यं करुणामयंतं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ।।५८।।

जो कार्य जगत् तथा क्रिया (प्रवृत्ति के कारण) प्रमाणों की पहुँच से परे, कवि सर्वज्ञ; पुराण पुरुष, कमल नयन, सनकादि कुमारों के वेद्य तथा कल्प वृक्ष रूप हैं। उन करुणामय श्रीराम का मैं भजन करता हूँ। ५८।

त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं दयानिधिं द्वन्दविनाशहेतुं।
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं सनातनं राममहं भजामि ॥५९॥

त्रिभुवन पति सरसीरूहलोचन-दयानिधान द्वन्दो के विनाश के हेतु-महाबलशालो वेद निधि तथा सनातन देवेश्वर श्रीराम का मैं भजन करता हूँ।५९॥

वेदान्तवेद्यं कविमीशितारमनादिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम्।
अगोचरं निर्मलमेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥६०॥

जो वेदान्त वेद्य, कवि (क्रान्त दर्शी) ईशीता (ऐश्वर्य सम्पन्न) तथा आदि मध्य और अन्त से रहित हैं। उन अचिन्त्य अगोचर निर्मल एक रूप एवं अज्ञानान्धकार से अतीत आदि पुरुष श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।६०॥

अशेषवेदात्मकमादिसंज्ञःनजं हरिं विष्णुमनंतमाद्यम्।
अपारसंवित्सुखमेकरूपं, परात्परं राममहं भजामि ॥६१॥

सम्पूर्ण वेद जिनके स्वरूप हैं। जो सबके आदि कहे जाते हैं, जो अजन्मा, हरि भवताप का हरण करने वाले विष्णु, व्यापक, अनन्त आदि पुरुष अपार विज्ञानानन्द सिंधु तथा एक रूप हैं। उन परात्पर श्रीराम का मैं भजन करता हूँ।६१॥

तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं, स्वतेजसापूरितविश्वमेकम्।
राजाधिराजं रविमण्डलस्थम्, विश्वश्वरं राममहं भजामि ॥६२॥

तत्व स्वरूप पुराण पुरुष अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व को परिपूर्ण करने वाले एक अद्वितीय तथा सूर्य मण्डल में श्री नारायण रूप में विराजमान हैं। उन राजाधिराज विश्वनाथ श्रीराम का मैं भजन करता हूँ।

लोकाभिरामं रघुवंशनाथम्, हरिं चिदानंदमयं मुकुन्दम् ।
अशेषविद्याधिपतिं कवीन्द्रम्, नमामि रामं तमसः परस्तात् ।।६३।।

जो तम से परे, सच्चिदानन्द स्वरूप सम्पूर्ण विद्याओं के अधिपति, कवीन्द्र तथा मुकुन्द हरि रूप हैं । उन लोकाभिराम रघुवंश नाथ श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ ।

योगीन्द्रसंघैश्च सुसेव्यमानम्, नारायणं निर्मलमादिदेवम् ।
नतोस्मि नित्यं जगदेकनाथमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।६४।।

योगीन्द्रों का समुदाय जिनका भली भाँति सदा सेवन करता है तथा मल विक्षेपादि से रहित आदि देव नारायण स्वरूप हैं । उन तमो गुण से अतीत अपनी कान्ति से सूर्य के समान प्रकाशमान तथा जगत् के एक मात्र स्वामी श्रीराम को मैं नित्य प्रति नमस्कार करता हूँ ।

विभूतिदं विश्वसृजं विरामम्, राजेन्द्रमीशं रघुवंशनाथम् ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमूर्तिम्, ज्योतिर्मयं राममहं भजामि ।।६५।।

जो ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, विश्व सृष्टा सबके—विराम (सबके विश्राम स्थान) अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त मूर्ति तथा ज्योतिमय हैं । उन सर्वेश्वर रघुवंशनाथ राजाधिराज श्रीराम का मैं भजन करता हूँ ।

अशेषसंसारविहारहीनमादित्यगं पूर्णसुखाभिरामम् ।
समस्तसाक्षि तमसःपरस्तात् नारायणं विष्णुमहं भजामि ।।६६।।

जो समस्त संसार विहार से रहित सूर्य मण्डल —मध्यवर्ती, परिपूर्ण, आनन्द अभिराम, सबके साक्षी तथा तप से परे हैं । उन सर्व व्यापी नारायण स्वरूप श्रीराम का मैं भजन करता हूँ ।

मुनीन्द्रगुह्यं परिपूर्णकामं, कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ।
परात्परं यत् परमं पवित्रं, नमामि रामं महतो महान्तम् ।।६७।।

जो मुनीन्द्रो के लिए अत्यन्त गोपनीय तत्व परिपूर्ण काम, कलाओं के निधान पाप नाश के हेतु भूत परात्पर—परम पवित्र एवं महान् से भी महान् हैं । उन श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा ।
आदित्यादि ग्रहाश्चैव, त्वमेव रघुनन्दन ।।६८।।

रघुनन्दन आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेन्द्र, देवता तथा सूर्यादि समस्त ग्रह रूप हैं ।।६८।।

तापसाः ऋषयः सिद्धाः साध्याश्च मरुतस्तथा ।
विप्रा वेदास्तथा यज्ञाः पुराणं धर्मसंहिताः ।।६९।।
वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णा धर्मास्तथैव च ।
यक्षराक्षसगन्धर्वा दिक्पाला दिक्गजादयः ।।७०।।

सनकादि मुनि श्रेष्ठात्वगंव रघुकुल पुंगव भगवान दीवाकवंश– नायक आप ही तपस्वी ऋषी, सिद्ध, साध्य मरुत गण, ब्राह्मण, वेद, यज्ञ, पुराण, धर्म संहिता, वर्ण आश्रम धर्म यक्ष, राक्षस गन्धर्व दिग्पाल दिग्गज आदि तथा मुनि श्रेष्ठ सनक सनंदन आदि भी हैं ।

वसवोष्टौ त्रयः कालाः रुद्रा एकादश स्मृताः ।
तारका दश दिग् चैव—त्वमेव रघुनंदन ।।

रघुनन्दन आप ही आठ वसु तीनो काल ग्यारह रुद्र तारा मण्डल तथा दशो दिशाऐं हैं ।

सप्त द्वीपा समुद्राश्च नगा नद्यस्तथा द्रुमाः ।
स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनायक ।।७२।।

रघुकुल नायक आप ही सात द्वीप सात समुद्र पर्वत नदियाँ वृक्ष, तथा स्थावर एवं जंगम भूत है ।

देवतीर्थं मनुष्याणां—दानवानां तथैव च ।
माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुवल्लभ ।।७३।।

रघुकुल वल्लभ आप ही देवताओं तिर्यक योनि के जीवों मनुष्यों तथा दानवों के भी माता-पिता तथा भ्राता हैं ।

सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयम् सर्वमेव हि ।
त्वमक्षरं परं ज्योतिष् त्वमेव पुरुषोत्तम ॥७४॥
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यनन्न किंचन ॥७५॥

पुरुषोत्तम् आप ही सबके परंब्रह्म परमात्मा हैं । सम्पूर्ण जगत आप का ही स्वरूप है । अर्थात् (आपही इसके अभिन्न निमोत्तोपादान कारण है । आप ही अविनाशी परम ज्योति हैं । आप ही तारक ब्रह्म (अर्थात् राम हैं) आपसे भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता ही नहीं हैं ।

शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।
राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७६॥

शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, सनातन परब्रह्म रूप कमल नयन जगदीश्वर श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ ।

व्यास उवाच—

ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच मुनिपुंगवम् ।
तुष्टोऽस्मि मुनिशार्दूल, वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥७७॥

श्री व्यास जी कहते हैं । तदन्तर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान श्रीराम मुनिवर नारद जी से बोले— मुनि श्रेष्ठ मैं तुम्हारे द्वारा किए गये इस स्तवन से संतुष्ट हूँ तुम मुझसे उत्तम वर माँगो ।

नारद उवाच—

यदि तुष्टोसि सर्वज्ञ श्रीराम करुणानिधे ।
त्वन्मूर्तिदर्शनेनैव कृतार्थोऽहं च सर्वदा ॥७८॥

नारद जी ने कहा—करुणा निधान सर्वज्ञ राम यदि आप सन्तुष्ट हैं तो मैं आपके इस कमनीय अभिराम स्वरूप का दर्शन पाकर ही सदा के लिए कृतार्थ हो गया ।

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम ।
अद्य में सफलं जन्म जीवितं सफलं च मे ।।७९।।

पुरुषोत्तम मैं धन्य हूँ कृत कृत्य हूँ पुण्यात्मा हूँ । आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा जीवन भी सफल हो गया ।

अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं तपः ।
अद्य मे सफलं कर्मं त्वत्पदाम्भोजदर्शनात् ।।८०।।

अद्य में सफलं सर्वं त्वन्नामस्मरणं तथा ।
त्वत्पादाम्भोरुहद्वन्द्वसद्भक्ति देहि राघव ।।८१।।

आपके चरणारविंदो के दर्शन से आज मेरा ज्ञान सफल हो गया । आज मेरी तपस्या भी सफल हो गयी । आज मेरा कर्म सफल हुआ, आज मेरा सब कुछ सफल हो गया । मैंने सदा जो आप के नामों का स्मरण किया था । उसका फल भी मुझे प्राप्त हो गया । अब तो मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि आप मुझे युगल चरणारविंदो की भक्ति प्रदान करें ।

ततः परमसंप्रीतः स रामः प्राह नारदम् ।।८१।।

नारद जी की इस वात से, भगवान श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए, और उनसे बोले—

श्रीराम उवाच—

मुनिवर्य महाभाग मुने त्वष्टिं ददामि ते ।
यक्त्वया चेप्सितं सर्वं मनसा तद् भविष्यति ।।८२।।

श्रीराम ने कहा मुनिवर्य महाभाग मुने मैं तुम्हें अभीष्ट वर देता हूँ । तुमने अपने मन में जिस-जिस वस्तु की इच्छा की है वह सब तुम्हें प्राप्त होगी ।

नारद उवाच—

वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्, पादाब्जभक्तिः सततं ममास्तु ।
इदं प्रियं नाथ वरं प्रयाचे, पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ।।८३।।

नारद जी बोले, रघुनाथ मैं दूसरी कोई वस्तु नहीं माँगता। आपके चरणारविंदों की भक्ति ही मुझे सदा प्राप्त हो, नाथ यही मेरा प्रिय वर है। जिसके लिए मैं याचना करता हूँ और बारम्बार आपसे इसी को माँगता हूँ।

व्यास उवाच—

इत्येवमीडतो रामः प्रादात् तस्मै वरान्तरम्।
वीरोरामो महातेजाः सच्चिदानंदविग्रहः ॥८४॥
अद्वैतममलं ज्ञानं स्वनामस्मरणं तथा।
अन्तर्दधौ जगन्नाथः पुरतस्तस्य राघव ॥८५॥

व्यास जी कहते हैं, युधिष्ठिर नारद जी के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान श्रीराम ने उन्हें उनका अभीष्ट वर तो दिया ही, यह दूसरा वर और भी दिया। सच्चिदानन्द विग्रह विराग्य ग्रण्य महातेजस्वी श्रीराम ने नारद जी को निर्मल अद्वैत ज्ञान तथा निरन्तर स्वनाम स्मरण का वर दिया। इसके बाद जगदीश्वर श्रीरघुनाथ जी उनके सामने से अर्न्तरहित हो गये।

इति श्रीरघुनाथस्य स्तवराजमनुत्तमम्।
सर्वसौभाग्यसंपत्तिदायकं मुक्तिदं शुभम् ॥८६॥

यह श्री रघुनाथ जी का परम उत्तम स्तवराज सब प्रकार के सौभाग्य तथा संपत्ति का दाता है, मोक्ष देने वाला तथा मङ्गल मय है।

कथितं ब्रह्मपुत्रेण वेदानां सारमुत्तमम्।
गुह्याद् गुह्यतमं दिव्यं तव स्नेहात् प्रकीर्तितम् ॥८७॥

ब्रह्म पुत्र नारद जी के द्वारा कथित यह उत्तम स्तवराज सम्पूर्ण वेदों का सार तत्व है। गुह्य से भी गुह्यातम् तथा दिव्य है—युधिष्ठिर इसे मैंने तुम्हारे स्नेह वश प्रकट किया है।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः।
ब्रह्महत्यादि पापानि सत् समानि बहूनि च ॥८८॥

फा० ९८

जो श्रद्धापूर्वक तीनों संध्यायों के समय इसका पाठ श्रवण करेगा। उसमें ब्रह्म हत्या आदि पातक तथा उसके समान अन्य बहुत से उपपातक नष्ट हो जायेंगे।

स्वर्णस्तेयं सुरापानं गुरुतल्यगतिस्तथा।
गोवधाद्युपपापानि अनृतात् सम्भवानि च॥
सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः॥

सुर्वण की चोरी मदिरा पान, गुरु पत्नी गमन ब्रह्म हत्या तथा इनके संसर्ग से होने वाले जो महापातक है और गो वध आदि जो उपपातक तथा असत्य भाषण से होने वाले जो पाप हैं, वे सब पहले के लाखों कल्पों में क्यों न उपार्जित किए गये हों उन सब पापों से इस स्तोत्र का पाठक अथवा श्रोता मुक्त हो जाता है।

मानसं वचिकं पापं-कर्मणा समुपार्जितम्।
श्रीराम स्मरणेनैव तत्क्षणान्नस्यति ध्रुवम्।
इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते॥

मन वाणी तथा क्रिया द्वारा उपार्जित समस्त पाप श्रीराम के स्मरण मात्र से ही तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यह ध्रुव सत्य है, यह सत्य है, यह सत्य है। इस विषय में यह सत्य ही कहा जाता है।

रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात् किंचिन्न विद्यते।
तस्माद् रामस्वरूपं हि सत्यं, सत्यमिदं जगत्॥९२॥

श्रीराम सत्य ब्रह्मस्वरूप हैं। श्रीराम से भिन्न कुछ नहीं हैं। अतएव श्रीराम स्वरूप यह जगत सत्य है, सत्य है।

श्रीरामचन्द्र रघुपुंगव राजवर्य। राजेन्द्र रामरघुनायक राघवेश॥
राजाधिराज रघुनंदन रामचन्द्र। दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोस्मि॥९३॥

रघुकुल पुंगव राजवर्य, राजेन्द्र, श्रीरामचन्द्र रघुनायक राघवेन्द्र श्रीराम राजाधिराज रघुनंदन रामचन्द्र मैं आपका दास आज आपकी शरण में आया हूँ।

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले, हैमे महामण्डपे ।
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये, वीरासने सुस्थितम् ।।
अग्रे वा चलपति प्रभंजनसुते, तत्त्वं मुनिभ्यः परम् ।।
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतम्, रामं भजे श्यामलम् ।।९४।।

कल्प बृक्ष के नीचे सुवर्णमय महामण्डप में पुष्पक विमान के मध्य भाग में मणिमय सिंहासन पर भगवान श्रीराम वीरासन में सुख पूर्वक विराजमान हैं, उनके वाम पार्श्वं में विदेह नन्दिनो श्रीसीता जी भी शोभायमान हैं। वायु पुत्र श्री हनुमान जी सामने खड़े हो, भगवान से कुछ उपदेश के लिए प्रार्थना करते हैं और भरतादि वन्धुओं से घिरे हुए श्याम विग्रह श्रीराम मुनियों को परम तत्व का उपदेश देते हैं। उसकी व्याख्या करते हैं। इस झाँकी में श्रीराम का मैं भजन (ध्यान) करता हूँ।

रामं रत्नकिरीटकुण्डलंयुतं, केयूरहारान्वितम् ।।
सीताऽलंकृतवामभागममलम्, सिंहासनस्थं विभुम् ।।
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः, संसेव्यमानं सदा ।।
विश्वामित्र पराशरादिमुनिभिः, संस्तूयमानं प्रभुम् ।।९५।।

भगवती श्रीसीता श्रीरामचन्द्र जी के वाम भाग को सुशोभित कर रही हैं। श्रीराम रत्न मय किरीट और कुण्डलों से अलंकृत हैं। केयूर और हारो से विभूषित हैं और उनका स्वरूप अत्यन्त निर्मल है। वे सर्वं व्यापी भगवान दिव्य सिंहासन पर विराज रहे हैं। सुग्रीवादि कपीश्वर तथा देवगण उनकी सेवा में संलग्न हैं तथा विश्वामित्र एवं पराशर आदि नित्य निरंतर उन प्रभू की स्तुति करते हैं। ऐसे भगवान श्री सीतापति का मैं चिन्तन करता हूँ।

सकलगुणनिधानं योगिभिः स्तूयमानं ।
भुजविजितसमानं राक्षसेन्द्रादिमानम् ।।
महितनृपमयानं-सीतया शोभमानम् ।
स्मर हृदय विमानं, ब्रह्म रामाभिधानम् ।।९६।।

जो सम्पूर्ण गुणों के निधान हैं। योगी जन जिनकी स्तुति करते हैं। जिन्होंने अपनी भुजाओं द्वारा बड़े-बड़े अभिमानियों को भी जीत लिया है जो राक्षस राज विभीषण आदि के द्वारा सम्मानित हैं, जिन्होंने कुबेर के वाहन पुष्पक विमान का समादर किया है जो श्रीसीता जी के द्वारा सुशोभित है तथा भक्तों का हृदय जिनके लिए विमान स्वरूप है। उन श्रीराम नामक परब्रह्म का स्मरण करो।

रघुवर तव मूर्तिमामके मानसाब्जे,
नरकगतिहरं ते नामधेयं मुखे मे ॥
अनिशमतुलभक्त्या मस्तकं त्वत् पदाब्जे।
भवजलनिधिमग्नं, रक्ष मामार्तबन्धो ॥९७॥

अति वन्धो रघुश्रेष्ठ आपकी मनोहर मूर्ति मेरे मानस कमल में विराजमान हो, नरक गति का निवारण करने वाला, आपका मधुर नाम मेरे मुख में सुशोभित हो। मेरा मस्तक निरंतर अनुपम भक्ति भाव से आपके चरण कमलों में प्रणत हो, प्रभो मैं भवसागर में डूबा हुआ हूँ और आप मेरी रक्षा कीजिए।

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम्।
कौशल्याभक्ति सम्भूतं जानकी कण्ठभूषणम् ॥९८॥

चित्रकूट पति विष्णु स्वरूप श्रीराम एक दिव्य रत्न हैं जो कौशिल्या की भक्ति से प्रकट हो श्री जनक नंदिनी सीता के कंठ हार बने हुए हैं। मैं जानकी वन्दना करता हूँ।

इति श्री सनत् कुमार संहितायां नारदोक्तं श्री रामचन्द्र स्तवराज स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

इस प्रकार श्री सनत् कुमार संहिता में उन नारद जी द्वारा कथित श्री रामचन्द्रस्तवराजनामक स्तोत्र पूरा हुआ।

आप सब सज्जनों को मैं श्री रघुकुल भूषण श्रीसीतापति प्रभु श्रीराम का गुण सुना रहा हूँ। इसमें उत्तरोत्तर वेदान्तः कारण भी पवित्र से पवित्रतम् होता जा रहा है। हृदय में प्रभु भक्ति की गंगा प्रवाहित सी प्रतीति होती हैं। आप सब शीलवान उदार समझकर श्रोता मण्डली को पुलकित देखकर मेरा उत्साह अब श्री रक्षा स्तोत्र को भी कहने को हो रहा है। आप सुनो। श्रीराम रक्षा स्तोत्र अत्यन्त लाभ प्रद है। अपनी श्रद्धा तथा भाव के अनुसार लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकार के लाभ इससे प्राप्त होते हैं। इस स्तोत्र को सिद्ध करके पाठ करने से विशेष फल होता है। विधि भी इस प्रकार हैं।

श्रीहरिः

श्रीरामरक्षास्तोत्र

विनियोग

श्रीगणेशाय नमः—अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य बुधकौशिक ऋषिः श्रीसीतारामचन्द्रो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, सीता शक्तिः, श्रीमद्धनुमान्, कीलकम् श्रीरामचन्द्र प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं-धृतशरधनुषंबद्ध पद्मासनस्थम् ।
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।।
वामाङ्कारूढ़ सीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभम् ।
नानालंकारदीप्तं दधतगुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ।।

जो धनुष वाण धारण किए हुए हैं। वद्ध पद्मासन से विराजमान हैं, पीताम्बर पहिने हुए हैं। जिनके प्रसन्न नयन नूतन कमल दल से स्पर्धा करते तथा वाम भाग में विराजमान श्रीसीता जी के मुख कमल खिले हुए हैं। उन आजानु बाहु, मेध श्याम, नाना प्रकार के अलंकारों से विभूषित तथा विशाल जटा जूटधारी श्रीरामचन्द्र जी का ध्यान करें।

स्तोत्रम्

चारतं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ।।१।।

श्री रघुनाथ जी का चरित्र सौ करोड़ श्लोकों में वद्ध है और उसका एक- एक अक्षर भी मनुष्यों के महान् पापों को नष्ट करने वाला है।

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् ।
जानकीलक्ष्मणोपेतं, जटामुकुट-मण्डितम् ।।२।।
सासितूणधनुर्वाणपाणिं -नक्तंचरान्तकम् ।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ।।३।।

रामरक्षां पठेत् प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ।।४।।

जो नील कमल दल के समान श्याम वर्ण कमल नयन जटाओं के मुकुट से सुशोभित हाँथों में खड्ग, तूणीर, धनुष और वाण धारण करने वाले राक्षसों के संहारकारी तथा संसार की लिएरक्षा के लिए अपनी लीला से ही अवतीर्ण हुए हैं। उन अजन्मा और सर्व व्यापक भगवान श्रीराम का श्री जानकी और श्री लक्ष्मण जी के सहित स्मरण कर प्राज्ञ पुरुष इस सर्व काम प्रदा और पाप विनाशिनी राम रक्षा स्तोत्र का पाठ करें। मेरे सिर की राघव, और ललाट की दशरथात्मज रक्षा करें।

कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ।।५।।

कौशिल्या नन्दन नेत्रों की रक्षा करें, विश्वामित्र प्रिय कानों को सुरक्षित रक्खें तथा यज्ञ रक्षक घ्राण की और सौमित्र वत्सल मुख की रक्षा करें।

जिह्वांविद्या निधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
स्कन्धौदिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ।।६।।

मेरी जिह्वा की विद्या निधि, कण्ठ की भरत वन्दित, कंधों की दिव्यायुध और भुजाओं की भग्नेश कार्मुक (महादेव का धनुष तोड़ने वाले) रक्षा करें।

करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ।।७।।

हाँथों की सीतापति, हृदय की जामदग्न्यजित् (परशुराम जी को जीतने वाले मध्य भाग की खरध्वंसी (खर नाम के राक्षस का नाश करने वाले) और नाभि की जाम्ववदाश्रय (जाम्बवान के आश्रय स्वरूप) रक्षा करें।

सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ।।८।।

कमर की सुग्रीव वेश (सुग्रीव के स्वामी) सक्थिनियों की हनुमत्प्रभु और ऊरुओं की राक्षस कुल विनाशक रघुश्रेष्ठ रक्षा करें।

जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ॥९॥

जानुओं-घुटनों की सेतु कृत, जङ्घाओं की दशमुखान्तक अर्थात् रावण को मारने वाले, चरणों की विभीषण श्री अर्थात् विभीषण को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले और सम्पूर्ण शरीर की श्रीराम रक्षा करें।

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥१०॥

जो पुण्यवान् पुरुष श्रीराम बल से सम्पन्न इस रक्षा का पाठ करता है। वह दीर्घायु, सुखी पुत्र-वान् विजयी और विनय सम्पन्न हो जाता है।

पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥११॥

जो जीव पाताल, पृथ्वी अथवा आकाश में विचरते हैं और जो छद्मवेश से घूमते रहते हैं। वे श्रीराम नामों से सुरक्षित पुरुष को आँख उठाकर देख भी नहीं सकते।

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वास्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥१२॥

श्रीराम 'रामभद्र'-रामचन्द्र इन नामों का स्मरण करने में मनुष्य पापों से लिप्त नहीं होता तथा भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है।

जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१३॥

जो पुरुष जगत् को विजय करने वाले एक मात्र मन्त्र श्रीरामनाम से सुरक्षित इस स्तोत्र को कण्ठ में धारण करता है! (इसे कण्ठस्थ कर लेता है) सम्पूर्ण सिद्धियाँ उसके हस्तगत हो जाती हैं।

बज्रपञ्जरनामेदं यो राम कवचंस्मरेत् ।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१४॥

जो मनष्य वज्र पंञ्जर नामक इस राम कवच का स्मरण करता है। उसकी आज्ञा का कहीं उल्लंघन नहीं होता और उसे सर्वत्र जय मंगल की प्राप्ति होती है।

आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः ।
तथा लिखित वान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥१५॥

श्री शंकर जी रात्रि के समय स्वप्न में इस राम रक्षा का जिस प्रकार आदेश दिया था। उसी प्रकार प्रातःकाल जगने पर बुध कौशिक ने इसे लिख लिया।

आरामः कल्पबृक्षाणां विरामः सकलापदाम् ।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः ॥१६॥

जो मानव कल्प बृक्षों के वगीचे हैं तथा समस्त आपत्तियों के अन्त करने वाले हैं जो तीनों लोको में परम् सुन्दर हैं, वे श्रीमान् राम हमारे प्रभु हैं।

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महावलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१७॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ॥
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥१९॥

जो तरुण अवस्था वाले, रूपवान्, सुकुमार, महावली कमल के समान विशाल नेत्रों वाले चीर वस्त्र और कृष्ण मृगचर्मधारी, फल मूल का आहार करने वाले संयमी तपस्वी, ब्रह्मचारी, सम्पूर्ण जीवों को शरण देने वाले समस्त धनुर्धारियों में श्रेष्ठ और राक्षस कुल का नाश करने वाले हैं। वे रघुश्रेष्ठ दशरथ कुमार श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें।

आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिशङ्गसङ्गिनौ ।।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ।।२०।।

जिन्होंने डोरी लगा हुआ धनुष ले रक्खा है, जो वाण पर हांथ फिरा रहे हैं ;तथा अक्षय वाणों से युक्त तूणीर लिए हुए हैं। वे श्रीराम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करने के लिए मार्ग में सदा ही मेरे आगे चलें—

संनद्धः कवची खड्गी चापवाणधरो युवा'।
गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः ।।२१।।

सर्वदा उद्यत, कवचधारी, हाँथ में खड्ग लिए धनुष वाण धारण किए तथा युवा अवस्था वाले भगवान श्रीराम, लक्ष्मण जी सहित आगे-आगे चलकर हमारी तथा हमारे मनोरथों की रक्षा करें।

रामो दाशरथिः शूरो.लक्ष्मणानुचरो वलो।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः ।।२०।।
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः।
जानकीबल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ।।२१।।
इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः ।।२४।।

भगवान् का कथन है कि राम, दाशरथी, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ परम पुरुष पूण कौशिल्ये, रघूत्तम, वेदान्त वेद्य, यज्ञेश, पुराण पुरुषोत्तम, जानकी वल्लभ श्रीमान् और अप्रमेय पराक्रम इन नामों का नित्य प्रति श्रद्धा पूर्वक जप करने से मेरा भक्त अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फल प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्नं ते संसारिणो नराः ।।२५।।

जो लोग दुर्वादल के समान श्याम वर्ण कमल नयन पीताम्बरधारी भगवान श्रीराम के इन दिव्य नामों से स्तवन करते हैं, वे संसार चक्र में नहीं पड़ते।

फा० २६

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं ।
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।।
राजेन्द्रं सत्यसंधं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं ।
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुल तिलकं राघवं रावणारिम् ।।२६।।

लक्ष्मण जी के पूर्वज रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीसीता जी के स्वामी अति सुन्दर काकुत्स्थ कुलनन्दन, करुणा सागर, गुणनिधान ब्राह्मण भक्त परम धार्मिक, राज राजेश्वर, सत्य प्रतिज्ञ दशरथ पुत्र श्याम और शान्ति मूर्ति, सम्पूर्ण लोको में सुन्दर, रघुकुल तिलक, राघव और रावणारि, भगवान राम की मैं वन्दना करता हूँ।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।।२७।।

श्रीराम श्रीराम भद्र श्रीरामचन्द्र विधातृ स्वरूप रघुनाथ प्रभु श्रीसीता पति को नमस्कार है।

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम, श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रण कर्कश राम राम, श्रीराम राम शरणं भव राम राम ।।२८।।

हे रघुनन्दन—श्रीराम, हे भरताग्रज भगवान राम, हे रणकर्कश प्रभु श्रीराम आप मेरे आश्रय होइये।

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि, श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि, श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ।।२९।।

मैं श्रीरामचन्द्र जी के चरणों का मन से स्मरण करता हूँ। श्रीरामचन्द्र जी के चरणों का वाणी से कीर्तन करता हूँ। श्रीरामचन्द्र जी के चरणों को सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ तथा श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की शरण लेता हूँ।२९।।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ।।३०।।

श्रीराम मेरी माता हैं, श्रीराम ही मेरे पिता हैं, श्रीराम स्वामी हैं और श्रीराम ही मेरे सखा हैं, दयामय श्रीरामचन्द्र मेरे सर्वस्व हैं। उनके सिवा और किसी को मैं नहीं जानता, बिल्कुल ही नहीं जानता।

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३१॥

जिनकी दायी ओर श्री लक्ष्मण जी, वाई ओर श्रीजानकी जी और सामने श्रीहनुमान जी विराजमान हैं। उन रघुनाथ जी की मैं—वन्दना करता हूँ।

लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं, राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरंतं, श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥३२॥

जो सम्पूर्ण लोकों में सुन्दर, रण क्रीड़ा में धीर, कमल नयन, रघुबंश नायक, करुणा की मूर्ति करुणा की खान हैं उन श्रीराम जी की मैं शरण लेता हूँ।३२॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३३॥

जिनकी मन के समान गति और वायु के समान वेग है, जो परम जितेन्द्रिय और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं। उन श्री पवननन्दन वानराग्रगण्य श्रीराम दूत की मैं शरण लेता हूँ।

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे बाल्मीकिकोकिलम् ॥३४॥

कवितामयी डाली पर बैठकर मधुर अक्षरों वाले, श्रीराम राम इस मधुर नाम की कूक लगाते हुए बाल्मीकि रूप कोकिल की मैं बन्दना करता हूँ।

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥३५॥

आपत्तियों को हरने वाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाले लोकाभिराम भगवान श्रीराम को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ।३५।

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम् ।।३६।।

श्री राम राम इस प्रकार घोष करना सम्पूर्ण संसार बीजों को भून डालने वाला समस्त सुख सम्पत्ति की प्राप्ति कराने वाला तथा यमदूतों को भयभीत करने वाला है ।

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ।।३७।।

राजाओं में श्रेष्ठ श्रीराम जी सदैव विजयी होते हैं । मैं लक्ष्मी पति भगवान श्रीराम का भजन करता हूँ । जिन श्रीरामचन्द्र जी ने सम्पूर्ण राक्षस सेना का विध्वंस कर दिया था । मैं उनको प्रणाम करता हूँ । श्रीराम से बड़ा कोई आश्रय नहीं है । मैं उन श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ । मेरा चित्त सदा श्रीराम में ही लीन रहे, हे श्रीराम आप मेरा उद्धार कीजिए ।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ।।३८।।

(श्री महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं) हे सुमुखि ! श्रीराम नाम श्रीविष्णु सहस्र नाम के तुल्य हैं । मैं सर्वदा श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम इस प्रकार मनोरम नाम में ही रमण करता हूँ ।

इति बुध—कौशिकमुनिविरचितं श्रीरामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार श्रीबुध कौशिक मुनि के द्वारा विरचित श्रीराम रक्षा स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ । आप सब श्रोताओं के मङ्गल करने के लिए तथा अपनी वाणी को परम् पवित्र करने के लिए श्री कमल नयन श्रीरघुकुल भूषण राजाधिराजा श्रीरामचन्द्र जी– महाराज का मङ्गल मय चरित्र सुनाया है ।

आप सब धीर मति श्रोता उदारता पूर्वक तथा परम् गंभीरता से इस दिव्य प्रवचन को सुना है तो सज्जनों यह चरित्र अपार है। जितना भो सुनायेंगे वह कम ही है। परन्तु मेरा मन अभी सन्तुष्ट नहीं हुआ है। क्योंकि बिना भगवती श्रोसीता जी महारानो का निर्मल चरित्र सुनाये. यह प्रवचन अधूरा ही रह जायेगा। अतः अब आप सब गंभोरता पूर्वक श्री आदि शक्ति भगवतो विदेहनन्दिनी श्री सीता भगवती का श्री गंगा जी से भी कोटि-कोटि गुणित निर्मल चरित्र सुनिये। सावधान हो जाइए।

श्रीहरिः

भगवती श्रीसीताजी

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं-यद्भावसाधनम् ।

तद् ब्रह्म सत्ता सामान्यं, सीता तत्त्वमुपास्महे ।।

इच्छा, ज्ञान, क्रिया इस शक्ति के स्वरूप ज्ञान से जो भाव विमल बुद्धि दर्पण में प्रति फलित होता है, वह ब्रह्म सत्ता सामान्य वह अखण्ड सच्चिदानन्द मय ब्रह्मभाव ही श्री सीता तत्व है।

मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता ।

प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सीता प्रकृतिरुच्यते ।।

(सीतोपनिषद्)

श्रीसीता देवी को मूल प्रकृति व प्रणव स्वरुपिणी कहने से ही यह सूचित होता है कि श्रीसीतादेवी सर्व वेदमयी हैं, इच्छा क्रिया तथा ज्ञान इस शक्ति त्रय का तत्व ज्ञान ही श्रीसीता तत्व का प्रकाशक है। भगवती ही भिन्न-भिन्न रूपों में भासती हैं।

कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा ।

देवत्वे देवदेहेयं, मनुष्यत्वे च मानुषी ।।

विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनूम् ।।

(स्कन्द-ब्रह्म सेतु महात्म २२-१६-१७)

लीला मनुष्य होकर भगवान श्रीराम ने ही श्रीसीता तत्व को पूर्ण प्रकाशित किया है। वे भगवती श्रीसीता जी कमला हैं। ये जगन्माता हैं। इन्होंने लीला से मनुष्य मूर्ति धारण की है, ये देवत्व में देव देही (देव शरीरणी) हैं और मनुषस्यत्व में मानुषी हैं। ये श्री विष्णु देह के अनुरूप अपनी देह धारण करती हैं।

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम ।।

(सीतोपनिषद-४)

परमात्मा की शक्ति है इसीलिए सर्वदा ये उनके सानिध्य में रहती हैं। आनन्दमय के समीप उनके साथ नियुक्त होकर विद्यमान हैं। अतः ये भी आनन्दमयी ही होंगी। इसमें संदेह ही क्या है। आनन्दमय के साथ रहकर फिर ये ही जगत् को आनन्द देती हैं। ये ही जगन्माता हैं।

सकलकुशलदात्रीं, भक्तिमुक्ति पदात्रीं ।
त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधीनाशयित्रीम् ।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्पप्रहत्रीं ।।

मैं उन भगवती श्री सीता जी की स्तुति करता हूँ, जो सर्व मंगलदायिनी हैं। यहाँ तक कि भक्ति और मुक्ति का भी दान करती है जो त्रिभुवन की जननी हैं तथा दुर्बुद्धि का नाश करने वाली है जो राजा जनक की यज्ञ भूमि से प्रकट हुयी थी तथा जो अभिमानियों के गर्व को चूर्ण-विचूर्ण कर देने वाली हैं। ब्रह्मा विष्णु, महेश की भी जननी हैं एवं श्रेष्ठ भक्तों का पोषण करने वाली हैं। इतना ही नहीं—

निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहादिसर्वशक्तिसमर्थ्यात्साच्छक्तिरिति जायते ।

(श्रीसीतोपनिषद)

जिनके नेत्र के निमेष, उन्मेष मात्र से ही संसार की सृष्टिस्थिति, संहारादि क्रियायें होती हैं। वही श्रीसीता जी हैं। तिरोधान अनुग्रहादि सामर्थ्य से सम्पन्न होने के कारण श्री जानकी जी साक्षात् आद्या परात्परा शक्ति कहलाती हैं। पुनः—

भूः भुवः स्वः सप्तद्वीपावसुमती त्रयो लोका अन्तरिक्षं सर्वंत्वयि निवसन्ति । आमोदः प्रमोदो विमोदः संमोदः सर्वस्त्वं संघस्ते । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्याप्रदात्री-धात्री, त्वां सर्वे वयं प्रणमामहे प्रणमामहे ।

(श्रीमैथिलीमोहोपनिषद्)

श्रीजनक राज तनये पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्ग ये तीनों लोक सप्त द्वीपवती वसुन्धरा तथा आकाश ये सब आप में प्रतिष्ठित हैं।

आमोद, प्रमोद, विमोद, सम्मोद इन सबको आप धारण करती हैं। अंजनीनन्दन पवन पुत्र को आपने ही ब्रह्म विद्या का सदुपदेश दिया था। हे जननी हम सब महर्षिंगण आपके चरणों में बारंबार नमस्कार करते हैं। पुनः—

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा,
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलासिस।
(ऋा० वेद ४-५७-६)

हे असुरों का नाश करने वालो श्रीसीते हम सब आपके चरणों की वन्दना करते हैं, आप हमारा कल्याण करें।

अब आप अथर्ववेद परिशिष्ट की स्तुति सुनिए।

जनकस्य राज्ञः सद्मानि सीतोत्पन्ना सा सर्वंपराऽऽनंदमूर्तिः गायन्ति। मुनयोऽपि देवाश्च। कार्याकारणभ्यामेव परा तथैव कार्यकारणार्थें शक्तिर्यस्याः विधात्री श्रीगौरीणां स एव कर्त्री रामानंदस्वरूपिणी सैव जनकस्य योगफलमिवभाति।

महाराज जनक के राजमहल में जो सीता जी प्रकट हुयी हैं वे सर्व परा आनन्द मूर्ति हैं। मुनि गण और देवगण भी उनका गान करते हैं। वे कार्य कारण से परे और कार्य कारण के निमित्त एवं शक्ति सम्पन्ना हैं। ब्रह्माणी लक्ष्मी और गौरी आदि अनन्त शक्तियों की उत्पादिक हैं। वे श्रीराम के आनन्द की मूर्ति हैं। वे ही श्री जनक जी के योगफल के समान परम शोभा पाती है। सज्जनों इस प्रकार से अनन्त श्रुतियाँ भगवती श्रीसीता जी के गुणानवाद की महिमा गाती हैं।

बाल्मीकि संहिता में सभी श्रुतियों की एक मात्र माता श्रीजानकी महारानी को ही बताया है। कहते हैं कि एक बार सभी श्रुतियों को प्रगाढ़ जिज्ञासा हुयी कि आखिर हमारे माता-पिता कौन हैं। इसे जानने के लिए बहुत प्रयास भी किया पर पता नहीं लग सका। हार कर सभी श्रुतियाँ श्री ब्रह्मा जी के पास जाकर नम्र निवेदन किया कि हे धाता-विधाता आप हमें यह बताइये कि हमारे जननी जनक कौन हैं।

अस्माकं जननी देव कः पितेति निबोधय।

इसके उत्तर में श्री ब्रह्मा जी महाराज बोले—

तामेव जानकीं विद्धि जननीमात्मनः पराम् ।
श्रीरामं पितरं विद्धि, सत्यमेतद् वचो मम ।।

उन्हीं श्री.जानकी जी को तुम अपनी-जननी समझो और राम जी को अपना पिता समझो । यह मैं सत्य-सय वचन कहता हूँ। इतना ही नहीं—

नित्यां निरञ्जनां शुद्धां, रामाभिन्नां-महेश्वरीं ।।
मातरं मैथिलीं वंदे, गुणग्रामा-रमारमाम् ।।
आद्यां शक्तिं महादेवीं; श्रीसीतां जनकात्मजाम् ।।

नित्या परम निर्मला, परम विशुद्धा गुण-आगरी श्री की भी परम श्री आद्या शक्ति महेश्वरी श्री राम जी से, अभिन्ना श्री जनकात्मजा मैथिली माता श्री सीता जी महरानी की मैं वन्दना करता हूँ। श्री महादेव जी महाराज की भी वचन है।

सीतायाश्च परा देव्या, लीलामात्रमिदं जगत् ।

यह परमाश्चर्यों से परिपूर्ण जगत् परात्परा देवी श्री सीता जी महारानी का लीला मात्र ही है। भगवती श्रीसीता ही सम्पूर्णं सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय की आदि श्रोत है। सम्पूर्ण सचराचर सृष्टि में ऐसा निर्मल चरित्र न देखा गया है, न सुना गया है। यथा—

जित सुरसरि कीरति सरि तोरी ।
गवन कीन्ह विधि अण्ड करोरी ।।

भगवती पतित पावनो पाप तारिणी पुण्य कारिणी, मंदाकिनी श्रीगंगा जी से भी कोटि-कोटि गुणित पवित्र पूत शुचि चरित्र भगवती श्रीसीता महारानी जी का है।

जो जग कहिय तीय सम सीया ।
तौ अस जुवति कहाँ कमनीया ।।
गिरा मुखर तन अरध भवानी ।
रति अति दुखित अतनु पति जानी ।।
विष वारूनी बन्धु प्रिय जेही ।
कहिय रमा सम किमि वैदेही ।।

अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि में कौन सी ऐसी युवती स्त्री है जो कि सीता जी महारानी की तुलना कर सकती है । यदि कहो कि भगवती वीणा पाणि हंस वाली भगवती सरस्वती के तुल्य श्रीसीता जी हैं तो गोस्वामी जी कहते हैं कि भाई श्रीसरस्वती जी हैं जो अतिसुन्दर गुणवती, रूपवती, परन्तु उनमें एक दोष है कि वे बोलती बहुत अधिक हैं । यानी मुखरा है, स्त्री जाति का यह अति भयंकर दोष है । अगर कहो कि श्रीसीता भगवती गौरी के तुल्य शोभा धाम कमनीय निपुणा हैं । तो कहते हैं कि भगवती गौरी हैं, तो बहुत सुन्दर परन्तु उनमें दोष यह है कि उनका अर्पात अंग अर्ध नारी नारीश्वर महादेवजी शोभायमान हैं । आधे में गौरी तथा आधे में श्रीसदा शिवजी महाराज हैं । यदि कहा जाय कि श्रीसीता भगवती कामदेव की पत्नी रति के समान शोभायमान है तो कहते हैं कि बात तो ठीक है । रति अत्यन्त सुन्दरी हैं । परन्तु दोष यह है कि उनका पति अनङ्ग हैं, अङ्ग हीन हैं । इसलिए वे सदा दुःखित रहती हैं । फिर कहा जाय कि भगवती विदेह नन्दिनी श्रीजानकी भगवती लक्ष्मी के समान सुन्दर है, तो कहते हैं कि भाई यह उपमा तो बहुत ठीक है । परन्तु लक्ष्मी जी में भी एक बड़ा भयंकर दोष है । उनके एक भाई हैं, हलाहल जहर तथा दूसरी बहन है, वारुणी (सुरा शराब) अर्थात् जिस प्रकार बहिन के घर भाई का आना जाना लगा रहता है उसी प्रकार श्रीलक्ष्मी जहाँ भी वास करती हैं । वहाँ पर ये दोनों भाई बहन दरवाजे या खिड़की से किसी भी प्रकार घुस पैठ जारी रखते हैं । लक्ष्मी जी की जगह में जहर और शराब जरूर पहुँच जायेगें । तो सज्जनों ! इस प्रकार संसार की कौन सी सुन्दरी अनुपम लावण्यमयी सार सर्वस्व वाली स्त्री हैं जो भगवती जग जननी जगदम्बा अम्बा, पराम्बा श्रीजानकी जी महारानी की समता कर सके । कहते हैं कि जिस स्त्री का हाँथ बहुत चले अर्थात् काम तो बहुत करे परन्तु जवान न सुनायी पड़े, ऐसी स्त्री देवता को प्रिय होती हैं ।

मालूम पड़े कि बहू गूंगी बहरी है, करे सब काम पर सहै भी सबकी, ऐसी स्त्री रत्न दुर्लभ है। और जिस स्त्री का हाँथ भी चले और जबान भी साथ-साथ मशीनगन की भाँति तड़ातड़ चटाचट बोलती, कड़कड़ाती दनदनाती रहे वह स्त्री किसी-किसी मनुष्य को प्रिय होती है। कई लोग कहते हैं साहब मेरी दादी पूरी मेजर जनरल है। पूरे घर भर की चाभियों का गुच्छा अपने ही पास रखती है। रात में जागने पर पहले वे चाँभियाँ ही गिनती हैं अर्थात् नर को किसी-किसी को प्रिय होती है और सज्जनों जिस स्त्री का हाँथ तो काम करे, चाहे न करे परन्तु जबान चौबीसों घंटे बारहों महीने सदा स्टेनगन की भाँति लोड रहती है। ऐसी स्त्री से प्रेत भी बहुत डरता है। सदा भय खाता रहता है। ऐसी स्त्री भाग्य से कहीं घर में आ जाए तो पहला लाभ यह होता है कि उस घर में कभी भी प्रेत बाधा नहीं होती है प्रेत बिचारा सोचता है कि हमसे भी सिकन्दर जबरजंग लोग इस घर में रहते हैं। मेरी दाल भला क्या गलेगी, बिचारा उस घर से सदा ही दूर-दूर रहता है। इसीलिए गोस्वामी जी महाराज ने "गिरा मुखर तन अरध भवानी" कहा है, तो भाई भगवती श्रीसीताजी की उपमा फिर कैसी खोजी जाय।—

सिय बरनी कवि उपमा तेई।
कुकवि कहाय अजस को लेई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी।
केहि पट तरौं विदेह कुमारी॥
जौ छवि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूप मय कच्छप सोई॥
सोभा रज मंदर सिंगारू।
मथइ पानि पंकज निज मारू॥

यह विधि उपजै लक्ष्मि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सनेह सकोच बस, कहिय सींय समतूल॥

कोई कवि यदि श्रीसीता महारानी जी का चरित्र यदि पूर्वा ग्रह बस वर्णन करना भी चाहेगा तो अपजस का भागीदार होगा क्योंकि लौकिक उपमा कोई है हो नहीं, सभी उपमा उपमानों विशेषणों सर्व नामों को कवियों ने पहिले ही जूठा कर डाला है। वे भला श्रीभगवती की उपमा को कैसे प्राप्त कर सकती हैं। हाँ यदि एसा बन सके तो किञ्चित उपमा प्राप्त हो सकती है। सुन्दरता छवि रूपी अमृत का छीर सागर हो परम रूप में शोभा यदा कान्तिमय रूप ही कच्छप बने, शोभा रूपी रस्सी अर्थात् वासुकी नाँग बने साक्षात श्रृंगार हीं मंदराचल पर्वत बने और छवि रूपी क्षीर सागर में रूप मय कच्छप पर शोभा रूपी रज्जु से श्रृंगार रूपी मंदराचल को स्वयं अति शोभाधाम कामदेव ही अपने हाथों से मथे। फिर मथने के बाद जो यह नई लक्ष्मी जायमान उदीयमान होगी वे सुन्दरता तथा सम्पूर्ण सुखों का मूल ही होगा। उतनां अनुपम अलौकिक अनिर्वचनीय कमनीय रमणीय जो शोभा होगी उसमें भी संकोच करते-करते ही स्नेहवश भगवती की किंचित उपमा दी जा सकती है। अतः सज्जनों भगवती श्रीसीता हीं सम्पूर्ण जड़-जंगम स्थावर प्रपंच की शोभा एवं सुख की खानि हैं। जो श्रीरघुनाथ जी से सदा ही अभिन्न है। सदा हो एक हैं।

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदऊ सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥

हाँ तो सज्जनों सारी शक्तियों की आदि शक्ति महाशक्ति भगवती श्री वैदेही श्री सीता जी हैं।

उपजहि जासु अंस गुन खानी।
अगनित उमा रमा ब्रह्मानी ॥

जिन भगवती वैदेही के एक अंश मात्र से ही अगणित शक्ति सम्पन्न, उमा, रमा ब्रह्माणी जायमान होती है। भला उन महामहिमामयी आनंदमयी कल्याणमयी भुक्ति-मुक्ति दात्री अनंत गुण गण निलया पराम्बा भगवती के अनन्त गुणों का वर्णन मैं अल्पमति भला किस प्रकार से कर सकता हूँ। फिर भी वे हमारी माता हैं। माता के सामने बालक तोतरी बोली में बहुत कुछ कह जाता है और उदार मति कल्याणी जननी सब स्नेह से सुनकर अति प्रसन्न होतां हैं।

जो बालक कह तोतरि बाता।
सुनहि मुदित मन पितु अरु माता ॥

इसी प्रकार उन्हीं की कृपा से एवं अपने श्रीगुरु चरणों की कृपा से ही इस प्रवचनरत्नाकर में चुन-चुनकर मोतियाँ निकाली जा रही हैं। भगवती श्रीसीताजी का आदर्श अनुपम है। वह इतनी सुकुमार कोमलांगी होने पर भी चौदह वर्ष कठोर निष्ठुर कंटकाकीर्ण दण्डकारण्य की धरणी पर वर्षा आतप बात शिशिरशीत सहती नंगे चरण श्रीराम चरणानुगामनो बनी धन्य हैं। धन्य हैं, कहते हैं श्रीजानकी इतनी कोमल सुकुमार थीं कि धरणी पर कभी पैर भी नहीं रक्खा था।

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा।
सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥

पलंग, पीठ, गोद, हिंडोरा छोड़कर भगवती कभी लीला चंक्रमण के लिए भी इस कठोरा धरणी पर चरण नहीं रक्खा था। हनुमन्नाटक में एक सुन्दर प्रसङ्ग आता है।

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरोषमृद्वी।
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता॥
गन्तव्यमस्ति कियदित्यऽसकृद् ब्रुवाणा।
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥

वनवास जाते समय श्रीकमल दल नयन श्रीरघुकुल भूषण श्रीराम के साथ आप भी तैयार हो गयीं। परन्तु कभी भी पैदल तो चली नहीं थी। फिर भी राजीव लोचन श्रीराम के साथ चल पड़ीं औरो उसी श्रीअवध की सीमा में ही चार कदम तो बहुत जल्दी-जल्दी चलीं फिर थक गयीं। लथपथ होकर श्रीराम के कानों के पास बार-बार मुँह ले जा कर धीरे-धीरे से पूँछा नाथ अभी ओर कितनो दूर चलना होगा और असकृद ब्रुवाणा) माने बार-बार पूँछा, तब श्रीराम के नेत्रों में पहिली बार आँसू आ गये और बोले प्रिये ! अभी तो चार कदम ही हुआ है और इसी प्रकार चौदह वर्ष चलना पड़ेगा।

इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने कवितावली में कहा है। यथा -

पुर ते निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भार कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।।
फिरि बूझति हैं—"चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित ह्वै ?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखियाँ अति चारु चलीं चली च्वै ।।

भगवती श्री सीता रघुकुल वधू जव वनवास में जब दो कदम हीं चली थी कि वे थक गई। श्री रघुनाथ जी महाराज से पर्ण कुटी कहाँ बनाओगे इस बात को बार-बार कहा। श्री रघुनाथ जी महाराज स्वयं ही वनबासी उदासी जटिल तपस्वी हो चुके थे। परम साध्वी पतिव्रता सुन्दर आर्या की कुटी बनाने की बात सुनकर आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। एक बार तो वनवास में थक जाने पर श्री भगवती ने महात्मा नर वीर श्री लक्ष्मण जी को भी थकने का बहाना किया। यथा—

जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह धरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ।।
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ।।

भूमि सयन बल कल बसन। असन कन्द फल मूल ।।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं। समय-समय अनुकूल ।।

धरणी पर सोना होगा। पेड़ों की छाल ही पहिनना होगा और कन्द, फल, मूल ही सेवन करना पड़ेगा, वह भी यथा ऋतु ही समय-समय पर प्राप्त होंगे, तकलीफ बहुत होगी इसीलिए प्रभु बोले थे—सब विधि भामिनि भवन भलाई, परन्तु अतिशय अनुराग था। दृढ़ पतिव्रत के कारण ही श्रीजानकी जी रुकी नहीं, श्रीराम के साथ वन गमन ही सुहाया था।

सिय मनु राम चरन अनुरागा ।

घरु न सुगमु बनु विषमु न लागा ।।

और भगवती ने स्वयं भी कहा था कि हे प्राणनाथ आपके साथ वन श्री अवध के समान ही प्रिय है ।

कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई । प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई ।।

जैसे चाँदनी चन्द्र के अंग संग का कभी भी परित्याग नहीं करती । यानी जहाँ चन्द्र है वही चाँदनी है । सूर्य की किरण भी सदा ही प्रभु दिनकर दिवाकर पतंग सूर्यदेव के साथ ही रहती हैं । जैसे पुष्प और सुगन्ध, मेघ और वायु तथा धरणी और क्षमा की भाँति श्रीसीताजी श्रीरघुनाथ जी महाराज की चिरसंगिनी सदा ही बनी रही । कहते हैं श्रीकिशोरी जी कभी नौका पर नहीं चढ़ी थीं । पहली बार थकी माँदी श्रीसीताजी महारानी जब छोटी सी नौका पर श्रीराम के साथ विराजी और वीर लक्ष्मण जी नौका को तैरकर पार करने लगे तो श्रीजनक किशोरी जानकी जी बहुत ही प्रसन्न होकर श्रीराम से बोलीं कि हे महाराज और अब कोई तकलीफ मेरी ओर से नहीं होगी । प्रभु बोले कि क्यों ? तो सरल उदार हृदया श्रीसीता जी ने कहा कि इसी पर बैठे-बैठे जहाँ भी चलना होगा, चलते रहेंगे । अब जमीन पर कभी भी पैदल नहीं चलना पड़ेगा तो श्रीराम प्रभु ने थोड़ा हँसकर कहा कि अरे प्रिये यह नौका तो पानी में ही चलती है । जमीन पर तो फिर भी पैदल ही चलना पड़ेगा ।

मोहि मग चलत न होइहि हारी ।

छिनु-छिनु चरन सरोज निहारी ।।

सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं ।

मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ।।

सम महि तृन तरु पल्लव डासी ।

पाय पलोटिहि सब निसि दासी ।।

श्री भगवती की ये प्रेम भरी मंगलवाणी सुनकर श्रीरघुनन्दन प्रभु अति ही हर्षित हुए। तो सज्जनों भगवती का चरित्र करोड़ों वर्ष शेष शारदा भी वर्णन करें तो भी नहीं कर सकते। उनके विचार उनकी शुभ भावना श्रीराम के पावन पवित्र चरणों में पूर्ण अनुराग ही उनके चरित्र को सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशित कर रहा है। कई युगों बाद भी श्रीसीता राम का मंगलमय चरित्र सुख सन्तोष समृद्धि प्रदान कर रहा है।

सीता राम मनोहर जोरी। शारद उपमा सकल ढ़िठोरी ॥

आज भी उनका मंगल पावन निर्मल पवित्र चरित्र लोक को तथा परलोक को सुख निःश्रेयस प्रदान कर रहा है। करोड़ों लोग उस चरित्र को गा-गाकर अपना तथा सुनने वालों को कल्याण तथा अभिमत फल प्रदान करा रहे हैं। हाँ तो भाई आप यह समझिये कि संसार में ऐसा चरित्र ही दूसरा नहीं है। जो हम लोगों का दारिद्र से मिटाकर परलोक को भी मंगल प्रदान कर सके। नारी जाति के जितने गुण भूषण होते हैं या हो सकते हैं। वे श्रीसीताजी महारानी से ही प्रादुर्भूत तथा जायमान हुए थे। सभी स्त्रियाँ भी श्री भगवती के रूप के गुण के किञ्चित अंश ही प्राप्त करके रूपवती गुणवती बनती हैं।

या देवी सर्वभूतेषु स्त्रीरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै-नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥

नारी के अवगुण दूषण तो भगवती को छू तक नहीं पाये थे। सज्जनों! जिनका नाम लेकर अमंगल दूषण को भगाया जाता है। फिर उनके पास दूषण और अवगुण कहाँ? आपको तो बहुत सुनाया है। परन्तु हम धर्म सभा में स्त्री जाति के लिए कुछ विशेष नहीं कहा गया है तो इस सभा में अलंकार भूषण स्वरूप जो स्त्री जन विराजमान हैं। उनके कल्याण के लिए भी कुछ कहना हम उचित समझते हैं। स्त्री कैसी होनी चाहिए वैसे तो सभी स्त्रियाँ भगवती की ही स्वरूप हैं तथा कुछ शास्त्रीय आधार पर विवेचना अनिवार्य है। स्त्री गोरी हो या काली हो, पढ़ी या न पढ़ी हो, सुन्दर हो या कुरुप हो मेरी राय में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। परन्तु फिर भी कुछ गुण दोष है। जिनको आप सबको सुनकर सोचकर ठीक से समझ लेना चाहिए। नारी जाति का सबसे बड़ा गुण भूषण है। मधुर भाषण कान्ता प्रिया लापिनी मधुर भाषण ही एक ऐसा गुण है। जो त्रिभुवन को वश कर सकता है कुटुम्ब की कौन बात कहे।

कागा काको लेत है, कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाय के जग को वश कर लेय ॥

माधुरी वाणी नारी का सर्वश्रेष्ठ भूषण है। आपको इस विषय में अपनी एक शिष्या की कथा सुनाते हैं। बात बहुत पुरानी है। आज से लगभग २५ या ३० वर्ष पहले हम महाराष्ट्र में पूना शहर गये थे। मेरे परम मित्र श्री आचारी जी महाराज भी साथ थे। वहाँ पर एक अग्रवाल परिवार मेरा शिष्य हुआ था। उनके १० दश बेटे तथा एक कन्या थी कन्या बड़ी मान-मनौती के बाद ही प्राप्त हुयी थी। दश भाइयों की बहिन होने के कारण अधिक लाड-प्यार में पाली गयी थी। नाम था सरोज, परन्तु प्यार में सब बेबी (सरोज) कहते थे। वे भी मेरी शिष्या थी। परिवार के होने के साथ ही साथ भरा पुरा सम्पन्न प्रतिष्ठित व्यापारी लोग थे। थोड़े काल बाद उस बेटी का व्याह भी अच्छे सुयोग्य कुलीन परिवार में ही हुआ। सेठ जी साहब ने बेटी के ससुराल वालों का दान मान से अति सम्मान किया और बेटी की बिदाई कर दिया। व्याह के ठीक चार मास बाद हम भी दौरे में पूना आये थे। मेरे परम पूज्य विद्या बुद्धि तपस्या के महासागर श्रीगुरु महाराज जो उन दिनों हम लोगों को महाराष्ट्र के दौरे पर दुबारा भेजे थे। उस मध्य में हम पूना भी गये और अपने शिष्य सेठ जी साहब के घर भी गये। समाचार सुना तो थोड़ा दुःख भी हुआ था। सेठानी जी साहब जाते ही पहले तो सरोज के व्याह की बात सुनायी और फिर तुरन्त ही वे अपनी मूल बात पर आ गयीं और बोली कि हे महाराज सरोज की तो तकदीर फूट गयी। लाखों रुपये दहेज में दिया, इतना सम्मान किया, परन्तु उस घर वाले लोग महाराज जी बहुत दुष्ट साबित हुए और सरोज को बहुत तक़लीफ देने लगे। महाराज दामाद तो इतना नालायक़ निकला, कि जिसकी कोई सानी नहीं है और महाराज इस सुन्दर बेटी पर हाथ भी उठा दिया और मार-पीट भी कर लिया है। तब से सरोज यहीं पर रह रही है। हमने सुना तो बहुत आश्चर्य भी हुआ कि चार महीने में ही सब बात कैसे बिगड़ गयी, परन्तु, थोड़ी देर बाद हमको मन में सब बात समझ में आ गयी। क्योंकि हमने देखा था, कि अति लाड-प्यार में बचपन से ही 'सरोज चंचल और बातूनी बहुत थी तथा पूरे घर भर में अपनी प्रखर तेजस्वनी वाणी से—कुहराम मचाये रहती थी। दश भाई थे। दश भाभियाँ तथा माता-पिता कुल बाईस आदमी के परिवार में—सरोज का टाईम टेबुल इस प्रकार बन गया था कि एक घन्टे इस भाभी से झगड़ा तो एक घन्टे उस भाभी से। फिर भाइयों से, फिर माता-पिता से इस प्रकार कलह के लिए माँ के घर में उसे बराबर बीस घन्टे मिल जाते थे। भाई भाभी सोचते कि एक तो बहन ननद है। लड़ लेने दो कब तक लड़ेगी। थोड़े दिन में अपने घर चली जाएगी बेचारी। ऐसा बल

उत्साह पाकर वह दूने जोश खरोश के साथ कलह प्रिय हो चुकी थी और ऐसा ही टाईम टेबुल वे ससुराल में भी मिलाने लगी तो भाई भला वहाँ कौन सहेगा। हम अपने मन में तुरन्त समझ गये कि अधिक तीखी बोली का ही फल होगा तथा हमने धीरज दिलाया कि घबड़ाओ नहीं सब ठीक हो जाएगा और हमने पूछा कि बेबी कहाँ हैं, जरा बुलाओ तो सही हमारे बुलाने पर सामने आयी। हमारी बचपन से हीं शिष्या थी। हमने पूँछा कि बेबी क्या बात है ? पहले तो बहुत रोयी।

फिर सान्त्वना पाने पर बाग बैखरी खुली, कहा अरे ! गुरु महाराज आपको क्या बताऊँ, मेरी सुसुराल तो पूरी लंकापुरी है। मेरे श्वसुर को महाराज रावण समझ लो। हमारी सास तो महाराज पूरी मन्दोदरी ही है। जेठ कुम्भकरण हैं और ननदों की तो क्या कहना महाराज पूरी-पूरी सुर्पनखा ताड़का ही है। देवर तो मेघनाद का ही मूर्तिमान छोटा स्वरूप है। महाराज अपनी विपदा आपको क्या-क्या सुनाऊँ। परन्तु मन ही मन हम सब समझ गये थे। हमने उनके भाइयों से कहा जरा दामाद को बुलाओ देखना चाहते हैं। तुम घबड़ाओ नहीं हम उस गाँव में जाकर प्रवचन करेंगे और उनको पंक्ती में सम्भ्रान्त नागरिकों से दबाव डलायेंगे। इतनी सुन्दर गुणवती बेटी भला वे कैसे नहीं ले जायेंगे। तुम जरा उसको एक बार मेरी नजर में लाओ। उनका बड़ा भाई अशोक अग्रवाल तुरन्त उनके घर गया और ठीक दूसरे दिन दामाद को बुला लाया। देखने में हृष्ट-पुष्ट सुन्दर पढ़ा-लिखा कुलीन उस पुरुष को देखकर हमको शीघ्रता में यह विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि इसने सरोज के साथ मार-पीट किया होगा तथाऽपि पहले दिन हमने उससे कुछ भी नहीं कहा—दूसरे दिन जब हम पाठ पूजा करके टहलने जाने लगे तो उसको भी अपने साथ ले लिया। मेरा प्रिय शिष्य नारायण भाई भी साथ था। हमने मार्ग में उस बालक से कहा कि देखने में तो तुम सुन्दर और समझदार आदमी दिखते हो। इतनी सुन्दर ससुराल है तुम्हारी दश साले हैं तुम्हारे सम्पन्न परिवार हैं। ऐसे लाभस्थल को पाकर भी तुम समझदारी से काम नहीं करते। सुन्दर पत्नी पर हाथ उठा दिया चार महीने भी नहीं बीते और झगड़ा करके उसे माँ के घर क्यों भेज दिया हमारे जरा कठोर कहने पर वह दुखी हो गया और बोला महाराज हम इसका बहुत आदर तब भी करते थे और अभी भी मेरे मन में इसके प्रति अनुराग और कर्तव्य बोध है। परन्तु, गुरु महाराज ! इसके कटु व्यवहार से हम सब अति दुःखी हो गये हैं। जब से गयी है उसी दिन से माँ से, पिता से, भाई से, भाभी से, पड़ोसियों से, नौकर चाकर तो क्या महाराज गाय भैंसों से भी यह लड़ती है। हमलोग हार मान कर चुप हो जाते हैं परन्तु महाराज इसका इतना अभ्यास पड़ गया है कि पूरा कोर्स जब तक पाठ नहीं कर लेती तब तक शान्ति ही नहीं होती। हम लोग भागकर कमरा बन्द कर लेते हैं। तब भी महाराज

वह खिड़की खोलकर झाँक-झाँक कर लड़ती है। हम लोग खिड़की बन्द कर देते हैं, तो महाराज सीढ़ी लगाकर रोशनदान पर और वहाँ से गोलियों की भाँति गालियों की बौछार सी करती है। हम लोग हार मानकर सेलेन्डर कर देते हैं। तब भी यह नहीं मानती, महाराज जी आपको क्या बतावें एक दिन मेरे जीजा जी साहब घर आये थे। जब कोई मुवक्किल नहीं मिला तो मेरे बहनोई से ही लड़ गई और उनका कपड़ा सब फाड़ डाला, खरबोट दिया। नाखूनों से कहीं-कहीं दाँत से काट खाया, वे चिल्लाये हम लोग दौड़कर आये तो देखा कि यह बांघिन की भाँति उनसे जूझ रही थी। किसी प्रकार उनका उद्धार किया गया और उन्हें अस्पताल भी ले जाया गया। तब महाराज हमको जरूर क्रोध आ गया और चोटी पकड़ दो-तीन तमाचे लगा दिये थे। तब से यह नाराज होकर यहाँ चली आई और स्वयं ही नहीं जा रही है। अब आप ही बताइये, हमसे इसमें मेरा क्या कसूर है। हम तो यह बात पहले से ही समझाते थे तो भी उसको समझाया और कहा कि अब ले जाओ सब ठीक हो जाएगा और अब कभी भी नहीं लड़ेगी और दो घन्टे बाद हम उसके साथ ही वापस लौट आये और उसी दिन उसकी माँ से मैंने कहा कि अब आप बेबी को भेज दीजिए। बिल्कुल ठीक भाँति से रक्खा जायेगा और अपनी शिष्या सरोज को भी हमने बुलाया और कहा कि देखो अब आप इनके संग ससुराल जाओ, अब कभी भी तुमसे लड़ाई नहीं करेगा। क्योंकि हम तुम्हारे लिए कुछ उपाय कर रहे हैं। हमने कहा कि बेबी तुमको एक दिव्य तेजस्वी ताबीज बनाये देते हैं। आप इसे अपने गले में सदा धारण करना और बेबी अभी तो ससुराल में घूँघट निकालती ही होगी। जब-जब कोई तुमसे लड़ाई झगड़ा करने लगे तो तुम इस ताबीज को जोर से दाँतों के नीचे दाव लेना जब तक दाँतों के नीचे यह ताबीज रहेगी तब तक थोड़ी देर बाद ही सबकी बोली अपने आप ही बन्द हो जाएगी। क्योंकि इसमें हमने वशीकरण मन्त्र लिख दिया है और वह अपने सुन्दर सुशील होनहार पति के साथ ससुराल चली गयी। दूसरे दिन हम भी अगले स्थान के लिए प्रस्थान कर गये थे। ५ साल के बाद हम पूना गये थे। संयोग से सेठ जी साहब के घर भी जाना हुआ तो सरोज भी वहाँ थी, बड़ी खुश नजर आयी। तो हमने पूछा बेबी सब ठीक तो, है तो धाय के चरणों पर लेट गयी और कहा महाराज आपके चरणों की कृपा से सब ठीक हो गया है। अब लड़ाई बिल्कुल ही नहीं होती और महाराज ३ तीन पुत्र भी हो गये हैं। हमने कहा ताबीज पहिने हो कि नहीं तो बड़े आदर से दिखाया। हमने देखा कि गोली ताबीज दाँतों से चबाते-चबाते लम्बायमान हो गयी थी और हमने पूछा कि बेबी अब तो कभी दाबने की जरूरत तो नहीं पड़ती—बोली महाराज कभी-कभी जरूरत पड़ जाती है। परन्तु गुरूजी चमत्कार यह है कि इसको दाँतों को नीचे दबाते ही थोड़ी देर में ही सब चुप हो जाते हैं। जो नहीं भी चुप होता तो परिवार के दूसरे लोग उसे चुप कराने लगते हैं। धन्य हैं श्रीगुरु जी महाराज आपके पावन चरणों के प्रताप से मैं भी धन्य हो गयी और जीवन भी सफल हो गया। परन्तु मेरे प्रिय

उदारमना धीर मति श्रेताओं अब आप यह भी समझ लो कि रहस्य 'क्या था । बात यह थी कि उसके दांतों के नीचे ताबीज दाबने से पहला लाभ यह होता था कि उसकी कठोर वाणी अपने आप बन्द हो जाती थी तो दूसरा व्यक्ति कब तक किससे लड़ता रहेगा । अरे भाई ताली तो दोनों हाथों से ही तो बजती है । एक हाथ से कभी भी ताली नहीं बजती, चाहे जितना भी आप प्रयत्न करके देखो । फिर हमने कहा अच्छा बेबी अब चलेंगे तुम सदा इसी भाँति रहोगी, तो सुखी रहोगी, दुःख कभी भी नहीं मिलेगा, तो तुरन्त बोली महाराज— हमारी दो-तीन सहेलियों के घर भी लड़ाई-झगड़ा बहुत होता है । कृपा करके दो तीन ताबीज और भी बना दीजिए । हमको मन-ही-मन बहुत हँसी आई और हम पूना से थोड़े दिन बाद चले गये । हाँ तो सज्जनों ! श्री सीता जी महारानी के पावन चरित्र गंगा में आप फिर मेरे साथ पावन पवित्र होने के लिए चलिए और सावधान चित्त में आगे की कथा प्रवचन रत्नाकर को ध्यान पूर्वक सुनिये जी— भाई एक कथा इसी प्रसंग में और याद आ गई है । यह कथा महाभारत की है । हमारी इस धर्म सभा में नारी जाति भी बहुत उपस्थित हैं । अतः इनके विकास कल्याण के हित के लिए ही यह कथा भी आप सुजन जन जरा सुन लीजिये । एक ब्राह्मण विद्वान् पण्डित ज्ञानी थे । उनकी ब्राह्मणी धर्म पत्नी का नाम ही "उल्टी चण्डी" था आप सब धीमान बुद्धिमान चतुर श्रोताजन नाम से काम सुभाव समझ गये होंगे क्योंकि उसका नाम ही उल्टी चण्डी था । माने सब काम वह पति के उल्टा ही करती थी । पण्डित जी कभी कहते कि यह पूरब है तो फौरन चटककर जवाब देती, नहीं यह पश्चिम है । वह कहते अच्छा दिन है, तो तुरन्त तड़क कर गरज कर कह देती नहीं, यह रात है तो पण्डित जी विद्वान् ज्ञानी थे । थोड़े दिन में वह उसका उल्टा स्वभाव समझ गये थे और उल्टा ही बोलकर सब काम बना लेते थे । जैसे पितृपक्ष चल रहा है । पण्डित जी को मान लो खीर खाने की इच्छा होती तो कहते— देखो आज खबरदार खीर मत बनाना तो तुरन्त बोलती अब आज तो खीर ही बनेगी और देखूँगी कि कौन खीर नहीं खाता । पण्डितजी जरा गम्भीर होकर कहते भाई तेरी जैसी मर्जी वैसा ही कर । मान लो पण्डित जी के कपड़े गन्दे रहते और उनको उसे उससे साफ कराने की इच्छा होती तो धीरे-से बोलते देखो गन्दा कपड़ा कितना अच्छा लग रहा है । हम इसी को पहनेंगे कभी साफ मत करना तो वह तुरन्त ललकार कर कहती अब तो साफ ही पहनना पड़ेगा । देखूँगी, कौन गन्दा कपड़ा मेरे सामने पहनता है इसी भाँति पण्डित जी स्वयं ही उल्टा बोलकर सब काम सीधा करा लेते थे । घर में उसी का रोब दाब था और आजकल भी प्रायः ऐसा ही है ।

बाबू-बाबू सब कहैं बीबी कहै न कोय ।
बाबू जी के भवन में, बीबी कहै सो होय ।।

तो प्यारे सज्जनो और देवियो ! एक दिन एक घटना घट गयो । हुआ यह कि भाँदो की पूर्णमासी थी । श्री गङ्गाजी निकट हो थीं । दोनों दम्पत्ति प्राणी श्रीगङ्गा नहाने गये । पहले पण्डितजो नहाकर कपड़ा पहनकर बैठ गये । तब बाद में ब्राह्मणी को श्रीगङ्गा जो नहाने को भेजा । भादों मास की फनफनाता उफनात श्रीगङ्गाजी पूरी बाढ़ पर थीं । वह ब्राह्मणी जैसे नहाने कटि पर्यन्त पानी में गयी । पण्डितजी के मुँह से घबड़ाहट में जल्दी में निकल गया कि अरे श्री गङ्गाजी बहुत गहरी हैं आगे मत जाना । वह तुरन्त बोली अब तो आगे ही जाऊँगी देखूँ कि मेरा कौन क्या कर लेता है ? पण्डित जी आतुरता में भूल गये कि इसको उल्टा कहो तब सीधा समझती है । दरअसल में दिनचर्या की भाँति उसको अगर कहते कि आगे बढ़, तब वह पीछे लौटती, परन्तु पण्डित यह रोज वाली बात जल्दी में भूल गये । देखा तो वह ब्राह्मणी गले तक पानी में चली गयी । पण्डितजी पूरे जोर से बोले कि अरी भाग्यवान, आगे गहरा है, धारा है, वेग है । आगे मत जा । तो वह ठुनककर तुनककर गरदना घुमाकर मचलकर बोली अब तो आगे हो जाऊँगी और आगे ही आगे बढ़ती गयी और जो होना था वही हुआ । घनघोर धारा में डूब गयी और मर गयो । देखने वाले घाट के लोग दुःखी हुए और कहने लगे कि बड़ा अनर्थ हुआ बिचारी ब्राह्मणी जल में डूब कर मर गई । बिचारे पण्डित का घर उजड़ गया । अस्तु; जो होना था वह हो गया । कोई बात नहीं लाश को खोजो, पचासों लोग लाश खोजने में लग गये । तब पण्डित जी उन खोजी लोगो से बोले भाइयों इसको धारा की ओर मत खोजो बल्कि उल्टा खोजो । यह गङ्गा सागर की ओर नहीं बहेगी । अपितु गंगोत्री की ओर खोजो, क्योंकि जीवन भर सब काम उल्टा ही किया है । मरने पर भी वही आदत बनी रही होगी तो श्रोताओं आपने सुना स्त्री की घोर, कठोर वाणी दोष दूषण है । दुःख का कारण भी है । सुख का अपहरण भी करती है । इसी बात को गोस्वामी जी महाराज—"गिरा मुखर तन अरध भवानी" । लिखा है । कम बोलना और प्रति उत्तर न करना कभी भी व्यर्थ की बहसबाजी में न उलझना । अपने से बड़ों की सब बात सादर सह लेना । स्त्री जाति का उत्तम गौरव हम समझते हैं और शोभा भी इसी में उस कुटुम्ब में शान्ति सन्तोष सुख समृद्धि बनी रहती है । आँगन में प्रेम की भागीरथी सदा ही प्रवाहित रहती है । लोक भी सुखी रहता है परलोक भी ।

श्रीहरिः

आदि शक्ति

हां तो सज्जनो ! नारी जाति की आदि शक्ति श्रीसीता जी महरानो हैं। अतः उन्हीं के व्याज से सभी स्त्री जनों के कल्याण विषयक वार्ता आ गयी थी । जो आप सब उपस्थित धर्म सभा के श्रोताओं को भी सुनाई गयी हैं। अब आप फिर भगवती के मंगल चरित्र को ध्यान पूर्वक श्रवण लाभ प्राप्त करें—

जगद्धात्रीं महामायां ब्रह्मरूपां सनातनीम् ।
दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवताप्सरकिन्नराः ।।

जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी शक्ति श्रीसीताजी को देखकर ब्रह्मादि देवगण नारदादि मुनिगण गन्धर्व किन्नर और अप्सरा गण परम हर्षित हुए।

जानक्यांशादि सम्भूतानेकब्रह्मांण्डकारिणी ।
सा मूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी ।।

श्री जानकी जो के अंशों द्वारा ही अनेकानेक जगत् को उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती है। वह तो मूल प्रकृति स्वरूपिणी महामाया आदि शक्ति ही हैं। महारामायण में श्रीशिवजी महाराज के ये वचन हैं। "श्री" सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी रामानन्दाचार्य महाराज ने भी भगवती की अपरमित शक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है।

ऐश्वर्यं यदपाङ्ग संश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगं,
चित्तं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या ।।
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा ।
दत्तान्तोऽखिल सम्पदो जनकजा रामप्रिया सानिशम् ।।

दिक्पालादि और लोकपालादि के ऐश्वर्य भोग तथा आश्चर्य मय अद्वित ब्रह्माण्ड जिनके कृपा कटाक्ष पर भी सर्वथा अवलम्बित हैं। जो अशोम वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। वे शुभ गुणों से युक्त विद्युत्पुन्ज के समान गौर तेज सम्पन्ना परम क्षमा सम्पन्ना, कमल नयना भगवत प्रिया आद्या शक्ति भगवती श्री सीता जी निरन्तर हमें मोक्षादि सम्पत्ति प्रदान करें। श्री जानकी जी की जो अतुलनीय शक्ति है उसकी तुलना में अनन्त ब्रह्माण्ड में कोई भी नहीं प्राप्त हो सकता और ठीक ही कहा है कि—

एषा.विश्वहतोपमा, न तुलनां धत्ते ह्यमुष्या उमा।
वाणी चापि रमा च मन्यत इयं निस्संशयं निश्चया ।।
इन्द्राणी विधिनन्दिंनी ससकला देवाङ्गना किन्तुताः।
मन्यन्तेऽप्सरसोऽपि रूपरसिका अस्या हि दासी समा ।।

श्रीभगवती जानकी जी की अप्रतिम महिमा ने संसार को सभो उपमाओं को तिरस्कृत कर रखा है। इनकी तुलना उपमा में न उमा आ सकती है न वाणी न लक्ष्मी और न ब्रह्माणां। फिर अन्य देवाङ्गनाओं की तो बात ही क्या, ये देवियाँ तथा अप्सरादि तो इनके रूप पर लुब्ध दासी के समान जान पड़ती है।

जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लक्ष उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जास जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई ।।

सज्जनो! वास्तव में श्रीराम हो साक्षात परम ज्योति परमधाम परात्पर परमात्मा एवं वे ही परम पुरुष हैं। श्रीसीताजी और श्रीराघव को आकृत में हो भेद है। वास्तविक नहीं है। श्रीराम ही श्रीसीता हैं और श्रीसीता ही श्रीराम हैं। इन दोनों में कभी भी कोई भेद नहीं हैं। सन्त महन्त लोग इसी तत्व को बुद्धि के द्वारा भली भांति जानकर जन्म मरण रूपी संसार के पार पहुँच चुके हैं। श्रीसीता जी ही श्रीराम.की परम ज्योति हैं। जिस प्रकार श्रीशिवजी महाराज को परम ज्योति भगवती अन्नपूर्णा जी हैं और श्रीकृष्ण की ज्योति श्रीराधाजी महारानी है। जो आप श्रीदुर्गा सप्तसती में—महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती रूप में असुर नासिनी हैं। वही रामायण में श्रीसीता रूप असुर नासिनी कालरात्रि हैं। रावण की सभा में श्रीहनुमान जी महाराज ने कहा है।

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
काल रात्रीति तां विद्धि सर्वा लङ्काविनाशनीम् ।।

(वा० रा० ५ ५१-३४)

हे रावण जिन्हें तुम सीता समझते हो जो आज तुम्हारे घर में अवस्थित हैं। उन्हें तुम कालरात्रि समझो। वे सर्व लङ्का विनासिनी है। जिस प्रकार भगवान बाल्मीकि के समान दूसरा कवि इस जगत में नहीं हुआ है. उसी प्रकार उनके काव्य की प्रधान आराधना भगवती श्रीसीता के समान सम्पूर्ण सृष्टि में न कोई हुआ है न कोई होगा। वे अद्वितीय अनुपम हैं और सदा हो रहेंगी। अपनी रामायण में श्रीसीताराम का यशो वर्णन करके महर्षि बाल्मीकि कृत कृत्य तथा अजर-अमर एवं पूर्ण काम हो गये। भगवान ब्रह्मा ने जब सब उपादान देकर आदि कवि को महाभारत की रचना करने को कहा तब आदि कवि बोले मैं तो पूर्ण हो गया हूँ। अब किस लिए परिश्रम करूँ परन्तु आपके आज्ञानुसार मेरे पश्चात् जब श्रीव्यास देव जी आयेंगे तब उन्हें मैं काव्य का बीज बतला दूँगा। यह बात ब्रह्मधर्म पुराण में मिलती है। मैं भगवान का जगमंगल यशो वर्णन कर अब पूर्ण हो गया हूँ। यह बात आधुनिक जगत के किसी भी कवि अथवा ग्रन्थ लेखक के मुख से नहीं सुनी गयी है। इसीलिए भाई मेरा मत है कि श्रीमहर्षि बाल्मीकि के श्रीसीताजी महारानी भी अपने में एक हैं। अद्वितीय अनुपम हैं। सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण, काव्य कोश, साहित्य में हजार बार खोजने से भी ऐसा रूप माधुर्य लावण्य लीला में ऐसा कोई आदर्श दिखायी नहीं पड़ता। स्वरूप सुन्दरता कि तो खान ही हैं।

भगवती श्रीसीता जो महारानी मेरे मत से श्रीसीता भगवती के रूप लावण्य सार सर्वस्व का वर्णन सहृदय सन्त उदार भक्त करे तो भाई आप कहेंगे कि श्रद्धा ही बलवती है। क्योंकि रूप माधुर्य रस गण तो अपनी आँख ही देखती है। वही एक प्रमाण है। जो भिन्न-भिन्न है। यथा—

दोहा—महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।

अब मैं जन्मु सम्भु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा।।

परन्तु मलिन क्रूर अधम पापी राक्षस भी जिनके आदर स्वरूप गुण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा सराहना करे तो जरूर से जरूर कोई अलौकिक बात ही होगी। इससे अधिक कहना कल्पवृक्ष को करौंदी के फूल चढ़ाने के समान हास्यास्पद ही होगा। जरा धीर मति श्रोताजन आप रावण के सेनापति वीर अकम्पन की वाणी सुनिये। हे रावण ! उनकी सीता नाम की सुन्दर भार्या है, जो संसार भर की नारियों में श्रेष्ठ है। उसका कटि प्रदेश अत्यन्त सुन्दर है। उसके सारे अवयव सुडौल सुन्दर है। वह स्त्रियों में रत्न के समान है और रत्नों से सुसज्जित है। मनुष्य लोक की स्त्रियों को तो कौन कहे। देवाङ्गनाओं गन्धर्व विदों नांग पत्नियों और अप्सराओं में भी कोई ऐसी स्त्री नहीं है, जो उसकी समता कर सके।

(वा० रा० ३-३१-२९-३०)

इतना ही सूर्पणखा भी रावण से कहती है। राम की धर्म पत्नी विशाल नेत्रों वाली पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली तथा अपने पति को अत्यन्त प्रिय है और सदा उनके अनुकूल आचरण और हित साधन में तत्पर रहती है। उनके सुन्दर केश हैं। सुन्दर नासिका और अति सुन्दर जंघायें हैं। वह अप्रतिम सुन्दरी हैं और उसका बड़ा यश है। राक्षशेश्वर वह इस वन की मानव दूसरी लक्ष्मी है। वर्ण उसका तपाये हुए सोने के समान है। सीता उसका नाम है। राजा विदेह की वह पुत्री हैं। उनके जघन प्रदेश बहुत सुन्दर है और कटि प्रदेश अत्यन्त क्षीण है। मैंने वैसी दूसरी नारी पृथ्वीतल पर कहीं नहीं देखी है और तो क्या देवाङ्गनाओं, गन्धर्वियों, यक्ष पत्नियों तथा किन्नरियो में भी कोई वैसी सुन्दरी नहीं है।

(वा० रा० ३-३४-१५-१८)

परन्तु उत्तर रामचरित में श्री रघुनाथ जी महाराज के मुखार विंद द्वारा जो कहा गया है। वह अद्भुत है।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो—
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः।
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः॥

(उत्तर रामचरिते—१-३८)

फा० ३२

यह साक्षात गृह लक्ष्मी है। मेरे नेत्रों को जुड़ाने के लिए यह अमृत की वर्ति (शलाका) है। इसका स्पर्श शरीर के लिए प्रचुर चन्दन के समान शीतल है। इसकी भुजलता मेरे कण्ठ में शीतल और चिकने मोतियों के हार की शोभा को धारण करती है। इसका सब कुछ मुझे अतिशय प्रिय हैं। केवल इसका वियोग ही मेरे लिए असह्य है। प्रभु श्रीराम पुनः कहते हैं। हे प्रिये—

मध्यं केशरिभिः स्मितं च कुसुमैर्नेत्रे कुरंगीगणैः।
बल्लीभि ललितं गतं करि बरै रित्थं विभक्त्याञ्जसा।
कान्तारे सकलैर्विलासपटुभिर्नितासि किं मैथिलि ॥

(महानाटक—४-१६)

प्रिये मिथिलेश कुमारी जान पड़ता है, जंगल में रहने वाले क्रीड कुशल जानवर सब मिलकर तुम्हें हर ले गये हैं। और उन्होंने अपने बीच तुम्हारे विविध अंगों को परस्पर बाँट लिया है। लगता है सिंहों ने तो तुम्हारी क्षीण कटि चुरा ली है। पुष्पों ने मुस्कान, हरिनियों ने नेत्र चम्पा की कलियों ने क्रान्तियिकों ने मीठी बोली लताओं ने विलास और गजराजों ने तुम्हारी सुन्दर चाल को ही चुरा लिया है। यह रूप राशि श्रीप्रभु ही वर्णन कर रहे हैं। अब जरा सन्त प्रवर गोस्वामी जी महाराज के मुख से सुनिये।

सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहिं लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥
सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंग भूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी ॥
हरषि सुमन दुन्दभी बजाई। बरसि प्रसून अपछरा गाई ॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितये सकल भुवाला ॥

श्रीहरिः

कमनीयता

ऐसा रूप माधुर्य देवताओं ने न कभी देखा था और न उसकी कल्पना ही की थी। क्योंकि जगत जननी अतुलित छवि मान थी और भी सुनिए—

सोहति वनिता वृन्द महुँ सहज सुहावनि सीय।
छवि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥

सिय सुन्दरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दोख बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥

सब भाँति भगवती मंदाकिनी से भी पुनीत रूप राशि को देखकर समस्त प्राणधारी बहुत हर्षित हुए। एवं श्रीअयोध्या में आने पर भगवती के रूप माधुर्य का अवलोकन कर सम्पूर्ण अवधवासी निहाल हो रहे थे।

पुनि पुनि सीय राम छवि देखी। मुदित सकल जग जीवन लेखी॥
सखी सीय मुख पुनि-पुनि चाही। गान करहि निज सुकृत सराही॥
बरसहिं सुमन छनहि छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥
देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ठठोरी॥
देत न बनहिं निपट लघु लागी। एक टक रहीं रूप अनुरागी॥

मेरे प्यारे श्रोताओं आपने सुना जब भगवती वीणा पाणि भारती हंसवाहिनी सरस्वती की यह दशा है। तब साधारण कवियों की लेखकों की विचारकों का समालोचकों की भला क्या गिनती हो सकती है। अब जरा गोस्वामी जी की लेखनी का एक वर्णन इसी प्रसंग में और सुन लीजिए जी, नाशाकर्ण बिहोना बिकटानना क्रूरा राक्षसी रुधिरासनापापिनी सूपंणखा की वाणी सुनिए। जो उसने राक्षस राज दसकन्धर की सभा में वर्णन किया।

कह लंकेस कहसि निज बाता। केहि तव नासा कान निपाता ॥
अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंह वन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहिं उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥
जिन्हकर भुजबल पाय दसानन। अभय भये विचरति मुनि कानन ॥
देखत बालक काल - समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना ॥
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल वध रत सुर मुनि सुख दाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्हके संग नारि एक स्यामा ॥
रूप रासि बिधि नारि सवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥

संसार में कामदेव की प्रिय पत्नि रति अति शोभामयी है। वह कह रही है। हे रावण ऐसी शत कोटि रति भी उस कल्याणी भावनी नारी के एक अंग की उपमा के कोट्यांश भी नहीं हो सकती। फिर साधारण नारी जनों की तो बात ही क्या है ? विशात ही क्या है ? भगवती परब्रह्म महसी है। शोभाकान्त वात्सल्य अनुराग छमा, करुणा, दया, प्रेम की मूर्तिमान स्वरूप ही है, और भी श्रीरामतापनीयोपनिषद में कहा है कि—

यो वै रामचन्द्रः स भगवान् या जानकी भूर्भुवः सुवस्तस्यैवै नमो नमः.(२५)

श्रीरामचन्द्र साक्षात् भगवान हैं और देवी श्री जानकी महारानी भूर्भुवः स्वः रूप व्याहृति हैं। इसीलिए उन्हें नमस्कार है। नमस्कार है श्रीराम ही श्री जानकी तत्व हैं। इसी से श्रीराम के सौन्दर्य में जो प्रकाश है, तेज है, कान्ति है—द्विति है। वही श्री जानकी जी हैं। सुन्दर काण्ड में जिस कुन्तला कुल कपोल सुन्दर श्रीसीता महारानी के रूप और गुण तथा दिव्य आदर्श गुणों का विकास हुआ है। वह क्या जागृत ? क्या स्वप्न सुसुप्ति सर्वदा श्रीराम के चरण कमलों में समर्पण किये हुए हैं। इसीलिए कहा भी गया है कि—

सुन्दरे सुन्दरो रामः

परन्तु भगवती के जिस रूप का दर्शन परमवीर महावीर श्री हनुमान जी महाराज को लंका के अशोक वाटिका में प्रातःकाल हुआ था। वे भिन्न हैं। श्रीजनकपुर तथा श्री अवध के रूप से भी भिन्न है।

एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्वरधारिणीम्।
भूमौ शयानं शोचन्तीं राम रामेति भाषिणीम् ॥

श्रीहनुमानजी महाराज ने भगवती जगदम्बा 'भूमिसुता देवी श्री जानकी जी को इस रूप में देखा। मानो इस पृथ्वी तल पर कोई देवाङ्गना उतर आयी हो। वे एक वेणी धारण किये हुए थीं। उनका शरीर दुर्बल था। आकृत्ति दीन थी। मलिन वस्त्र पहिने हुए थी। पृथ्वी पर लेटी थी। सोच में पड़ी हुयी थीं और श्रीराम, राम का रट लगाये हुए थी।

श्राहारः

श्रीरूपदर्शन

इस रूप में जगमंगल कारिणी शुभे श्रीसीता जी महारानी एक का दर्शन था। प्रथम दर्शन वीर श्री राम भक्त बजरंगी को हुआ था। भगवती श्रीसीता देवी के आदर्श के भिन्न-भिन्न रूप उन भाग्यशाली पुरुषों ने दर्शन किया था। श्री अवधवासी पहली बार सम्पूर्ण श्रृङ्गार युक्त अनन्त वैभव ऐश्वर्य शालिनी श्रीसीता जी महारानी को श्रीजनकपुर से भव्य-दिव्य डोली में श्री अवध के प्रांगण में प्रथम दर्शन किया था वे सब इस रूप माधुरी पर कृतार्थ हो गए थे और धन्य-धन्य कह उठे थे। इतना ही नहीं—

सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥

श्रीअवधवासी डोली पर पड़ा हुआ ओहार बार-बार उघार-उघार कर अंशों के सहित भगवती जगदम्बा श्रीसीता देवी को देख-देखकर अपार सुख समुद्र में डूब रहे थे। श्री अवधपुरबासियों की दशा तो बरात को वापस आया देखकर विचित्र सी हो रही थी। सब कुछ भूल से गये थे।

देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥
कौसिल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तन दसा बिसारी॥

दिये दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाय पदारथ चारि॥

मोद प्रमोद मुदित मन माता। चलहिं न चरन सिथिल भये गाता॥
राम दरस हित, अति अनुरागी। परिछन साजु सजन सब लागी॥
विविध विधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रां साजे॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मदित महीपति सहित समाजा॥

होंहि सगुन बरषहिं सुमन, सुर दुंदुभी बजाइ ।
विबुध बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ ।।

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंद - मगन महतारी ।।
पुनि-पुनि सीय राम छवि देखी । मुदित सफल जग जीवन लेखी ।।
सखी सीय मुख पुनि-पुनि चाहीं । गान करहिं निज सुकृत सराहीं ।।

श्रीअवधपुरवासी इस दिव्य दर्शन छटा को देखकर विभोर हो गये और अपने-अपने भाग्य को सराहने लगे और अपने अनन्त जन्मों के पुन्य को सादर स्मरण करने लगे । वह धरणी वे नागरिक जन तथा वे नागरिक जन सब धन्य हो गये ।

श्रीहरिः

श्रीदर्शनलाभ

इस दर्शन लाभ से वे ऐसा अनुभव करने लगे —

पावा परम तत्त्व जन जोगी । अमृतु लहेउ जन संतत रोगी ।।
जनम रंक जनु पारस पावा । अंधहि लोचन लाभु सुहावा ।।
मूक बदन जनु सारद छाई । मानहुँ समर सूर जय पाई ।।

एहि सुख ते सत कोटि गुन, पावहि मातु अनंदु ।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आए रघुकुल चंद ।।

देव पितर पूजे बिधि नीकी । पूजीं सकल बासना जी की ।।
सबहिं बंदि मागहिं बरदाना । भाइन्ह सहित राम कल्याना ।।

मानो उन्हें सब कुछ ही मिल गया है । वे पूर्ण काम हो चुके हैं । अब कुछ पाना शेष नहीं रह गया है । भगवती त्रिभुवन सुन्दरी विश्व मोहिनी जगदम्बा श्रीसीता महारानी जी के उस रूप सुख का थोड़ा अनुभव तो सुनकर—आप सब उदार आस्तिक धीरजवान इस धर्म सभा में उपस्थित श्रोताजनों को भी होगा । मेरा तो शरीर पुलकायमान होकर हर्षातिरेक से भर गया । यह अवसर और इस लेखनी वाणी विचार खोज सब कृतार्थ धन्य होते जा रहे हैं । अब जरा महाराज चक्रवर्ती सम्राट धर्मात्मा श्रीदशरथ जी महाराज के सुख का भी आप सब थोड़ा अनुभव करते चलिए। ताकि यह जगमंगलकारणी कथा-सरिता अपने दोनों किनारे को छूती हुयी तथा सम्पूर्ण तरंगों से युक्त निर्मल सदा गतिमान होकर चले । कोई तट किनारा अछूता न रह सके—

सब विधि सबहिं समदि नर नाहू । रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू ।।
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे । सहित वधूटिन्ह कुअँर निहारे ।।
लिए गोद करि मोद समेता । को कहि सकइ भयऊ सुखु जेता ।।
वधू सप्रेम गोद बैठारीं । बार बार हियँ हरषि दुलारीं ।।
देखि समाजु मुदित रनिवासू । सबके उर अनंद कियो बासू ।।
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू । सुनि सुनि हरषु होत सब काहू ।।
जनक राज गुन सीलु बड़ाई । प्रीति रीति संपदा सुहाई ।।
बहु विधि भूप भाट जिमि बरनी । रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ।।

सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति ।
भोजन कीन्ह अनेक विधि घरी पंच गइ राति ।।

नरेश के उस सुख का कोई पारावार नहीं था। सम्पूर्ण ब्याह विधि श्रीमुख से बार-बार सबको सुनाया । राजा जनक रामजी के शील विनय बड़ाई को महाराज श्री ने भाँट की भाँति बारम्बार बखान किया और फिर माता भाग्यवती पुत्रवती श्रीकौशिल्या जी को, आयी हुयो नई बहुओं के प्रति आदेश उपदेश देते हुए सबको भविष्य के लिए समझाते हैं कि इन सबके साथ कैसा व्यवहार करना है—

बधू लरिकनीं पर घर आई । राखेहु नयन पलक की नाई ।।

लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ ।
अस कहिगे विश्राम गृहँ राम चरन चितु लाइ ।।

महाराज श्री सबको सयन कराने का आदेश देकर स्वयं विश्राम गृह में पधार गये । भगवती अम्बा कौशिल्या जी महारानी ने सबको सुला दिया तो बैठकर श्रीरघुकुल कमल दिवाकर श्रीराम के जगमंगल अनुपम दिव्य चरित्रों का मनन करने लगी । सभी सुचि माता जन आपस में विचार करते लगीं—कभी श्रीराम को देखती कभी छविमती सुन्दरो भगवतो श्रीसोता देवी को देखतीं । सभी चरित्र सुनकर चकित थकित हो गईं ।

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम वचन सब माता ॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि विधि तात ताड़का मारी ॥

घोर निसाचर विकट भट, समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी ॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥
मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठि पवि कूटि कठोरा। नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा ॥
विस्व विजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई ॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपाँ सुधारे ॥
आज सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधु बदन तुम्हारा ॥
जे दिन गये तुम्हहिं बिनु देखें। ते विरंचि जनि पारहिं लेखें ॥

राम प्रतोषीं मातु सब, कहि विनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुर विप्र पद, किए नींद बस नैन ॥

सुन्दर बधुन्ह सासु ले सोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई ॥

सभी बहुयें माताओं के साथ भुजग की मणि की भाँति शोभायमान होकर सयन कर गई तो भाई आप भगवती श्रीसीता महारानी जी के निर्मल निश्कलंक दिव्य चरित्र का रस सुधा पान कर रहे हैं। जबसे भगवती के पावन शुभ चरणारविंद श्रीअवध के प्रांगण में शोभायमान हुए हैं तब से श्रीअवध के वैभव सुख समृद्धि गुणों में अपार निखार हो गया है।

आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें ॥

इस उत्सव तथा शोभा का मार्मिक वर्णन तो सरस्वती और सहस्र फणाधीश भगवान श्रीशेष भी नहीं कर सकते।

(२५६)

प्रभु विवाँह जस भयउ उछाहू । सकहि न बरनि गिरा अहिनाहू ॥
कवि कुल जीवनु पावन जानी । राम सीय जसु मंगल खानी ॥
ताते मैं कछु कहा बखानी । करन पुनीत हेतु निज बानी ॥

फिर भी अपनी वाणी, विचार, आचार को परम पवित्र मंगल शुभ्र भद्र करने के लिए तथा जगमंगल कल्याण के लिए एवं आप सब धर्म सभा के प्रेमियों के प्रेम प्रवाह वृद्धि के लिए और इस प्रवचन रत्नाकरः को गौरव प्रदान करने के लिए सभी प्राणी मात्र जंगम (स्थावर) के पावन हित के लिए धर्म सम्राट् यति चक्र चूणामणि महापरि ब्राजक श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के इस विनीत नम्र सेवक के द्वारा उन्हीं की वाणी बाटिका से सुन्दर पुष्प चुन-चुनकर उनका यह दास यह प्रसून प्रवचन रत्नाकरः उन्हीं के चरणों के कृपा प्रसाद से लिख रहा है। यह लेखनी उन्हीं के उच्छिष्ट जूठे प्रसाद को पवित्र प्रसाद समझकर सोच-सोचकर याद करके उन्हीं की मंगलमय वाणी को खोज रहा है। यह सब उन्हीं का दिया हुआ है। उन्हीं के चरण कमलों की मंगल प्रेरणा सदा इस सेवक को प्राप्त हो रही है। जो एक साधारण पत्र भी लिखने में घबडाता था। वही उनका सेवक यह लक्ष्मण चैतन्य आज श्रीप्रवचनरत्नाकरः लिख रहा है। जिसमें मंगलायतन श्रीसीताराम प्रभु स्वामी का शुभ ज्योति भरा यश और चरित्र भर जा रहा है। हे श्रीगरुदेव आपके मंगल कल्याण अभिमत फल दातार चरण कमलों में बारम्बार नम्रता पूर्वक साष्टांग दण्डवत प्रणाम है। आपकी सदा ही जय-जयकार हो। प्रभु इस सेवक को धन्य कर गए, कृतार्थ कर गये। आपका यह एक छोटा गुलाम आपकी सदा जय जयकार मना रहा है और आपका ही गुणगान गा रहा है। आपके चरणों के प्रति अनि कृनग्य आभारी है। सदा ही सुभाशीष की आकांक्षी है। आपको कृपा प्रसाद से ही इस सेवक को दिव्यांति दिव्य शक्तियां प्राप्त हयी है। जिनका पूर्ण सुख आपका यह सेवक अहर्निश प्राप्त कर रहा है और पूर्ण सुखी है। हे श्री-श्री गुरुराज जी महाराज संसार के कल्याण के लिए आप जो सेवक को प्रेरित कर रहे हों। उसका ही यह एक रूप श्री प्रवचन रत्नाकरः है। सेवक आपके मंगल चरणारविन्दों में बार-बार बलिहारी जाता है। आप तो विद्या, बुद्धि, त्याग, तप, सदाचार के अनपम महासागर थे। क्या कोई उपमा आपकी बराबरी कर पायेगी। आपके पावन पुण्य की तो कोई चरण धलि नहीं पा सकता। परछाहीं भी नहीं छू सकता, फिर और क्या-क्या गुण गाऊँ। आप तो गुणों के खानि थे। समस्त गुण आप में ही शोभा पाते थे। आप ही हमारे लिए प्रभु ईश्वर थे। आपकी कृपा वर्षिणी स्नेह

दृष्टि, वे गम्भीर वाणी सदा ही गूंजती रहती है। मेरे प्यारे सुधीर श्रोताओं अपने श्रीगुरु महाराज को स्मरण करके जरा तरोताजा नवीन हो जाता हूँ और आप सबको सुनाने के लिए नवीन वस्तु सामग्री भी पा जाता हूँ। यह श्री-श्री गुरुनाथ का ही दिव्य चमत्कार है। आप सब भी मेरे साथ एक बार उन दिव्य विभूति महापुरुष के चरणारविन्दों में मनषा नमन कर लो ताकि कानों में और प्रसस्त जगह भी प्राप्त हो जाय और समझने की निर्मल मति भी प्राप्त हो जाय। जिससे कि कथा रस की बाढ़ आपको अधिक प्रभावशाली बना सके और कानों के द्वारा यह कथा अमृत मन बुद्धि पर छा जाय, भर जाय, कोई जगह शेष न रह जाय। कथा अमृत सागर में आकृष्ट होकर आकण्ठ निमग्न हो जाय, बूड़ जाय, डूब जाय।

श्रीहारः

श्रीगाढ़ानुराग

बन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं—
कैशोर सौरभसमाहितयोगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं,
सन्मानसालि परिपीतपरागपुंजम् ॥

सज्जनो ! भगवती श्रीसीताजी महारानी का आदर्श पावन चरित्र अब आगे और सुनिए । जरा-सावधान हो जाइए । क्योंकि हम उस गाढ़ानुराग का वर्णन प्रारम्भ करेंगे जो "श्री" जी महारानी का श्रीरघुनाथ जी के चरणारविन्दों में था । आपके आनन्द का ही चरित्र सुना रहा हूँ । अब करुणा दुःख के उस भाग का भी चरित्र श्रवण करिए, जो रामायण का एक गौरवशाली अध्याय है तथा "श्री" जी महारानी के आदर्श गुणों का प्रकाश विकास है । श्रीअवधपुरी में सुखपूर्वक काल व्यतीत हो जाने के बाद ही इन दिव्य गुणों को इस संसार में जाना था । यदि वे "श्री" जी सदा ही श्रीअवध के महलों में ही रहतीं तो इन गुणों का पूर्ण विकास कभी नहीं हो सकता था । अतः उन नर-लीला धारणी भगवती श्रीदेवी ने अपने मन से संसार को उत्तम शिक्षा देने के लिए, जगत का मंगल कल्याण करने के लिए, इस पावन-शुचि नर-लीला का विस्तार किया था । पृथ्वी के भार को हल्का करने के लिए देवताओं, मुनियों तथा सन्तों सज्जनों के उद्धार के लिए स्वयं ही अमित कष्ट भोगे थे । समस्त नारी जाति को आदर्श मार्ग पर चलने के लिए ही वे उनकी प्रेरणा श्रोत बनी थी और आज भी बनी हैं और आगे भी सदा बनी रहेंगी । श्रीभगवती की कृपा पूर्वक चरित्र से आज सम्पूर्ण स्त्री जाति का मस्तक गर्व से उन्नत है और वे अपने को धन्य-धन्यी समझती हैं । उस आदर्श चरित्रो क सम्मान पूर्वक गा-गाकर हर्षित पुलकित होतीं है । "आज भी", सुख होती है । रामायण पढ़कर कृतार्थ हो जाती है । क्यों न हों यह जगमंगलकारिणी कथा ही ऐसी है । जो प्राणी मात्र को सुख में सराबोर कर देती है । रिद्धि-सिद्धि की दायिनी सौभाग्य प्रदायिनी यह कथा आज भी वैसी नवीन हैं, जैसी युगों पहले थी और आगे भी सूर्य, चन्द्र, गंगा, यमुना तक यह कथा सम्पूर्ण आर्यावर्त में प्रवाहित रहेगी । इस कथा की गंगोत्री कभी भी गंगासागर में विलीन नहीं होगी । सदा ही प्रखर गतिमान रहेगी और मलिन नहीं होगी ।

गंग अवनि थल तीन बडेरे । ते किय साधु समाज घनेरे ।।

धन्य-धन्य हैं । श्रीभगवती श्रीसीताजी महारानी और धन्य-धन्य है । उनका यह निर्मल पावन दिव्य शुचि पूत चरित्र ।

वनवासके घटनाक्रम में जब श्रीकमल नयन आजानु बाहु श्रीरघुनाथ जी महाराज "श्री" श्रीमहारानी को समझाते हैं कि वन में बहुत कष्ट है । तुम साथ चलने योग्य नहीं हो, तब श्रीभगवती जी मन ही मन सोचती हैं ।

चलन चहत बन जीवन नाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना । विधि करतबु कछु जाय न जाना ।।

और उधर श्रीरघुनाथजी महाराज समझाने लगे ।

कहि प्रिय बचन विवेक मय कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानिकिहि प्रगटि विपिन गुन दोष ।।

मातु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समउ समुझि मन माहीं ।।
राजकुमारि सिखावनु सुनहू । आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहूँ ।।
आपन मोर नीक जौ चहहू । बचनु हमार मानि गृह रहहू ।।
आयसु मोर सासु सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ।।
एहिते अधिक धरम नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ।।
जब-जब मातु करहिं सुधि मोरी । होइहिं प्रेम बिकल मति भोरी ।।
तब-तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी ।।
कहउ सुभायँ सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखऊँ तोही ।।

कितनी उन्नत उत्तम शिक्षा थी। जो युगों बाद भी आर्यावर्त में सादर देखी सुनी जाती है। आज भी सज्जन कुलीन घरों में यही परम्परा विकसित है और होनो भी चाहिए क्योंकि यही नारी जाति के एक कल्याण का सरल उपाय है। कुटुम्ब में प्रेम रसधारा का यही स्रोत है। जीवन दम्पत्ति के सुख का यही मूल है। भगवती श्रीसीता देवी को समझाने के व्याज से श्रीरघुनाथ जी महाराज ने सम्पूर्ण आर्यावर्त के नारियों को ही यह सनातन धर्म का उपदेश दिया है। परन्तु इतना सारगर्भित कल्याणकारी उपदेश सुन करके भी भगवती श्रीसीता देवी ने अपना आदर्श ब्रत नेम नहीं छोड़ा, धीरज नहीं छोड़ा। वन के दुख सुखके निराशा नहीं आयी। अपितु अपने सुख संकल्प को दुहराया –

दीन्ह प्रान पति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुखु जग नाहीं ॥

प्रान नाथ करुना यतन सुन्दर सुखद सुजान ॥
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति विहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन-भारू। जम जातना सरिस संसारू ॥
प्रान नाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुं सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल विधु बदनु निहारें ॥

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम परन साल सुख मूल ॥

यह आदर्शवाणी आज भी अजर-अमर है। वैसी ही नवीन बनी है और वैसी ही प्रेरणास्पद भी है। चन्द्र और चन्द्रिका की भाँति नदी और पानी की भाँति अंग अंगी भाव बताकर, भगवती श्रीसीता जी महारानी श्रीरघुनाथ जी से अपना अभेद अभिन्न सम्बन्ध वता रही हैं। बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब की भाँति कभी बिलग न होने वाली बात याद दिला रही हैं। श्रीअवध के ऐश्वर्य वैभव विलास की ओर तो देख ही नहीं रही है। क्योंकि स्वयं वैभव ऐश्वर्य में तो सदा रही हैं। समस्त सचराचर ब्रह्माण्ड की आदि स्वामिनी भी वे ही हैं। फिर अब वैभव में क्या देख सकती हैं और सुख वैभव उन्हें अपनी ओर कभी भी आकृष्ट नहीं कर सकते। वे स्वयं ही गंगा तट पर मन्त्री वीर सुमन्त्र से कहती हैं। हे सुमन्त्र हमने अपने पिता के घर में बहुत कुछ देखा है।

आरति वस सनमुख भयउँ बिलगु न मानव तात।
आरज सुत पद कमल बिनु वादि जहाँ लगि नात॥

पितु वैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरे॥
ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेंहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसनु देई॥
ससुर एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥

माने दोनों कुल कुलीन थे। दोनों सम्पन्न थे, सुखी थे। भगवती ने लौकिक रीति में भी दुःख का अनुभव नहीं किया था। अतः श्रीराम चरणों से प्रिय उन्हें कुछ भी नहीं लगा और सज्जनो समस्त सुखों को कठोर तिलाञ्जलि देकर श्रीराम यथानुगामिनी बनीं, सच्ची सहचरी बनी और पतिव्रताजन की मुकुटमणि किरीट की भाँति अग्रगामी बनीं। श्रीरघुनाथजी की वीर भुजाओं का इतना दृढ़ भरोसा और कहीं किसी में देखने को नहीं मिलता, ऐसा विश्वास ही उन्हें अजर-अमर बना गया है।

प्रान नाथ प्रिय देवर साथा। वीर धुरीन धरें धनु भाथा॥
नहि मग श्रमु भ्रमु दुःख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें।

और सुमन्त से विनयपूर्वक कहती हैं। आप मेरी चिन्ता तो बिल्कुल ही मत कीजिए।

श्रीहरिः

दूसरा श्री स्वरूप

श्रीअवधपुरवासियों ने एक रूप तो श्रीजनकपुर से आने पर देखा था और एक दिन ऐसा भी आया जब बनवासी उदासी श्रीराम के पीछे-पीछे नंगे पैर धरणी पर चलते देखा। उन पुरवासियों के जिस सुख का वर्णन आप सब सज्जनों को मैंने पहले सुनाया था। अब इस वाणी और इसी लेखनी से इस दूसरे स्वरूप की करुणा भी सुन लीजिए। भाइयों ! समय सदा एक-सा नहीं रहता है। समय के साथ ही सुख दुःख भी आते जाते रहते हैं। जिस सुख की महिमा शेष शारादा श्री गणपति भी नहीं वर्णन कर पाये थे। अब आगे आप सब उस दुःख भरी गाथा को सुनिये और धीरज बनाये रखिए, चित को एकाग्र कर लीजिए। आसनों पर संभल के बैठ जाइये। क्योंकि कथा ही ऐसी है—

देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखे नहि राखहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहर सोच चलहुं बन साथा ॥
नहिं विषाद कर अवसरु आजू। वेगि करहुं वन गवन समाजू ॥

श्री प्रभु ने वन गमन की आज्ञा दे दी हैं और चलने की तैयारी होने लगी है। श्रीसीताराम लक्ष्मण वनवासी वेष में श्री महाराज दशरथ से अन्तिम विदा लेने उनके पास पहुँचे।

सचिव उठाय राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन राम पगु धारे ॥
सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ॥
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ ॥

महाराज दशरथ जी ने श्री रघुकुल नामक श्रीराम को रोकने के लिए बहुत उपाय किये। परन्तु धीर वीर व्रती कमल नयन श्रीराम जब नहीं रुके तो नरेश ने श्रीदेवी सीता महारानी को निकट गोद में लेकर बहुत समझाया कि—

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अति हित बहुत भाँति सिख दीन्हीं ।।
कहि वन के दुख दुसह सुनाए । सासु ससुर पितुसुख समुझाए ।।
सिय मनु राम चरन अनुरागा । घरु न सुगम बनु बिषमु न लागा ।।
औरउ सबहिं सीय-समुझाई । कहि-कहि विपिन विपति अधिकाई ।।
सचिव नारि गुर नारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ।।
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनवासू । करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ।।

सिख सीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि ।
सरद चन्द चंदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ।।

इतनी हितकारिणी मृदु मधुर हितैषियों द्वारा दी गई उत्तम सीख भी भगवती श्रीसीता देवी जी को उसी भाँति प्रिय नहीं लगी, जिस भाँति प्रिय वियोग जनित चकई शरद् चन्द चाँदनी को देखकर मुदित नहीं होती, अपितु, विरह व्यथा के कल्पना से सिहर सी जाती हैं और अपार दुःख सागर में निमग्न हो जाती हैं । वह सुहानी सलोनी चाँदनी रात उसे काटने सी लगती है। शीतल चन्द्र उसे जाज्वल्यमान अग्निपिण्ड के तुल्य प्रतीत होने लगता है । समस्त विकसित तारागण सुइयों की भाँति चुभने लगते हैं। वही दशा श्रीजनक नन्दिनीभगवती श्रीसोता जी महारानो की हो रही थी। बड़ी दुविधा में थी । उन सयानी बड़ो बूढ़ी स्त्री जनों को लज्जा बस कुछ उत्तर नहीं दे पा रही थी। मन को श्रीरामचरणानुराग में अति दृढ़ कर रही थीं । तब तक कैकेई तमक उठी और मुनि पट भूषण आगे लाकर रख दिया —

सीय सकुच बस उतरु न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेई ।।
मुनि पट भूषन भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदु बानी ।।

यह कथा मैं बचपन में एक सन्त प्रवर के मुखारविन्द से सुनी थी। वह यह है। मुनि पट भूषण को देखकर श्रीरघुनाथ जी महाराज अति हर्षित होकर तुरन्त ही धारण कर लिया और श्रीलखन लाल ने भी यही किया। महात्मा जन बलकल वसन किस प्रकार से धारण करते हैं। यह बात राजीव लोचन श्रीराम लषन लाल को खूब मालूम थी। क्योंकि महात्मा की सेवा में ही तो गये थे। विश्वामित्र

की कृपा से ही धनुष तोड़ा था। महात्माओं की मण्डली में बहुत दिन रहे थे। उनकी दिनचर्या से भली भाँति परिचित थे। अतः बल्कल दुकूल परिधान धारण करने में श्रीराम को कोई भी परेशानी नहीं पड़ी, परन्तु; भगवती ने भी बलकल दुकूल उठाया। बहुत मन में सोचा विचारा कि मुनि पत्नियाँ भला यह बल्कल वसन कैसे धारण करती होंगी ? परन्तु; समझ में शीघ्र नहीं आया। कारण, कभी किसी को पहनते तो देखा नहीं था। एक प्रश्न और होता है कि पूछें तो किससे पूछें। अन्ततः श्री नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्ग श्रीरघुनाथ जी महाराज के पास जाकर मुनि दुकूल लेकर खड़ी हो गयीं और धीरे से पूँछा कि प्रभो मुनि पत्नियाँ यह दुकूल किस भाँति बाँधती हैं। सो नाथ मुझे नहीं मालूम है। अतः आप धारण करवा दीजिए—

केहि विधि बाँधत मुनि जन चीरा। हम सो नहिं जानत रघुबीरा॥

परम कारुणीक रघुकुल कंज करुणा वरुणालय दया सागर प्रभु को अति करुणा उमड़ि आई। और स्वयं दुकूल वस्त्र लेकर श्रीकिशोरी जी महारानी को पहिनाने लगे। यह परम कारुणीक दृश्य लोग देख नहीं सके। त्राहि-त्राहि होने लगी तथा ब्रह्मा के मानसिक पुत्र परमज्ञानी धर्मात्मा रघुकुल पुरोहित श्रीवशिष्ठ मुनि ने निषेध किया और कैकेई को धिक्कारा और कहा कि तुमने श्रीराम को ही बनवास माँगा है। श्रीसीतादेवी को नहीं। यथा—

तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरस राम बनवासी॥

अतः श्रीसीता देवी जी महारानी अपने पूर्ण श्रृंगार स्वरूप में ही श्रीराम के साथ जायेंगी। मुनितियवस्त्र नहीं धारण करेंगी, क्योंकि यह सरासर ऐसा अन्याय है।

तब बसिष्ठ मुनि कीन्ह निवारन। सिय नहिं करिहैं मुनि पट धारन॥

समस्त उपस्थित पुरवासियों को थोड़ा धीरज हुआ और अन्त में वह महादारुण घड़ी आई जब श्रीराम मुनि वेश धारण कर श्रीसीता लक्ष्मण सहित श्रीअवध से चल पड़े।

रामु तुरत मुनि वेष बनाई । चले जनक जननिहिं सिर नाई ।।
सजि वन साजु समाजु सब बनिता बन्धु समेत ।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ।।
गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ।।
राम चलत अति भयउ विषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू ।।

हाँ तो सज्जनों ! श्रीअवधपुरवासियों ने एक रूप और एक दिन यह भी देखा जो स्वप्न में भी उनकी कल्पना में नहीं था । सारी खुशियाँ श्रीराम के साथ ही श्री अवधपुरी से विदा हो गयी ।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।।

अपनी आँखों पर कानों पर विश्वास नहीं होता था । कभी सोचा विचारा भी नहीं गया था । श्रीरामजी भी कभी बनवासी होंगे । परन्तु वाह रे विधाता ! यह दिन भी दिखाया और निर्दय होकर देखना पड़ा—

सिय रघुनाथ कि कानन जोगू । कर्म प्रधान सत्य कह लोगू ।।

और उन भाग्यशाली पुण्यवान धर्मात्मा पुरवासियों की दशा अन्त में यहाँ तक पहुँच गयी कि सह नहीं सके, और सब चल पड़े । यथा—

सहि न सके रघुबर बिरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ।।

वे उस रथ के पीछे-पीछे रोते भागने लगे और रथ को घेरकर दौड़ने लगे । सबने पक्का विचार कर लिया कि बिना श्रीसीता रामलखन के सुख कहाँ ? क्योंकि ।

सबहि बिचारु कीन्ह मन माहीं । राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं ।।
जहाँ रामु तहाँ सबुइ समाजू । बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू ।।
चले साथ अस मन्त्र दृढ़ाई । सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई ।।
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही । विषय भोग बस करहिं कि तिन्हही ।।

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवस रघुनाथ।

रघुपति प्रजा प्रेम बस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी ॥
करुना मय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहि पीर पराई ॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहु बिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे ॥

अन्त में श्रीरघुनाथ जी महाराज को ही उपाय कर प्रजा से मुक्त होना पड़ा और जब रात आई थके माँदे रथ के साथ दौड़-दौड़ के चकनाचूर हो गये थे और देव माया वश सभी सो गये थे। तब सचिव से श्रीराम ने कहा—

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥

राम लखन सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु, इत उत खोज दुराइ ॥

सचिव के साथ चातुर्य पूर्ण रथ संचालन के द्वारा रात में ही श्रीरघुनाथ जी चले गये। प्रातः पुरवासियों की दशा का वर्णन बहुत मार्मिक है। जिनके लिए सुर सदन समान गृह श्रीअवध को छोड़कर चल पड़े थे। वे श्रीसीताराम जी महाराज भी चले गये—

रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम-राम कहि चहुँ दिसि धावहिं।
मनहुँ बारि निधि बूड़-जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥

अन्त में जब श्रीराम जी नहीं मिले और उनके रथ की भी कोई निशानी नहीं मिली, तब भारी मन दुखी चित्त रोते बिलखते, सिसकते अपार सन्ताप भरे सब श्रीअवधपुर आ गये।

एहि विधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा।
विषम वियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥

राम दरस हित नेम व्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि॥

भाइयों! श्रीभगवती को किस रूप में श्रीजनकपुर आने पर देखा था और श्रीअवध से बिदाई के समय श्रीअवधपुरवासियों ने यह रूप भी देखा और एक दिन वह मंगल रूप भी देखा। जब लंका जीतकर सुन्दर पुष्पक विमान पर रघुवंश भूषण श्रीराम प्रभु के वाम भाग में विजय "श्री" के साथ भगवती १४ वर्ष बाद सघन नील मेघ में सौदामिनी की भाँति जब पुष्पक विमान पर शोभा शालिनी हुयीं—

सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे तापर॥
राजत राम सहितभामिनी। मेरु श्रृंग जनु घन दामिनी॥

श्री मेरु श्रृंग पर घन दामिनी की भाँति शोभासीन श्रीभगवती जी महारानी को पुनः श्रीअवध पुरवासियों ने देखा, दर्शन किया। जन्म सुफल पाया।

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनसुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥
तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावन पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥
पुनि देखु अवध पुरी अति पावनि। त्रिविध ताप भव रोग नसावनि॥

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपालु प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि-पुनि हर्षित राम॥

सज्जनों ! एक रूप श्रीभगवती का यह भी श्रीअवधपुरवासियों ने देखा जो अपार सुख सम्पतिदाता परमानन्द स्वरूप ही था। पूर्ण ब्रह्मानन्द सुख की अनुभूति उस समय जड़ चैतन्य प्राणीमात्र को प्राप्त हुयी—जिसका वर्णन मूक के मिष्ठान्न सुख स्वाद की भाँति अवर्णनीय है, अकथनीय है।

सीता चरन भरत सिर नावा। अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित वियोग विपति सब नासी ॥

महान् पीड़ा के दिनों का अन्त हो चुका था। परमानन्द सुख सागर साक्षात पधारे थे। श्रीसीता अनुज सहित प्रभु को बहुत दिनों बाद पुरवासियों ने पाया था। अपार कोलाहल मचा हुआ था। हम पहले कि हम पहले प्रतिद्वन्दिता लगी थी।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहिं काला। यथा जोग मिले सबहिं कृपाला ॥
छनमहुँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरमु यह काहु न जाना ॥

इसी प्रकार से सबको सब भाँति सुखी करके श्रीराम प्रभु आगे चले। सामने आते ही चिरकाल से दुःखी सब माताएँ धाय-धायं के दौड़ पड़ीं। श्रीराम प्रभु तो मिले ही, परन्तु; श्रीसीताजी ने भी उत्तम आदर्श निबाहा—यथा

सासुन्ह सबहिं मिली वैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥
देहिं असीष बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता ॥

लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहिं विलोकत मातु।
परमानन्द मगन मन, पुनि-पुनि पुलकित गातु ॥

फिर प्रसन्नता का महासागर ही उमड़-उमड़कर हिलोरे लेने लगा। सब उस अपार सुख राशि में डूब रहे थे। फिर तैयारी में सजावट में लग गये। श्रीअवध चौदह साल से वीरान हो रहा था। पुनः नंदन कानन के समान हो चुका था। फिर सबको अलंकृत किया गया।

सासुन्ह सादर जानकिंहि, मज्जन तुरत कराय ।
दिव्य बसन वर भूषन, अंग-अंग सजे बनाय ।।
राम वाम दिसि सोभति, रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषीं, जन्म सुफल निज जानि ।।
सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनि बृंद ।
चढ़ि विमान आए सब; सुर देखन सुख कन्द ।।

जनक सुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ।।

अब यह आम सुख अचल ध्रुव की भाँति शास्वत हो गया था ।

राजाराम जानकी रानी । आनंद अवधि उमंगि रजधानी ।।

आपने इन रूपों का दर्शन किया है और कान वाणी स्थान सब धन्य-धन्य हो गये हैं ।

श्रीहरिः

आदर्श पत्नी श्रीसीता देवी

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील विनीता ।।
जानति कृपा सिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई ।।
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी ।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई ।।
जेहि विधि कृपा सिंधु सुखमानइ। सोइ कर श्रीसेवा विधि जानइ ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ।।
उमा रमा ब्रह्मादि—वंदिता। जगदम्बा संतत मनिंदाता ।।

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदार विंद रति करति सुभावहि खोइ ।।

आप प्रायः सब समझ गये होंगे भगवती श्रीसीता जी पतिव्रता की साक्षात मूर्ति थीं। श्रीसीता जी वही करतीं; जिसमें श्रीरघुनाथ जी महाराज प्रसन्न रहते। सम्पूर्ण सेवा स्वयं ही अपने हाथों से करती थीं। समस्त परिवार की सेवा भी विनीत भाव से करती थीं। सबको सुख देने वाली ही वाणी बोलती थीं। सबको प्रिय हो वही व्यवहार करती थीं। जिनके दर्शन के लिए लोकपाल, दिग्पाल देवी देवादि देव इन्द्र भी तरसते हैं। लालायित रहते हैं। वही ब्रह्मादि वन्दिता भगवती श्रीसीता देवी श्रीरघुनाथ जी महाराज के चरण कमलों की आदर पूर्वक रत होकर सेवा करती थीं। वह एक मूर्तिमान अनुरागिनी गृहणी के समस्त व्यवहार इस नारी जाति के कल्याण तथा आदर्श के लिए करती थीं। इसीलिए आज कोटि-कोटि जन कोटि-कोटि वर्षों से उनका जगमंगल गुण गान-गाकर सन्तोष, शान्ति, समृद्धि, परलोक प्राप्त कर लेते हैं। श्रीप्रभु के चरण-कमलों में दृढ़ अनुरागिनी होने के कारण हो श्रीसीतादेवी आदर्श पतिव्रता कहलायीं। तीनों लोक चौदहों भुवन में अपनी किरण ज्योति जलायीं। जो आज भी उसी भाँति प्रकाशित हैं। हलाँकि भगवती पर बहुत संकट आये। महान् से महान् हो सकने वाली विपत्तियाँ आयीं। भय आये,

लोभ दिखाये गये । परन्तु हिमालय की भाँति अडिग अचल एक तपस्विनी भारतीय कुलीन प्रतिव्रता नारी की भाँति सह गयीं । सज्जनों ! यह सब रूप श्रीअवधपुरवासियों ने देखा, निहार, आँखों के द्वारा मन बुद्धि चित्त में उतारा था । अब ज़रा एक रूप के दर्शन और कर लीजिए । जो वीर वानर वाहिनी के भटों ने देखा ! वह रूप श्रीअवधपुर वासियों को कभी नहीं दीखा था । वे दिव्य देवताओं के सुचि अंश स्वरूप, वीर योधा वानर रीछ गण जो किष्किन्धा से पैदल चलकर सागर पर सेतु बाँधकर प्राणों को खतरे में डालकर जान को हथेली पर रखकर लंकागढ़ में श्रीभगवती श्री श्रीसीता देवी के लिए राक्षसों के सन्मुख घनघोर युद्ध किया था । बहुतों ने इस भयानक भीषण महायुद्ध में अपने प्राण तक न्योछावर कर दिया था । अपने परिवार, पत्नी, पुत्र, स्वजाति को, घर को त्यागकर प्राणों की भी परवाह नहीं किया था । उन वीर वानरों ने तो श्रीसीता देवी जी का तो दर्शन भी कभी नहीं किया था । हाँ कपिराज सुग्रीव चार सेनापतियों सहित विराजमान ऋष मूक गिरि पर, आकाश मार्ग में जाते विलाप करते किसी कमनीय नारी को देखा था वे निश्चय ही श्रीसीता भगवती ही थीं । पूर्ण विश्वास तो श्रीरघुनाथ जी महाराज के बताने के बाद हुआ था । पदुम अठारह यूथप सहित सम्पूर्ण वीर वानर वाहिनी भटों ने तो कभी भी दर्शन नहीं किया था । या यों कहिए, कि जिनके लिये वे रणभूमि में लड़ रहे थे । उन भगवती विदेहनन्दिनी की तो छाया भी नहीं देखी थी । वे श्रीराम लक्ष्मण के साथ अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर जूझ रहे थे और जब लंका जीत ली गयी । रावण कुम्भकरण सहित सम्पूर्ण निशाचरों का नाश हो गया तो प्रभू ने श्रीदेवराज इन्द्र से कहकर पहले उन सब वीर वानरों को एवं भालुओं को जीवित किया था ।

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे ।।
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना । सकल जिआउ सुरेस सुजाना ।।
सुधा बरषि कपि भालु जिआए । हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ।।

जब किष्किन्धापुरी से जितनी सेना चली थी । सब वीर त्यागी भालू जीवित होकर अपनी-अपनी पूर्ण अवस्था में होकर श्रीरघुनाथ जी महाराज के चरणों में प्रणाम नमन किया । प्रभु ने अपनी अमृत कृपा वर्षिण दृष्टि से सबको देखा और सुख सन्तोष प्रदान किया और श्रीराम ने अपने प्रिय भक्त वीर श्रीहनुमान जी महाराज को आज्ञा दिया कि आप फिर लंका जाओ और सब समाचार जानकी जी को सुनाओ ।

पुनि प्रभु बोलि लिए हनुमाना । लंका जाहु-कहेउ भगवाना ।
समाचार जानकिहि सुनावहु । तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु ।।

श्रीहनुमानजी महाराज श्री की आज्ञा मानकर लंका गये और भगवती श्रीसीता जी महारानी क सब सुनाया ।

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा । रघुपति दूत जानकी चीन्हा ।।
कहहु तात प्रभु कृपा निकेता । कुसल अनुज कपि सेन समेता ।।
सब विधि कुसल कोसला धीसा । मातु समर जीत्यो दससीसा ।।
अविचल राजु विभीषन पायो । सुनि कपि बचन हरष उर लायो ।।

छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा ।।
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं ।
रन जीति रिपु दल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ।।

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमन्त ।
सानुकूल कोसल पति रहहुँ समेत अनन्त ।।

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता । देखौं नयन स्याम मृदुगाता ।।
तब हनुमान राम पहिं जाई । जनक सुता कै कुसल सुनाई ।।
सुनि संदेसु भानुकुलभूषन । बोलि लिए जुबराज बिभीषन ।।
मारुत सुत के संग सिधावहु । सादर जनक सुतहिं लै आवहु ।।
तुरतहिं सकल गये जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरी बिनीता ।।
बेगि विभीषन तिन्हहि सिखायो । तिन्ह बहु विधि मज्जन करवायो ।।

बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजिपुनि ल्याए।।
तापर हरषि चढ़ी-बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही।।
बेतपानि रच्छक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा।।
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए।।
कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु।।
देखहुँ कपि जननी की नाई। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाई।।
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे।।
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अन्तर साखी।।

तेहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनतु जातु धानी सब लागीं करै बिषाद।।

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता।।
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।।
सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिवेक धरम निति सानी।।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ।।
देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए।।
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही।।
जौ मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृसानु सब कै गतिजाना। मों कहुँ होउ श्रीखंड समाना।।

छं०—श्री खंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ।।
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे ।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ।।१।।
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो ।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ।।
सो राम वाम विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली ।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ।।२।।

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान ।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ी विमान ।।
जनक सुता समेत प्रभु सोभ अमित अपार ।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार ।।

उन वीर वानरों ने भगवती श्रीसीता जी महारानी को इस रूप में प्रथम बार दर्शन किया था। सम्पूर्ण अग्नि परीक्षा के साक्षी भी कई वीर बानर ही थे और भगवती कुन्दन की भाँति पावक से प्रकट हो गईं। यही आदर्श पतिव्रता पत्नी का गुण है। महान् पतिव्रता शिरोमणि श्री अनुसुइया जी ने भगवती को जो नारि धर्म उपदेश दिया था। वह लोक कल्याण के लिए था। न कि भगवती श्रीजानकी जी महारानी के लिए था। आप सब ऐसा समझिये। उन्हीं के ब्याज से सबको बताया है।

कह रिषि बधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कुछ ब्याज बखानी।
मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुन राजकुमारी ।।

अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेवन .तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी ॥
वृद्ध रोग बस. जड़ धनहीना। अंध वधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखइ कैसे। माता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥
विनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ॥
छन सुखु लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥

सुनि जानकी परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा।

श्री भगवती श्रीराम में इतनी समर्पित थीं कि वे श्रीराम के सिवा भिन्न कार्यों में कभी मन ही नहीं लगाती थीं। वे वनवास के दिनों में छाया के तुल्य श्रीराम प्रभु के साथ रही थीं—

आगे राम लषन बन पाछे। तापस वेष विराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिन सोही॥

आगे-आगे श्रीराम प्रभु चलते थे। पीछे भगवती श्रीसीताजी महारानी चलतीं, और सबसे पीछे श्रीलक्ष्मण प्रभु चलते थे। जैसे ब्रह्म और जीव दोनों अभिन्न हैं। सयुज हैं, सखा हैं। तथा च माया उन दोनों के बीच में रहती है। जिससे ब्रह्म और जीव में भेद प्रतिभासित होती है। गोस्वामी जी महाराज कहते हैं कि उन प्रभु चरणों के प्रति हमारे मन में एक उपमा और आ गयी है। वे इस भाँति से चलते थे। जैसे सुदूर गगन मण्डल में प्रभु चन्द्रमा और उनके पुत्र बुध के बीच में दक्ष कन्या भगवती रोहिणी जी चलती हैं। याने सदा साथ ही रहती हैं। चलने में भी अनन्त श्रद्धा अपार प्रेम झलक रहा है। भगवती श्रीसीता जी महारानी सदा ही नीचे-नीचे नयन किये ही चलतीं हैं। क्योंकि आगे रघुकुल भूषण श्रीराम जी महाराज के श्रीचरण चिन्ह, धरणी पर चिन्ह अंकित करते हैं। भगवती श्रीसीता जी शील लज्जा भय बस श्रीचरणों को बचा-बचाकर रखतीं हैं कि कहीं भूल से श्रीचरण चिन्हों पर मेरा चरण न पड़ जाय। अपने डरी सहमती चलती हैं। वीर पुंगव नर श्रेष्ठ श्रीलक्ष्मण जी महाराज दोनों के चरण चिन्हों को बचाते हैं। और सदा दाहिनी ओर से श्रीसीताजी महारानी और प्रभु श्रीराम का चरण चिन्ह बचा-बचा करके चलते हैं। अर्थात् प्रदक्षिणा करते चलते हैं। कितनी शोभा है। कितना शील, कितनी मर्यादा है, कितना स्नेह है। जिसका वर्णन अनुभव और श्रद्धा से ही देखा और जाना जा सकता है—

प्रभु पद रेख-बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लषन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

चौदह वर्ष पर्यन्त दण्डकारैण्य की घोर कुशकंटकाकीर्ण धरणीं पर वर्षा आतप शीत सहा होगा। वृक्ष के नीचे रात-दिन गुजारे होंगे। पत्तों की छाया में ही घनघोर वर्षा बिताई होगी जिसके कारण ही संसार का कल्याण हुआ। अमिता पावनी गाथा बनी जिसको गाकर, सुनकर, सुनाकर कितनी ही गुणातीत निर्गुण परब्रह्म ही या यों कहिए कि शृङ्गी की न्याय से भी सब श्रीसीता राम मय हो गये :—

सियाराम मय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

सारी सृष्टि ही श्रीसीताराम मय हो गयी। होना भी चाहिए। वे ही प्रभु भगवतीं सहित सृष्टि के आदि मध्य अन्त में निवास करते हैं। वे ही सबके माता-पिता, भगिनी, भ्राता, हितैषी, हितकारी महान्यायवादी हैं। वे ही सबके मंगल हैं। मंगलों के भी मंगल हैं।

श्रीहरिः

आदर्श माता रूप "श्री"

जनक सुता जग जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुना निधान की ॥
ताके युग पद कमल मनावऊँ । जासु कृपा निर्मल मति पावऊँ ॥

सज्जनो ! बिना माता के कभी भी केवल पिता से प्राकृतिक सृष्टि नहीं हो सकती । असम्भव है । अतः सब प्राणियों की कोई न कोई माता अवश्य होती हैं और वे पुत्र और माता एक परस्पर एक होते हैं । उसी के अंशरक्त आत्मा स्वरूप ही पुत्र रत्न होते हैं । यथा धर्मशास्त्रीय वचन—

"आत्मा वै जायते पुत्रः"—

इसलिए परस्पर स्नेह अनुराग सदा ही एक रस प्रगाढ़ रहता है। वात्सल्य रस का आविर्भाव ही माता का पुत्र में होता है । इसलिए प्रथम स्थान भी माता ही प्राप्त करती है । आप सब लोग भी नित्य प्रभु के आगे खड़े होकर हाथ जोड़कर कहते हो कि हे प्रभो ! तुम्हीं माता हो, तुम्हीं पिता हो ।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव"

इसीलिए शास्त्रों में भी माता को पिता से दस गुना बड़ा माना गया है ।

"पितुर्दशगुणामाता गौरवेणाति रिच्यते"

सज्जनो ! यह एक जन्म देने वाली माता का भी मान है । अब जरा सोचो जो संसार की इस मंगल सृष्टि की जन्म देने वाली है । वे ही जगन्माता हैं । जिनसे सृष्टि भी अनन्त बार जन्म लेती है । हमारे आपके जन्म की कौन कहे, उनको महिमा उनका स्नेह उनका वात्सल्य कितना विराट् व्यापक निस्सीम अपरंपार होगा । इसकी कल्पना आप सब सहृदयपुरुषजन ही कर सकते हैं । क्योंकि आप सबकी श्रद्धा उत्तरोत्तर वृद्धि पर है । आप श्रीराम कथा सागर के मध्य में ही हैं । उन जगज्जननी भगवती जगदम्बा करुणामयी, कल्याणमयी, ममता मूर्ति मयी श्रीजानकी जी महारानी की महिमा साधारण अज्ञ जन नहीं जान सकते ।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुमहि, तुमहिं होइ जाई ।।

उनकी कृपा करुणा हो, तभी यह जीव उस महिमा को जान पहिचान सकता है, और उनको प्राप्त भी कर सकता है। दर्शन भी कर सकता है। श्रीभगवती श्रीसीता महारानी भी आदि शक्ति और परा अपरा महाविद्या हैं। वे ही धरणी की अधिष्ठात्री महादेवी हैं । उन्हीं की सामर्थ्य था, जो एक वर्ष पर्यन्त श्रीरघुनाथ जी महाराज की पावन आज्ञा से प्रचण्ड अग्नि में बास किया था। साधारण मानवीय के बस की बात नहीं है।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करब ललित नर लीला ।।
तुम्ह पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करहैं निसाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसेइ रूप सील सुविनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

अपनी छाया वैसी ही बनाकर श्रीभगवती अग्नि में प्रवेश कर गयीं। अध्यात्म रामायण में भी ऐसा ही प्रकरण है।

अथ रामोऽपि तत् सर्वं, ज्ञात्वा रावण चेष्टितम् ।
उवाच सीता मेकान्ते, श्रणु जानकि मे वचः ।।
रावणो भिक्षु रूपेण आगमिस्यति तेऽन्तिकम् ।
त्वंतु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ।।
अग्नावद्रश्यरूपेण वर्षंतिष्ठ ममाज्ञया ।
रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ।।
श्रुत्वारामोदितं वाक्यं सापितत्र तथाऽकरोत् ।
माया सीतां वहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेनिले ।।

(अ० रा० ३।७।१४)

स्वयं भगवती को उठाने ले जाने की बात तो और है। रावण उनको छू भी नहीं सकता था। स्वयं रावण भी ब्रह्मा के साप बश भगवती का हरण करने के पहले चरण वन्दना करता है —

सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥

वास्तव में रावण भी जो शक्ति सामर्थ्य था वह भी भगवती की शक्ति का बन्दना करता था क्योंकि आदि शक्ति ही स्वयं आप हैं।

मां विद्धि मूल प्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधि मात्रेण सृजामिदमतन्द्रिता ॥

(अ० रा० १-४-३४)

मुझ सीता को सर्ग स्थित और अन्त करने वाली मूल प्रकृति जानो। उनके सानिध्य से ही मैं प्रमाद शून्य होकर सब कुछ सृजन करती हूँ। इसलिए वे जगज्जननी हैं।

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥

(अध्यात्म रामायण १-३-३५)

इस प्रकार के सारे कर्म मैं ही करती हूँ। उन्हें लोग श्रीराम में जो वास्तव में निर्विकार एवं अखिल विश्व की आत्मा है। आरोपित करते हैं। श्रीराम कुछ भी नहीं करते। जो कुछ भी होता है। सब माया के गुणों से प्रेरित होता है। वास्तव में जैसे श्रीराम का स्वरूप क्या है।

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। तहँ नहिं मोह निसा लवलेसा ॥

स्वयं सच्चिदानन्द है आनंद सिन्धु है उसी प्रकार श्रीभगवती वैदेही क्या है।

ह्लादिनी संधिनी संवित त्वय्येका सर्व संस्थितौ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥

(श्रीविष्णु पुराण १-१२-६८)

ह्लादिनी संधिनी संवित इन तोनों शक्तियों से युक्त भगवती श्रीसीता जी महारानी ही हैं। इसलिए महर्षि आदि कवीश्वर महामुनि श्रीबाल्मीकि ने अपने सुन्दर अनुपम महाग्रन्थ का राम रामायण या श्रीरामचरित नहीं कहा। अपितु—

कृत्स्नंरामायणे वाक्यं सीतायाश्चरितं महत्।

अर्थात् समग्र श्रीरामायण महाकाव्य श्रीसीता जी महारानी का महान् चरित्र है। श्रीसीता चरित्र महान् हैं। अनुपम है, अद्‌भुत है। सभी नवों रसों से भरा हुआ है। जगमंगल कारक है।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥

अर्थात् पुत्र, कुपुत्र हो सकते हैं। पर, माता कुमाता नहीं होती। पिता फिर भी नाराज हो जाता है, ताड़ना प्रताड़ना भी देता है। पर माता नहीं। यह वर्णन तो साधारण माता का है, फिर भी जगन्माता, करुणा, सौजन्य, अनुराग वात्सल्य, की क्या बात कहना है कि यदि श्री किशोरी जी श्रीरघुनाथ जी महाराज के साथ उस समय होतीं तो, बालि नहीं मारा जाता। जयन्त ने कितना बड़ा अपराध किया था और देवर्षि नारद जी महाराज ने जब उसे पुनः श्रीराम के ही चरणों की शरण ग्रहण करने को कहा तो वह उसी मलीन काग वेष में त्राहि-त्राहि करता शरण में आया। परन्तु गलती फिर किया जब "श्री" चरणों पर गिरा तो चोंच तो भगवती की ओर कर लिया और पूँछ श्रीप्रभु की ओर कर लिया। अति दीन दुःखी त्रसित, भ्रमित, नादान समझकर श्रीभगवती को करुणा उत्पन्न हो गयी और चोंच पकड़कर श्रीरघुनाथ जी महाराज के चरणों की ओर कर दिया। श्रीओजस्वी, तेजस्वी प्रभु को भी दया आ गयी और वध से विरत हो गये। दया करुणा की मूर्ति भगवती की लीला अपार है इसलिए कोई भक्त कहता है कि—

माता मैथिलि राक्षसीस्त्वयि, तदेवाद्रौपराधास्त्वया।
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा, रामस्य गोष्ठी कृता॥
काकं तं च विभीषणं शरण मित्युक्तिक्षमौ रक्षतः।
सा नः सान्द्र महाजसस्सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

हे माता, श्रीमैथिलि राक्षसराज लंकापुरी में अपने प्रतिनित्य नवीन अपराध करने वाली उन राक्षसियों को रुष्ट श्रीहनुमान जी से अनेक हेतु दर्शक वाक्यों द्वारा बिना ही उनके शरण में आये, रक्षा करके अपने रघुकुल तिलक श्रीराघवेन्द्र को समा को अत्यन्त लघु कर दिया । क्योंकि जयन्त तथा विभीषण को तो "मैं आपका हूँ ।" इस प्रकार शरणागत होने पर श्रीरघुनाथ जी महाराज ने रक्षा की थी । पर आपने तो अपने क्षमा गुण की प्रवलता को प्रवलता से शरणागति की उपेक्षा न करके केवल अहैतुकी कृपा से ही रक्षा करती हैं । अतः आप की अहैतुकी क्षमा हमारे सदृश महान अपराधियों को सुखी करे । सभी पर समान अनुगृही जगज्जननी के परम् शुभ लक्षण है । स्वयं श्रीभगवती कहती हैं, हे हनुमान जी कोई पापी हो या पुण्यात्मा वध के योग्य ही क्यों न हो तो भी । हे श्रीहनुमान जी बड़ों (सर्व समर्थ) को तो ऐसे जीवों पर कृपा ही करनी चाहिए । क्योंकि ऐसा एक भी जीव प्राणी नहीं मिलेगा । जिसने कभी न कभी कुछ न कुछ पाप या अपराध न किया हो कोई गंगा जी का धोया नहीं है ।

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।
कार्यं कारुण्य मार्गेण न कश्चिन्नापराध्यति ।।

(वा० रा० युद्ध काण्ड ११३ सर्ग ४४)

एक मेव परम तत्वं चिच्छक्तिवृत्ति भेदेन महासारेण—
प्रेमाख्ये नानादित एको द्विधा विभक्ति तिष्ठति ।।

ह्लाद षडैश्वर्यमयं केवलं ह्लाद मयं च प्रथमं परमेश्वराख्यं द्वितीयं भक्त्याख्यम् ।।

एक ही परम तत्व चित्त शक्ति वृत्ति के भेद से महासार प्रेम के नाम से अनादि काल से दो भागों में विभक्त होकर युगल स्वरूप से सदा ही विद्यमान विराजमान है । एक षडैश्वर्य से संयुक्त ह्लादमय है । दूसरा केवल ह्लादमय है । प्रथम तत्व को परमेश्वर कहते हैं तथा द्वितीय तत्व को भक्ति कहते हैं । श्रीराम ही परमेश्वर हैं । एवं श्रीसीताजी महारानी ही भक्ति हैं । वे भी पराम्बा जगदम्बा अम्बा हैं ।

द्वौ च नित्यं द्विधारूपं तत्त्वतो नित्य मेकता ।
राममन्त्रे स्थिता सीता, सीतामन्त्रे रघूत्तमः ।।

(वृहद्विष्णु पुराण)

अर्थात् दोनों ही लौकिक रूप में दो रूपों में रहते देखते हैं। परन्तु तत्वतः वे एक ही है। श्रीरामजी महाराज के मन्त्र में ही श्रीसीता जी महारानी का मन्त्र है और श्रीसीताजी महारानी के मन्त्र में श्रीरामजी महाराज का मन्त्र है। श्रीसीता राम अभिन्न हैं।

नित्यै वैषा जगन्माता विष्णोः श्री रन पापिनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तमः ।।
अर्थो विष्णुरियं वाणी, नीति रेषा नयो हरिः ।
बोधो विष्णु रियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सन्त्क्रियात्वियम ।
किं चाति बहूनोक्तेन संक्षेपेणेद मुच्यते ।।
देव तिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः ।
स्त्री नाम्नी विज्ञेया, नानर्योविद्यते परम् ।।
एवं यदा जगत्स्वामी देव देवो जनार्दनः ।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्स सहायिनी ।।
राघवत्वेऽभवत्सीता, रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि ।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषाणपापिनी ।।
देवत्वे देव देहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मस्तनुम ।।

भगवान जब-जब अवतार लेते हैं तब-तब श्री "श्री" जी महारानी उनके साथ ही रहती हैं। श्रीहरिनारायण के श्रीराम रूप होने पर वे श्रीसीता के रूप में और श्रीकृष्ण जन्म होने पर श्री रुक्मिणी जी महारानी के रूप में रहतीं हैं। वैसे भी किसी भी अवतार में वे भगवान से पृथक् नहीं रहतो। भगवान के दो होने पर दैवी रूप में और मनुष्य होने पर मानुषी रूप धारण करतीं हैं। श्रीहरि के अनुरूप ही वे शरीर धारण कर लेती हैं। सज्जनों! हम आप सबको भगवती श्रीदेवी के जगज्जननी रूप का वर्णन कर रहे हैं कि वे भी भगवती श्रीजनककिशोरी महारानी श्रीसीता ही जगन्माता है।

त्वं माता सर्वलोकानां, देव देवो हरिः पिता।
त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥

आप सब लोकों की माता हैं, और देवाधि देव श्रीहरि जगत्पिता हैं। आपके और श्रीनारायण के द्वारा ही सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, श्रुतियों ने भी भगवत तत्व में हो भगवती का भी वर्णन किया है। पृथक नहीं माना, अभिन्न परात्पर अद्वैत एक ही माना है। अभिन्न कारण दोनों एक ही है।

श्रीहरिः

श्री जी की प्रथम साक्षी

श्री मङ्गल मूर्ति श्री गणराज महाराज को सादर स्मरण करता हूँ जो सबके कल्याणदाता हैं। शरणागतवत्सल हैं। करुणामूर्ति हैं तथा श्री विद्या वाणी के महासागर हैं। सदा सर्व समय कृपा रूपी मोदक जिनके हाँथ में शोभित हैं जो विघ्न राज विघ्न विनाशक परोपकारी कल्याणकारी हैं। सब पर सदा कृपालु रहते हैं।

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन।
करहुँ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।।

वे श्री बुद्धि राशि शुभ गुन भवन हैं। भगवती श्री अन्नपूर्णा जिन्हें सदा ही अंग में विराजमान रखती हैं जो सदा ही परम कारुणीक वरदायक वरदानी हैं। उन्हींके चरण कमलों में उनका यह भक्त सादर सम्मान पूर्वक साष्टांग दण्डवत प्रणाम करता है और युगल चरणों में बार-बार निवेदन करता है कि हे प्रभो ! इस श्रेष्ठ श्री प्रवचन रत्नाकर को जन कल्याण के लिए पूरा करो। तथा प्रसाद ओज सब रस भर दो। वाणी में, विचार में, आओ प्रभु समा जाओ। ताकि श्रीरघुकुल कमल दिवाकर श्रीसीताराम महाराज श्री के गुणानुवाद गा सकूँ और लिख सकूँ और वह गाया हुआ लिखा हुआ सब जन कल्याण जग मंगलकारी हों।

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।
सो श्रमबादि बाल कवि करहीं ।।

समस्त बुध जन प्रिय शास्त्र सम्मत हित कारिणी श्रीसीताराम गुणगायिनी वाणी प्रदान करो और अपने इस सेवक पर कृपा करो और कथा गङ्गा में सदा ही डुबोये रहो। ताकि लोक परलोक सब बन जाय। श्रीगणराज महाराज आओ सादर मन मन्दिर में सानंद विराजो और पयस्वनी, पुष्करणी निर्झारणी प्रवाहित करो। आप आनन्ददाता सकल कला गुण धाम श्री श्रीशिव जी महाराज के पुत्र रत्न हो तथा सभी शिव गणों के भक्तों के मुकुटमणि हो। यह सेवक श्रीशिव जी महाराज का दासा-

नुदास है और अपने को भी एक कनिष्ट विनयी श्रीरुद्रगण ही समझता है। आप हमारे सबके राजाधिराज हैं। यद्यपि अपराध तो हमसे पग-पग ही बनते रहते हैं तथापि आप माता-पिता एवं राजा हैं। सब क्षमा करो और इस ग्रन्थ को पार लगाओ। सेवक तो परिश्रम हो कर सकता है। पर सफलता सब श्रीचरणों पर ही है। अतः प्रभो! वाणी दो, लेखनी को साहस और मन को शक्ति दो। श्री प्रभु चरणों में मन सदा लगा रहे। सदा ही उनका गुण गान यह वाणी करती रहे तथा सदा ही यह लेखनी श्रीराम चरित्र रत्नाकर से मोती चुनती रहे। यहो अभिलाषा है, श्री चरणों में। और अब श्री भगवती श्रीसीता महारानी के मङ्गलमय कल्याणमय चरित्र को आगे बढ़ाते हुए अपने श्री गुरु महाराज का पावन पुनीत स्मरण करना अनिवार्य हो गया है। श्री महाराज श्री इस कलिकाल में श्रीशङ्कर जी महाराज के साक्षात् अवतार ही थे। जिनकी अजस्र शास्त्र सम्मत मङ्गल वाणी सभी वेद शास्त्रों पर श्रीगङ्गा की धारावत् सदा प्रवाह मान होती थी।

जिनमें सम्पूर्ण अलंकार ही तरङ्गित होते थे। रस ही भवँर समान चकराते मड़राते थे। प्रसाद ओज माधुर्य गुण ही जिसकी निर्मलता थी। व्याकरण शब्द परिष्कार ही जिसका कठोर वेग था। हम सब तटवासी हो उस वाणी गङ्गा के दर्शक रूपी एवञ्च श्रोता थे। उनकी लेखनी समस्त शास्त्रों पर अवाध गति से चलती थी। वेदों से लेकर श्रीरामायण तक महाराज श्री की अपार सामर्थ्यशालिनी एवञ्च लेखनी बारंबार चली है। वे सब सद्ग्रन्थ सम्प्रति साक्षी स्वरूप विद्यमान है। उनकी दिनचर्या, त्याग, तपस्या आदर्श, आस्तिकता, निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास, श्री प्रभु-भक्ति-सदाचार-पवित्रता खान-पान की सुचिता, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास सब अद्भुत-अकथनीय थे। उनका श्री तेज अपरिमित था। उनका ज्ञान अथाह अगम था। वे साक्षात् वृहस्पनि के समान प्रखर वक्ता एवं बाल्मीकि-व्यास के समान ही शास्त्र विवेचक तथा अति कुशल लेखक भी थे। हमारे परम पूज्यनीय सब भाँति से समर्थ श्रीगुरु महाराज थे। जिनके स्मरण मात्र करने से अमङ्गल दूर होते हैं। जो मङ्गलायतन ही थे। जिनकी उपासना, साधना अजस्र प्रवाहमान गंगा की धारा के तुल्य अन्त तक चलती रही। वे सनातन मर्यादा के मूर्तिमान् साक्षात् स्वरूप ही थे। उनकी उपमा तो क्या उनकी श्रीचरण धूलि भी कोई नहीं प्राप्त कर सकता है। वे महानों में महान् थे। विद्वानों में परम् विद्वान थे। ज्ञानियों में महाज्ञानी थे। उपासकों में उपासकशिरोमणि थे। त्याग में दधीचि के समान थे। क्षमा में वशिष्ठ के समान थे। कथा रस के लालित्य के वे साक्षात् शुकदेव जी महाराज के समान थे। परम धीर गम्भीर सागर की भाँति थे। किंवहुना वे सर्व समर्थ थे। सब प्रकार की सिद्धियों के प्रदाता थे। ब्रह्म ज्ञान के श्रोत थे। कर्म काण्ड में एक कुशल निष्ठारत थे। चारो वेद छहो शास्त्र तथा समस्त आर्य ग्रन्थों

के अपने में वे एक ही चतुर कुशल वक्ता थे निर्भयता में सिंह के समान थे। अवैर द्वैष शून्य तथा समभाव में ही रहते थे। वे जीवन मुक्त थे। कूटस्थ आत्म ज्ञानी महान ब्रह्म ज्ञानी थे। भगवती भास्वती सरस्वती सदा ही उन पर दयालु कृपालु बनी रही। निरालसी थे। सदा ही हमने उनको उत्साह सम्पन्न ही देखा था। शुद्ध आस्थावान् आस्तिक थे। ईश्वर पर, शास्त्र पर दृढ़ विश्वासी थे। गऊ ब्राह्मण शास्त्र पर अति आदरवान् थे। कभी भी परनिंदा दोष उनको छू तक नहीं गया था। सदा प्रसन्न मुख रहते थे। कभी उनमें निराशा नहीं देखी गयी थी। वे एक अपने में अद्वितीय अवतारी पुरुष थे। सदा ही निष्काम थे। सदा सर्वदा वे सत्य में ही परिनिष्ठित थे। गुणातीत कलातीत थे। सबके हितैषी हितकारी उपकारी सदाचारी आचार्य विचारवान् थे। कभी भी वे इस धर्म सेतु का लंघन नहीं करते थे। सदा ही सत्य मधुर हित-कारिणी वाणी ही बोलते थे। सदा सम्पूर्ण देश में धर्म उत्थान ही चाहते थे। इसके लिए उन श्री गुरुराज महाराज ने अति कठिन कष्ट उठाये थे। कारागार गये थे। यातनायें सही थीं। विपत्ति भोगा था, तथापि अडिग अचल अविचल बनें रहे।

हे श्री स्वामी जी महाराज आप ज्ञान के साक्षात् सूर्य थे। जिसके प्रकाश में सम्पूर्ण राष्ट्र का घोर अन्धकार भाग गया था। भक्ति सुरभि सुगन्ध बह चली थी तथा हृदय कमल खिल गया था। जिसके हृदय में आज भी आपका वह प्रकाश है उसे दुःख अन्धकार कहाँ? जिसकी ब्रह्म ज्योति आप जला गये। अब उसे कभी कोई बुझा नहीं सकता है। आपकी उसी प्रकाश पुंज से कुण्डिलिनी आदिशक्तियाँ जागृत हो जाती हैं।

आपकी ही अपार कृपा से प्रभु चरणों में अनुराग होता है। हे स्वामी जी श्री गुरु महाराज आप भक्तों के वांछा कल्प तरु के समान हैं। जिसके नीचे जाते ही सभी इच्छाएँ अपने आप पूर्ण हो जाती हैं। एक-एक इच्छा के लिए दुखड़ा नहीं रोना पड़ता। आप ही साक्षात् चिंतामणि के तुल्य थे। जिसको प्राप्त कर लेने पर फिर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता। वह पूर्ण काम आत्माराम हो जाता। आशा इच्छा से मुक्त हो जाता है। सांसारिक विषय वासना उसको छू नहीं सकते, वह शाश्वत सनातन अनादि स्वस्वरूप ही हो जाता है। आपकी चरण कमलों की कृपा से प्रेरणा पाकर इस आपके नम्र सेवक ने यह जगमङ्गल काज विचारा है। आप ही हमको महान् बनाने में लगें हो। आपकी कृपा का जितना भी गुण गाया जाय वह उतना ही कम हैं। हाँ तो सज्जनो! श्रीगुरुदेव महाराज अब आज्ञा देते हैं कि हे प्यारे शिष्य! इस कथा को तन मन एकाग्र करके चित्त को सावधान करके पुण्य को

याद करके श्रीरघुनाथ जी महाराज के चरणों में चित्त लगाओ और कथा रस को आगे बढ़ाओ। आप लोग श्री भगवती महारानी जगदम्बा आदिशक्तिश्रीसीतादेवीजी का पावन मङ्गल चरित्र श्रवण कर रहे हैं। उनका दर्शन प्रथम श्रीजनकपुरवासियों को बेटी के रूप में हुआ। श्रीअवध में आईं तो श्रीअयोध्या वासियों ने मङ्गल और बनवासी दोनों रूप देखा। फिर पुण्य का रूप श्रीसीताराम के दर्शन किए। बानरों ने भालुओं ने अग्नि परीक्षा के रूप में पुण्व दर्शन किया।

अब जरादेव दर्शन भी सुनिए। लंका विजय के बाद जब श्रीसीता महारानी जी पधारीं तो श्रीरघुनाथ जी महाराज ने क्योंकि "श्री" को तो पहले ही अग्नि में प्रवेश करा दिया था। अब प्रकट कराना था। इसलिए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने कुछ कठोर वाणी कही थी।

कथं ह्यस्मद्विधो जातु जानन् धर्मविनिश्चयम्।
परहस्तगतां नारीं मुहूर्त्तमपि धारयेत् ॥२॥
सुव्रत्तामसुव्रतां वाप्यहं, त्वामथ मैथिलि।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा ॥३॥

हमारे समान धर्म को निश्चय जानने वाले परहस्तगत हुई नारी को मुहूर्त भी नहीं धारण कर सकता, नहीं रख सकता, तुम सुव्रत्ति हो या असुव्रती हो, श्वान के द्वारा स्पर्श छवि के समान मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता यह निन्दनीय और त्याज्य है।

ततः सा सहसा बाला तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः।
पपात देवी व्यथिता निकृत्ता कदली यथा ॥

वैसा दारुण बचन सुनकर श्रीसीता जी सहसा मुर्छित होकर वैसे ही गिर पड़ीं जैसे कटी हुयी कदली गिर जाती है।

(२६२)

योऽप्यस्या हर्षसम्भूतो मुखरागस्तदाऽभवत् ।
क्षणेन स पुनर्नष्टो, निःश्वास इव दर्पणे ॥

जो क्षण भर के लिए उनके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ रही थी। वह भी निश्वास से अपहृत (मलिन) दर्पण की भाँति नष्ट हो गयी। अपार दुःख में डूब गयी।

ततस्ते ह्रयः सर्वे तच्छ्रुत्वा रामभाषितम् ।
गतासुकल्पा निश्चेष्टा बभूवुः सहलक्ष्मणाः ॥

श्रीराम प्रभु का यह भाषण सुनकर वीर श्रीलक्ष्मण सहित सब वानर मृत्यु कल्प होकर निश्चेष्ट, से हो गये।

ततो देवो विशुद्धात्मा विमानेन चतुर्मुखः ।
पद्मयोनिर्जगत्सृष्टा, दर्शयामास राघवम् ॥

उसी समय श्रीरघुनाथ जी महाराज के सामने तेजस्वी विमान द्वारा विशुद्धात्मा चतुर्मुख जगत्स्रष्टा पद्मयोनि श्रीब्रह्मा जी आये।

शक्रश्चाग्निश्च वायुश्च, यमो वरुण एव च ।
यक्षाधिपश्च भगवांस्तथा, सप्तर्षयोऽमलाः ॥
राजादशरथश्चैव दिव्यभास्वरमूर्तिमान् ।
विमानेन महार्हेण हँसयुक्तेन भास्वता ॥

इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, सप्तर्षिगण तथा राजा दशरथ बहुमूल्य दिव्य हंस युक्त विमान द्वारा श्री राम जी महाराज के पास आये।

ततोऽन्तरिक्षं नत्सर्वं, देव गन्धर्वसङ्कुलम् ।
शुशुभे तारकैश्चित्रं शरदीव नभस्तलम् ।।

उस समय देवता और गन्धर्वों से संकुल अन्तरिक्ष वैसा ही शोभित हुआ। जैसे शरद् ऋतु में तारकों से युक्त आकाश शोभित होता है ।

तत उत्थाय वैदेही, तेषां मध्ये यशस्विनी ।
उवाच वाक्यं कल्याणी, रामं पृथुलवक्षसम् ।।

उन देवों के बीच उठकर यशस्विनी सीता ने विशाल वक्षस्थल वाले श्री.राम से कहा ।

राजपुत्र न ते दोषं, करोमि विदिता हिते ।
गतिः स्त्रीणां नराणां चश्रणु चेदं वचो मम् ।।

हे राजपुत्र मैं आपको दोष नहीं देती हूँ। क्योंकि आप सभी स्त्री, पुरुषों की गति को जानते हैं। मेरे इस वचन को सुनिये ।

अन्तश्चरति भूतानां मातरिश्वा सदागतिः ।
स मे विमुञ्चतु प्राणान् यदि पापं करोम्यहम ।।

सदा गमनशील—मातरिश्चा वायु सब भूतों के भीतर विचरण करते हैं। वे मेरे प्राणों से, देह से पृथक कर दें। यदि मुझ में पाप हो या मैंने कुछ पाप किया हो—

अग्निरापस्तथाकाशं, पृथ्वी वायुरेव च ।
विमुञ्चतु मम प्राणान्, यदि पापं चराम्यहम् ।।

इसी प्रकार अग्नि जल आकाश पृथ्वी और वायु सब मुझे प्राणों से विमुक्त कर दें। यदि मुझसे पाप हुए हों ।

यद्यहं त्वदृते वीर नान्यं, स्वप्नेऽप्यचिन्तयम् ।
तथा मे देव निर्दिष्टस्त्वमेव हि पतिर्भव ॥

वीर यदि आपको छोड़कर मैंने स्वप्न में भी अन्य का चिन्तन नहीं किया है तो आप ही मेरे देव निर्दिष्ट पति हों ।

ततोऽन्तरिक्षं वागासीत्, सुभगा लोकसाक्षिणी ।
पुण्या संहर्षणी तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥

उस समय अन्तरिक्ष में सब महान् आत्माओं तथा वीर वानरों को हर्षित करने वाली सुभगा लोक साक्षिणी दिव्य वाणी हुयी ।

वायु उवाच—

भो भो सत्यं वै वायुरस्मि सदागतिः ।
अपापा मैथिली राजन् संगच्छ सहभार्यया ॥

वायु ने कहा मैं सदा गति वायु हूँ । राघव, मैथिली सर्वथा निष्पाप है । राजन् आप उन्हें आदर पूर्वक स्वीकार करें ।

वरुण उवाच—

रसा वै मत्प्रसूता हि भूतदेहेषु भारत ।
अहं त्वा प्रब्रवीमि मैथिली प्रति गृह्यताम् ॥

वरुण ने कहा हे राघव सब भूतों में रस मुझसे ही उत्पन्न होते हैं । तुमसे मैं कहता हूँ । मैथिली को ग्रहण करो ।

ब्रह्मोवाच—

पुत्र नैनदिहाश्चर्यं त्वयि राजर्षिधर्मणि ।
साधो सद्व्रत काकुत्स्थ शृणुचेदं वचो मम ॥

ब्रह्मा ने कहा। पुत्र राजर्षि धर्म युक्त तुमसे ऐसी निष्ठा हो तो आश्चर्य नहीं, हे सुवृत्त हे साधो मेरी बात सुनो—

शङ्कुरेष त्वया वीर देवगन्धर्वभोगिनाम् ।
यक्षाणां दानवानाञ्च, महर्षीणां च पातितः ।।

हे वीर तुमने देवाताओं नागों यक्षों दानवों तथा महर्षियों के इस कंटक (रावण) को मार गिराया।

बधार्थमात्मनस्तेन हृता सीता दुरात्मना ।
नलकूवरशापेन रक्षा चास्याः कृता मया ।।

अपने वध के लिए ही उस दुरात्मा ने सीता को हरण किया था। नल, कूबर के शाप के द्वारा मैंने पहले ही से सीता की रक्षा की व्यवस्था कर रक्खी है।

यदि ह्यकामां सेवेत स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम् ।
शतधास्य फलेन मूर्धा, इत्युक्त, सोऽभवत्पुरा ।।

यदि रावण अकामा किसी भी अन्य स्त्री का सेवन करेगा तो उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। इस प्रकार उसको नल कूबर का शाप था।

श्रुत्वा स्तुति लोकगुरोर्विभावसुः, स्वाङ्के समादाय विदेह पुत्रिकाम् ।
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं, रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम् ।।१९।।
(अ०रा०यु०का० १३ सर्ग १९ श्लोक)

प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं, प्रपन्नसर्वार्तिहरं - हुताशनः ।
गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं, पुरा त्वया मय्यवरोपितां बने ।।२०।।

(२९६)

लोक गुरु भगवान ब्रह्मा की स्तुति सुनकर लोकसाक्षी अग्नि देव ने अपनी गोद में निर्मल अरुण कान्ति से सुशोभित और लाल वस्त्र तथा दिव्य आभूषणों से विभूषित विदेहपुत्री श्रीजानकीजी को लिए (प्रगट होकर शरणागत दुखहारी श्रीरघुनाथ जी से कहा, रघुवीर! पहले तपोवन में मुझे सौंपी हुई देवी जानकी को अब ग्रहण कीजिए।

विधाय मायाजनकात्मजां हरे, दशाननप्राणविनाशनाय च।
हतो दशास्यः सहपुत्रबान्धवै-र्निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो! ॥२१॥
तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी, कृता यदर्थं कृत कृत्यतां गता।
ततोऽतिहृष्टां परिगृह्य जानकीं, रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम् ॥२२॥
स्वाङ्के समावेश्य सदानपायिनीं, श्रियंत्रिलोकी जननींश्रियः पतिः॥
दृष्ट्वाथ रामं जनकात्मजायुतं, श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा।
भक्त्या गिरा गद्गदया समेत्य, कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे ॥२३॥

हे हरे! रावण का प्राण हरण करने के लिए अपनी मायामयी सीता रचकर रावण को उसके पुत्र और बन्धु बान्धवों के सहित आपने मार डाला। हे प्रभो ऐसा करके आपने पृथ्वी का भार उतार दिया। यह प्रतिबिम्ब रूपिणी माया सीता जिस कार्य के लिए रची गयी थीं। उसे पूरा करके अब अदृश्य हो गयीं हैं। अग्नि देव के ये वचन सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने उनका पूजन करके प्रसन्न वदन श्री जानकी जी को ग्रहण किया। फिर श्री लक्ष्मी पति भगवान राम ने अपने से कभी बिलग न होने वाली जगज्जननी श्री जानकी को गोद में बिठा लिया। उस समय श्रीजनकनंदिनी सीता सहित भगवान राम को कान्ति से सुशोभित देखकर देवराज इन्द्र अति प्रसन्न होकर हाँथ जोड़कर गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे।

नात्र शङ्का त्वया कार्या, प्रतीच्छेमां महाद्युते ।
कृतं त्वया महत्कार्यं देवानाममरप्रभ ॥

तुम सीता के विषय में किञ्चित मात्र भी शंका मत करो । हे महाद्युते सीता को ग्रहण करो-अमर प्रभ, तुमने देवताओं का महान् कार्य सम्पन्न किया है ।

दशरथ उवाच—

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पिता दशरथोऽस्मि ते ।
अनुजानामि राज्यञ्च प्रसाधि पुरुषोत्तम ॥

महाराज दशरथ ने कहा मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूँ । मैं आज्ञा देता हूँ । सीता को ग्रहण करो । और राज्य का प्रशासन करो । श्रीराम ने, पिता एवं देवताओं का अभिवादन किया । अविन्ध्य और त्रिजटा को वरदान दिया । ब्रह्मा ने श्रीराम से वरदान माँगने को कहा । तब श्रीराम ने सदा में स्थिति और रण में अपराजेय एवं रण में मारे गये बानरों का पुर्नजीवन माँगा । श्रीसीता जी ने भी श्रीहनुमान जी को वर दिए । हे पुत्र ! श्रीराम की कीर्ति के साथ तुम्हारा अनंत जीवन होगा और मेरे प्रसाद से तुम्हारे लिए दिव्य भोग उपस्थित रहेंगे ।—

राम कीर्त्या समं पुत्र, जीवनं ते भविष्यति ।
उपस्थास्यन्ति हनुमन्निति स्म हरिलोचन ॥
दिव्यास्त्वामुपभोगाश्च मत्प्रसादकृताःसदा ॥

देवता अर्न्तध्यान हो गये । श्रीजानकी के साथ मंगलासीन श्रीराम को देखकर बुद्धिमान् मातलि ने कहा । देव आपने देव, गन्धर्व, यक्ष, मानुष, असुर, पन्नग, सबके दुःखों को दूर कर दिया है । जब तक भूमि रहेगी आपका यश गाया जाता रहेगा । इस प्रकार रघुकुल भूषण श्रीराम का मन, वच, क्रम से सम्मान कर मातलि इन्द्र लोक चले गये । श्रीराम सीता, महात्मा, लक्ष्मण तथा प्रमुख बानर वीरों के साथ श्रीअयोध्या आये । लंका का राज्य भक्त विभीषण को दिया । सज्जनो ! इस प्रकार समस्त वृन्दारक वृन्द तथा सृष्टि समूह के दृश्य अदृश्य प्राणियों ने भगवती की यह प्रथम साक्षी देखी और जन्म सफल किया । देवता तो सदा ही स्वरूप अप्रत्यक्ष होकर देखते ही रहते हैं, परन्तु, सबके समक्ष आये और सबों ने उनको देखा, यह अद्भुत कथा है।

विदेह राजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो ।
तां चकार स्वयं त्वष्टा; रामस्य महिषीं प्रियाम् ।।

श्रीविदेहराज जनक की असाधारण रूपवती पुत्री श्रीसीता जी, जो श्रीरामचन्द्र जी महाराज की अति प्रिया भार्या हैं। उनकी रचना स्वयं सर्व पितामह जगत् रचनाकार स्वयं ब्रह्मा ने ही किया था। अर्थात् वे अद्वितीय थीं, अनुपम थीं। उनका मंगल पावन चरित्र भी अद्वितीय निर्मल पावन पूत शुचि है। सज्जनो ! चरित्र तो जगमंगल निर्मल है ही उसका स्मरण चिंतन, मनन गान ध्यान करने वाले भी निर्मल होकर परम पद के अधिकारी हो जाते हैं। धन्य हैं भगवती श्रीसीता महारानी जी।

मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्त दोषै,
विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि.।।

आप हो ब्रह्मविद्या महा शक्तिस्वरूप तथा सर्व दोष रहित मोक्षार्थी मुनियों द्वारा आप ब्रह्म विद्या रूप से उपस्थित होती हैं।

"देवी त्रयी भगवती भवभावनाय"

भव भवन के लिए आपकी ही त्रयी (बेदत्रयी) एवं शास्त्रोक्त यज्ञादि रूप में भी अभिव्यक्ति होती है। आप मानों सम्पूर्ण शक्ति की शक्ति हैं। सभी विद्याओं की महाविद्या हैं। आप ही ब्रह्म ज्योति स्वरूपा हैं। सम्पूर्ण जगत की बुभुक्षा पिपासा दारिद्रय आदि विपत्तियों का हनन करने वाली आप ही वार्ता, कृषि, गो रक्षा, वाणिज्य आदि विद्या रूप में प्रगट होती हैं। समस्त समृद्धि की परम मूल ही भगवती हैं।

हाँ, तो सज्जनो ! भगवती श्रीसीता जी महारानी की छवि अपार है। जिनकी शोभा को प्रथम बार ही देखते, परब्रह्म परमात्मा श्रीराम भी मन्त्र मुग्ध हो गये थे।

सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, वचन समय अनुहारि ।।

तात जनक तनया यह सोई। धनुष यज्ञ जेहि कारन होई ।।
पूजन गौरि सखो लै आई। करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ।।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।
सो सबु कारन जान विधाता । फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ।।
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ।।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेंहि सपनेहुँ परनारि न हेरी ।।

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान ।
मुख सरोज मकरंद छवि, करइ मधुप इव पान ।।

जब परम सच्चरित्र सदाचार मूर्ति साक्षात ईश्वर की यह दशा है। तब उनकी शोभा तथा महिमा का वर्णन साधारण मति अल्प बुद्धि कौन कैसे वर्णन कर सकता है। जो कुछ भी कहा गया है उनकी कीर्ति यश तथा गुण गरिमा की वृद्धि के लिए ही कहा गया है। अपनो पण्डिताई या बुद्धि विलास या दिमागी कसरत या निज की बड़ाई के लिए अथवा आत्मश्लाधा या आत्म गौरव या पण्डित मानो बनने के लिए नहीं।

अपितु, वाणी, लेखनी, बुद्धि, कुल, जोवन, पल, क्षण दिन, रात को धन्य, धन्य करने के लिए लोक परलोक के सुख कल्याण के लिए ही यह पावन निर्मल धवल पुनीत चरित्र कहा गया है। कुल को परम पवित्र करने के लिए और अपने सब परिवार और आप सब श्रोताओं को पुनोत तथा कृतार्थ करने के लिए ही यह चरित्र सुनाया गया है। कुछ अभिमान बस वृद्धि के लिए नहीं।

राम अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नमानी ।।
जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ।।
विमल कथा हरि पद दायिनी । भगति होइ सुनि अन पायनी ।
भवसागर चह पार जो पावा । राम कथा ता कहुँ दृढ़ नावा ।।

विषइन्ह कहुँ पुनि हरि गुनग्रामा । श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ।।
श्रवन वन्त अस को जग माहीं । जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ।।
ते जड़ जीव निजात्मक घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ।।
हरि चरित्र मानस तुम गावा । सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा ।।

सज्जनो ! यह श्रीसीताराम चरित्र अमृत सागर है । यथा मति आप सब भक्त पुनीत श्रोताओं का प्रेम उत्साह पाकर और अपने परम श्रीगुरु राज महाराज की अदृश्य कृपा शक्ति भक्ति से ही पूरा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ । विशेष तो इस धर्म सभा के आप सज्जन, उदार मति हितैषी परम भक्त श्रोताओं की सुनने को लगन ही मेरी प्रेरणा है और आगे रहेगी ।

श्रीहार:

अंतिम "श्री" साक्षी

रामं विश्वमयं वन्दे रामं वन्दे रघूद्वहम् ।
रामं विप्रवरं वन्दे रामं श्यामाग्रजं भजे ।।
यस्य वागंशतश्च्यूतं रम्यं रामायणामृतम् ।
शैलजासेवितं वन्दे तं शिवं सोमरूपिणम् ।।
सच्चिदानन्दसंदोहं भक्तिभूतिविभूषणम् ।
पूर्णानन्दमहं वन्दे सद्‌गुरुं शंकरं स्वयम् ।।
अज्ञानध्वान्तसंहर्त्री ज्ञानलोकविलासिनी ।
चन्द्रचूडवचश्चन्द्रिकेयं विराजते ।।
अप्रमेय त्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये ।
मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तयेनमः ।।

जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे, त्रिगुणातीत, मलहीन, ज्ञान स्वरूप, और मन, वाणी आदि-आदि के अविषय हैं। उन श्री दक्षिणा मूर्ति भगवान् श्रीसाम्ब सदा शिव को बारंबार नमस्कार है। प्रणाम है। भगवती परम साध्वी सती शिरोमणि जगदम्बा श्रीसीता महारानी श्रीगंगाजल जल से भी अगणित कोटि गुणी परम पवित्र शुचिमान हैं। जिस प्रकार श्रीलक्ष्मी जी का श्रीनारायण में भगवती गौरी का श्रीसदा शिव में अनुसूया का महर्षि अत्रि में शची का देवराज इन्द्र में सुवर्चला का प्रभु सूर्य में रोहिणी का, चन्द्रमा में मदयन्ती का सौदास में दमयन्ती का, राजा नल में अरुंधती महर्षि वशिष्ठ में परम अनुराग है। उसी प्रकार या उससे भी श्रेष्ठतम् प्रबल प्रतिव्रत भगवती श्रीसीता का श्रीराम में गाढ़ानुराग है। श्रीसीताराम की मनोहर जोड़ी का सदा भूतल धाम में पवित्रता से यश गाकर प्राणी धन्य-धन्य होते आये हैं। यह दिव्यचरित्र पावन पूत परम शुचि है। भगवती माता श्रीसीता महारानी ने उन राक्षसियों को फटकारते हुए कहा था।

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितु मर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥८॥

(वा० रा० सुन्दर काण्ड सर्ग २४ श्लोक ८)

एक मानव कन्या किसी राक्षस की भार्या नहीं हो सकती। तुम सब लोग भले ही मुझे खा जाओ। किन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती।

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥९॥

मेरे पति दीन हों, या राज्यहीन वे ही मेरे स्वामी हैं। वे ही मेरे गुरु हैं। मैं सदा उन्हीं में अनुरक्त हूँ और रहूँगी, जैसे सुवर्चला सूर्य में अनुरक्त रहती हैं। हे दुष्ट राक्षसियों तुम प्रलोभन या भय से मेरे मन को विचलित नहीं कर सकती हो।

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥१०॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥११॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पति मनुव्रता ॥१२॥
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ॥

जैसे महाभागा शची इन्द्र की सेवा में उपस्थित होती हैं। जैसे देवी अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ में रोहिणी, चन्द्रमा में लोपा मुद्रा अगस्त में सुकन्या, च्यवन में, सावित्री सत्यवान में श्रीमती कपिल में, मदयन्ती सौदास में केशनी सगर में तथा भीम कुमारी दमयन्ती अपने पति निषध नरेश नल में अनुराग रखती है। उसी प्रकार मैं अपने पति देव इक्ष्वाकुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीराम में अनुरक्त हूँ।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।

रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ।।१०।।

(वा० रा० सर्ग २६ श्लोक १०)

उस लोक निंदित निशाचर रावण को तो मैं बायें पैर से भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहने की तो बात ही क्या है।

छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता ।

रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ।।१२।।

राक्षसियों तुम्हारे देर तक बकवाद करने से क्या लाभ, तुम मुझे छेदो, चीरो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो आग में सेक दो अथवा सर्वथा जलाकर भस्म कर डालो, तो भी मैं रावण के पास नहीं फटक सकती।

कामं मध्ये समुद्रस्य, लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा ।

न तु राघव वाणानां गतिरोधो भविष्यति ।।१७।।

(वा० रा० सु० सर्ग २६-१७ श्लोक)

यह लंका समुद्र के बीच में वसी है। अतः किसी दूसरे के लिए यहाँ आक्रमण करना भले ही कठिन हो किन्तु श्रीरघुनाथ जी के बाणों की गति यहाँ भी कुण्ठित नहीं हो सकती है। सज्जनो! भगवती की महिमा का जितना भी गुणगान किया जाय उतना ही कम है। अब मैं उस महादारुण प्रसंग को जिसे कई दिन से टालता रहा हूँ, प्रारम्भ करना चाहता हूँ। इस प्रसंग को याद करते ही कलेजा फटा जा रहा है। वाणी अवरुद्ध हो रही है। लेखनी कांप रही है। नयन अविरल अश्रु धारा प्रवाहित कर रहे हैं। मन में महती करुणा भर रही है। लिखने का उत्साह नहीं हो रहा है। भगवती का अन्तिम तिरोभाव तथा वह घड़ी, वह साक्षी लिख नहीं रहा है। हृदय अपार पीड़ा से भरा जा रहा है। हे भगवती जगदम्बा माता सीताजी महारानी! मुझको माफ करो। आप मेरी परम पूजनीया सगी माता हो। आपके इस अद्भुत चरित्र का आपका यह एक नादान पुत्र वर्णन कर रहा है। जहाँ भूल हो, त्रुटि हो, क्षमा करके अपनी कृपा से सुधार देना। सज्जनों! लंका जीतकर समस्त सुयश अर्जित कर श्रीराम प्रभु राज्य सिंहासनारूढ़ हो गये तो समस्त प्राणी मात्र अपार सुख संविद से भरकर पूर्ण परिपूर्ण हो गये। श्रीराम अपने सुन्दर राजभवन में सुख पूर्वक रहने लगे। वह भवन इन्द्र के नन्दन कानन में अति श्रेष्ठ तथा श्रीकुबेर के चैत्र रथ उपवन से कोटि-कोटि गुणा अधिक रमणीय सुन्दर शोभा धाम था।

मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः ।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताव् ।।
(वा० रा० ४२ सर्ग १२ श्लोक ३० का)

दूसरों के मन को लुभाने वाले पुरुषों में श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीराम, सदा उत्तम वस्त्राभूषणों से भूषित हुई रमणियों को उपहार आदि देकर सन्तुष्ट रखते थे।

सतया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह ।
अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा ।।२२।।

उस समय भगवान श्रीराम श्रीसीतादेवी के साथ सिंहासन पर विराजमान हो। अपने तेज से अरुन्धती के साथ बैठे हुए वशिष्ठ जी के समान शोभा पाते थे।

एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ।
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् ।।२३।।

यूं श्रीराम प्रतिदिन देवता के समान आनंदित रहकर देवकन्या के समान सुन्दरी विदेह नन्दिनी श्रीसीता के साथ रमण करते थे।

तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम् ।
अत्य क्रामच्छुभः कालः शैशिरो भोगदः सदा ।।२४।।
प्राप्तयोर्विविधान्भोगनतीतः शशिरागमः ।।

इस प्रकार श्रीसीता और श्रीरघुनाथ जी चिरकाल तक विहार करते रहे। इतने ही में सदा भोग प्रदान करने वाला शिशिर ऋतु का सुन्दर समय व्यतीत हो गया। भाँति-भाँति के भोगों का उपभोग करते हुए उन राज दम्पक्ति का शिशिर काल बीत गया।

पूर्वार्द्धे धर्मकार्याणि कृत्वाधर्मेण धर्मवित् ।
शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ।।२६।।

धर्मज्ञ श्रीराम दिन के पूर्व भाग में धर्म के अनुसार धार्मिक कृत्य करते थे और शेष आधे दिन अन्तःपुर में रहते थे।

सीताऽपि देव कार्याणि कृत्वापौर्वाह्णिकानि वै ।
श्वश्रूणामकरोत्पूजां सर्वासाविशेषतः ॥२८॥

श्रीसीताजी भी पूर्वाह्न काल में देवपूजन आदि करके सब सासुओं की समान रूप से सेवा पूजा करती थीं।

अभ्यगच्छत्ततो रामं विचित्राभरणाम्बरा ।
त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥२९॥

तत्पश्चात् विचित्र वस्त्राभूषणों से विभूषित हो श्रीरामचन्द्र जी के पास चली जाती थी। ठीक उसी प्रकार जैसे स्वर्ग में शची सहस्राक्ष इन्द्र की सेवा में उपस्थित होती हैं।

दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥३०॥

इन्हीं दिनों श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी पत्नी को गर्भ के मंगलमय चिन्ह से युक्त से देखकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और कहा—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा"।

अब्रवीच्च वरारोहां सीतां सुरसुतेमाम् ।
अपत्यलाभो वैदेहि त्वय्ययं समुपस्थितः ॥३१॥
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव ॥

फिर वे देव कन्या के समान सुन्दरी श्रीसीता जी से बोले—विदेहनंदनी ! तुम्हारे गर्भ से पुत्र प्राप्त होने का यह समय उपस्थित है। वरारोहे ! बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है ? मैं तुम्हारा कौन सा मनोरथ पूर्ण करूँ ?

स्मितं कृत्वा तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ॥३२॥
तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ।
गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥३३॥
फलमूलाशिनां देवपादमूलेषु वर्तितुम् ।

एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिनाम् ।।३४।।
अप्येकरात्रि काकुत्स्थ निवसेयं तपोवने ।

इस पर श्रीसीता जी ने मुस्कराकर श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे रघुनन्दन ! मेरी इच्छा एक बार उन पवित्र तपोवनों को देखने की हो रही है। देव ! गंगातट पर रहकर फल मूल खाने वाले जो उग्र तेजस्वी महर्षि हैं, उनके समीप (कुछ दिन) रहना चाहती हूँ। काकुत्स्थ ! कुल भूषण फल-मूल का अहार करने वाले महात्माओं के तपोवन में एक रात्रि निवास करूँ। यही मेरी इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा है।

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ।।३५।।

अनायास ही महान् कर्म करने वाले श्रीराम ने श्रीसीता की इस इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की और कहा—विदेहनंदिनी ! निश्चिन्त रहो, कल ही वहाँ जाओगी, इसमें संशय नहीं है।

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
मध्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम सुहृद्वृतः ।।३६।।

मिथिलेश कुमारी श्रीजानकी से ऐसा कहकर काकुत्स्थ कुलनंदन श्रीराम, अपने मित्रों के साथ, बीच के खण्ड में चले गये।

(वा रा० उ० सर्ग ४२ श्लोक २२ से ३६ तक)

यहीं से भूमिका बन रही है, होनहार होकर ही रहता है। ब्रह्मज्ञानी महर्षि बाल्मीकि की वाणी तथा भावी अपना रूप इस भाँति विस्तार करती है। देव विधान का उल्लंघन असम्भव है। होनी अपनी होभाँति मति तैयार करती है। आगे का मंगल चरित्र तपोवन में ही होना था। इसलिए भगवती की इच्छा भी वैसी ही हो चली।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसेइ मिलत सहाय ।
आप न आवै ताहि पर, ताहि तहाँ लै जाय ।।
अवश्यं भाविनो भावाः भवन्ति महतामपि ।

यदि अनहोनी नहीं होती तो भगवती को गर्भावस्था में और एकान्त श्रीगंगातीर के ऋषि मुनियों के आश्रम को देखने की उत्कण्ठा क्यों होती।

अवश्यंभावि भावानां प्रतीकारो भवेत् यदि।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन् नलरामयुधिष्ठिराः॥

यदि होनहार (भावी) का अवश्य कोई प्रतिकार कर सकता तो नल, श्रीराम, युधिष्ठिर आदि महापुरुष परम समर्थशील होते हुए भी भावी के वशीभूत होकर नाना प्रकार के अपार दुःख नहीं झेलते। अतः होनहार दुस्तर है।

विधि विधान कभी टलता नहीं। हठ किसी जन का चलता नहीं।
नियति ने वह योग मिला दिया। कि जिसने विष का विषदा किया॥

इस दारुण गर्भावस्था में भगवती को सुरक्षित महल में रहना चाहिए। परन्तु भावी वश ही ऐसी बुद्धि आ गयी। धन्य है, विधाता को, जो ऐसी मति देते हैं और अपना अटल लेख पूरा कर देते हैं।

अनहोनी होती नहीं, होनी होइ सो होय।

अतः सज्जनो! हम तो यहाँ की इस भावी घटना को दैव से भी बलवान ही समझ रहे हैं। क्योंकि वलीयसी केवल ईश्वरेच्छा।

कह मुनीस हिमवन्त सुन, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटन हार॥

अतः होनहार के वशीभूत ही श्रीरघुनाथ जी महाराज का गर्भावस्था में पूंछना, और भावी वन देवी होना था। अतः गङ्गातीर वनवासी मुनियों के आश्रम देखने तथा वहाँ रहने की प्रबल इच्छा जागृत होना। सज्जनो! होनहार को खेल ही मानते हैं। अतः आप सावधान होकर इस महा करुणा पूर्ण चरित्र को आगे सुनिये। इस सम्बन्ध में एक जगमंगल कथा का पद्म पुराण में पाताल खण्ड-५७-५८ श्लोक में दिव्य वर्णन है। उसका रहस्य भी एक कथा है। आप भी सुनिये—एक बार बाल्यावस्था में श्रीकिशोरी जी, महाराज जनक के रम्य प्रमदा वन में विहार कर रही थीं। वहीं एक विशाल पुष्पित शाखा पर

सुन्दर रमणीय शुक शुकी विराजमान थे तथा परस्पर श्रीराम कथा कह रहे थे। उस सुन्दर कथा को सुनकर श्रीसीता देवी बहुत प्रसन्न हुयीं और उनसे पूँछा कि आपने यह कथा कहाँ सुनी तो उन दिव्य पक्षियों ने बताया कि व्रह्मावर्त में श्रीगंगा तट पर त्रिकालज्ञ महात्मा बाल्मीकि मुनि का आश्रम है। जहाँ मुनि कुमारों द्वारा नित्य यह कथा गाई जाती है। कथा श्रवण की प्रगाढ़ लालसा वश भगवती ने उन दोनों पक्षियों को पकड़ा लिया और आगे उनसे कथा सुनाने को कहा। आगे रावण द्वारा श्रीसीता हरण होगा, फिर श्रीराम रावण भयंकर युद्ध होगा एवं श्रीराम का राज्याभिषेक होगा। इतना सुनाने के बाद उन दोनों ने प्रार्थना किया कि, हमने आपको श्रीराम कथा पूरी सुना दी, अब हमको कृपा करके विहरण करने तथा स्वछन्द घूमने को मुक्त कर दीजिए। परन्तु भावीवश श्रीकिशोरी जी ने नहीं छोड़ा। फलतः वह गर्भिणी शुकी मर गई और मरते समय दारुण शाप दिया।

अनेकविधिवाक्यैः सा बोधिता नामुचत्तदा।
कुपिता दुःखिता भार्या शशाप जनकात्मजाम् ॥
यथा त्वं पतिना सार्धं, वियोजयसि माभितः।
तथा त्वमपि रामेण, वियुक्ता भव गर्भिणो ॥

अनेक प्रकार से शुकी ने श्रीसीता को समझाया। किन्तु नहीं छोड़ने पर दुःखी और क्रोधित होकर उसने श्राप दिया कि, जैसे तुम मुझे पति से वियोग कराकर दुःखी कर रही हो। ऐसे ही गर्भिणी होकर तुम भी पति वियोग में कष्ट उठाओगी। उसके पश्चात् शुक ने भी शाप दिया। हम जैसे गर्भिणी प्रिया के विरह वियोग में छटपटाकर प्राण छोड़ रहे हैं। इसका प्रतिफल तुमको भी मिलेगा। वही महादारुण शाप अब उपस्थित होने वाला है। सब भावी का ही चमत्कारिक खेल है, जो अब होने जा रहा है। किसी का दोष नहीं है। होनहार प्रबल है, किसी को नहीं छोड़ता।

श्रीहरिः

होनी-अनहोनी

सज्जनो ! होनी होकर ही रहती है। कोई जान भी जाय तो भी विश्वास नहीं होता और प्रतिकार भी नहीं कर सकता।

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सवारन ॥

सोने का मृग श्रीराम मारने गये थे। होनी का ही तमाशा था। फिर पीछे से वीर महात्मा श्रीलक्ष्मण भी चले गये। सिवाय होनहार के कुछ नहीं था। अतः इस दारुण वनवास की कथा को आप उदार सज्जन श्रोता इस समय होनहार ही समझिए। न श्रीराम प्रभु का दोष है, न प्रजाजनों का दोष है। सब करतार की होनहार लीला है जिससे श्रीभगवती को अपार दुःख भोगना पड़ा।

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः।
कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥

(वा० रा० उ० का० ४३ सर्ग १ श्लोक)

वहाँ पर बैठे हुए श्रीमहाराज राम के पास अनेक प्रकार की कथाएँ कहने में कुशल हास्य विनोद करने वाले सखा सब ओर से आकर बैठते थे।

विजयो मधुमत्तश्च काश्यपो मङ्गलः कुलः।
सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्रः सुमागधः ॥२॥

उन सखाओं के नाम इस प्रकार से है। विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि कालिय भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध।

एत्रः कथाः बहुविधाः परिहाससमन्विताः।
कथयन्ति स्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः ॥३॥

वे सब लोग बड़े हर्ष से भरकर महात्मा श्री रघुनाथ जी के सामने अनेक प्रकार की हास्य विनोदपूर्ण कथाएँ कहा करते थे।

ततः कथायां कस्यांचिद्राघवः समभाषत ।
काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥४॥

इस समय किसी कथा के प्रसङ्ग में श्रीरघुनाथ जी ने पूँछा—भद्र ! आज कल नगर और राज्य में किस बात की चर्चा विशेष रूप से होती है ?

मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदा जनाः ।
किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं च लक्ष्मणम् ॥५॥
किं नु शत्रुघ्नमुद्दिश्य कैकेयीं किं नु मातरम् ।
वक्तव्यतां च राजानो वने राज्ये व्रजन्ति च ॥६॥

नगर और जनपद के लोग मेरे श्रीसीता के, भरत के, लक्ष्मण के तथा शत्रुघ्न के तथा माता कैकेई के विषय में क्या-क्या बातें करते हैं ? क्योंकि राजा यदि आचार-विचार से हीन हो तो वे अपने राज्य में तथा वन में (ऋषि मुनियों के आश्रम में) भी निंदा के विषय बन जाते हैं। सर्वत्र उन्हीं के बुराइयों की चर्चा होती है ।

एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
स्थिताः शुभाः कथा राजन्वर्तन्ते पुरवासिनाम् ॥७॥

श्रीरामचन्द्र जी के ऐसा कहने पर भद्र हाँथ जोड़कर बोला—महाराज ! आज कल पुरवासियों में आपको लेकर सदा अच्छी ही चर्चाएँ चलती हैं ।

अयं तु विजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् ।
भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरुषर्षभ ॥८॥

सौम्य ! पुरुषोत्तम ! दशग्रीव—वधसम्बन्धी जो आपकी विजय है। उसको लेकर नगर में सब लोग अधिक बातें किया करते हैं ।

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
कथयस्व यथा तत्त्वं सर्वं निरविशेषतः ॥९॥
शुभाशुभानि वाक्यानि कान्याहुः पुरवासिनः ।
श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानि च ॥१०॥

भद्र के ऐसा कहने पर श्रीरघुनाथ जी ने कहा—पुरवासी मेरे विषय में कौन-कौन सी शुभ या अशुभ बातें कहते हैं, उन सबको यर्थात् रूप से पूर्णणतः बताओ । इस समय उनकी शुभ बातें सुनकर जिन्हें वे शुभ मानते हैं, उनका मैं आचरण करूँगा और अशुभ बातें सुनकर जिन्हेंवे अशुभ समजते हैं, उन कृत्यों को त्याग दूँगा ।

कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयं विगतज्वरः ।
कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥११॥

तुम विश्वस्त और निश्चित होकर बेखट में कहो । पुरवासी और जनपद के लोग मेरे विषय में किस प्रकार अशुभ चर्चायें करते हैं ।

राघवेणैवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः ।
प्रत्युवाच महाबाहुं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥१२॥

श्रीरघुनाथ जी के ऐसा कहने पर भद्र ने हाँथ जोड़ कर एकाग्र चित्त हो उन महाबाहु श्रीराम से यह परम सुन्दर बात कही ।

शृणु राजन् यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम् ।
चत्वरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषुच ॥१३॥

राजन् सुनिये, पुरवासी मनुष्य चौराहों पर, बाजार में, सड़कों पर तथा वन और उपवनों में भी आपके विषय में किस प्रकार शुभ और अशुभ बातें कहते हैं, वह सब बता रहा हूँ ।

दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतुबन्धनम् ।
अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद्देवैरपि सदानवैः ।।१४।।

वे कहते हैं कि श्रीराम ने समुद्र पर पुल बाँधकर दुष्कर कर्म किया है। ऐसा कर्म तो पहले के किन्हीं देवताओं और दानवों ने भी नहीं सुना होगा।

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ।
वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ।।१५।।

श्रीराम द्वारा दुर्धर्ष रावण सेना और सवारियों सहित मारा गया तथा राक्षसों सहित रीछ और बानर भी वश में कर लिए गये।

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ।।१६।।

परन्तु एक बात खटकती है। युद्ध में रावण को मारकर श्रीरघुनाथ जी श्रीसीता को अपने घर में ले आए। उनके मन में श्रीसीता के चरित्र को लेकर रोष या अर्मष नहीं हुआ।

कीदृशं हृदये तस्य सीता संभोगजं सुखम् ।
अङ्कमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ।।१७।।
लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्स्यति ।।१८।।
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनु वर्तते ।।१९।।

उनके हृदय में सीता सम्भोग जनित सुख कैसा लगता होगा ? पहले रावण ने बल पूर्वक सीता को गोद में उठाकर उनका अपहरण किया था, फिर वह उन्हें लङ्का में भी ले गया और वहाँ उनसे अन्तःपुर के क्रीड़ा कानन अशोक वाटिका में रक्खा। इस प्रकार राक्षसों के वश में होकर वे बहुत दिनों रहीं तो भी राम उनसे घृणा क्यों नहीं करते। अब हम लोगों को भी स्त्रियों की ऐसी बातें सहनी पड़ेगी, क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसी का अनुसरण करने लगती है।

एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ।
नगरेषु च सर्वेषु राजञ्जनपदेषु च ॥४३।२०॥

राजन् ! इस प्रकार सारे नगर और जनपद में पुरवासी मनुष्य बहुत सी बातें करते हैं।

तस्यैवं भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत् ।
उवाच सुहृदः सर्वान् कथमेतद्वदन्तु माम् ॥४३।२१॥

भद्र की यह बात सुनकर श्रीरघुनाथ जी अत्यन्त पीड़ित होकर समस्त सुहृदों से पूछा । (आप लोग भी मुझे बतावें), यह कहाँ तक ठीक है।

सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।
प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतन्नसंशयः ॥४३।२२॥

तब सबने धरणी पर मस्तक टेककर श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम करके दीनता पूर्ण वाणी में कहा; प्रभो ! भद्र का यह कथन ठीक है; इसमें तनिक भी संशय नहीं।

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् ।
विसर्जयामास तदा वयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥४३।२३॥
(वा०रा०उ०।४३।२०-२३)

सबके मुख से यह बात सुनकर शत्रुसूदन श्रीराम ने तत्काल उन सब सुहृदों को विदा कर दिया। हां तो प्यारे सज्जनो ! भगवती श्रीसीता जी महरानी के वनवास की यह भूमिका बन गयी है। क्या संयोग की बात है ! उधर अभी-अभी भगवती ने वन ऋषि मुनियों के आश्रम और श्रीगंगातट देखने की तीव्र इच्छा प्रगट किया और इधर सुहृद गुप्तचरों ने अभी ही यह जगनिन्दित समाचार सुनाया। अभी-अभी श्रीराम प्रभु भगवती श्रीसीता देवी के आगे प्रतिज्ञा कर आये हैं कि वैदेही तुम जरूर सबेरे गंगातट जाओगी और इधर यह संयोग बन गया है। देव ही प्रबल दिख रहा है । होनहार अपना मार्ग प्रसस्त कर रहा है। विधि का कालचक्र चल पड़ा है। यह समाचार तो भद्र ने बताया है। परन्तु प्रसिद्ध कथा श्रीअयोध्या के किसी गली में रात्रि के द्वितीय प्रहर के समय एक स्त्री के घोर रोदन और पुरुष के ताड़ने की आवाज सुनकर जब दुर्मुख नाम का गुप्तचर वहाँ पहुँचा तो सुनकर सन्न रह गया, चकित रह

गया। एक धोवी रजक अपनी पत्नी को डाटकर घर से निकाल दिया और उसकी निंदा कर रहा था। पत्नी का दोषमात्र यह था कि वह बिना पति से पूछे ही अपनी माँ की बीमारी सुनकर पीहर चली गयी थी। दो दिन बाद ही चली आयी। इस पर धोवी अत्यन्त क्रोध में भरकर पत्नी को कलंकिनी कहकर घर से निकाल बाहर किया और इसी प्रसंग में वह ऐसी बात भी कही जो न वह करने वाली थी और न कहना चाहिए था।

सिय निंदक अघ ओघ नसाये। लोक विसोक बनाय बसाये ॥

जगज्जननी भगवती परम साध्वी सती शिरोमणि माता श्रीसीता महारानी को उस अकुलीन दुष्ट ने पत्नी के क्रोध वस भगवती की निन्दा करी, और कठोर दुर्वचन भी कही। उस मूर्ख को यह भी नहीं मालूम कि यदि कलश में भरकर गंगाजल भिन्न-भिन्न स्थान ले जाने से अरे कहीं गंगाजल अशुद्ध होता है। श्रीजगन्नाथ मन्दिर के शिखर पर बैठा, मन्दमति काग के स्पर्श से कहीं मन्दिर अशुद्ध होता है—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥
कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ।
चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥
नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्रीलोभी बिभ्रयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥
इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥

(श्रीमद्भागवते ९ स्कन्धे अ० ११ श्लोक ७ से १० तक)

ब्राह्मणों के उपासक, अत्यन्त बुद्धिमान उत्तम कोर्ति भूरि को धारण करने वाले, जो दण्ड देने में समर्थ हैं। किसी समय राष्ट्रध्वनी की गतिविधि को समझने के लिए रात्रि में छिपकर भ्रमण करते हुए श्रीराम ने अपनी भार्या को कहते हुए किसी के मुख से यह बात सुना, हे असनी ! दूसरे के घर में निवास करने वाली, मैं तुमको स्वीकार नहीं करूंगा। जैसे स्त्री लोभी श्रीराम ने श्रीसीता को धारण कर ग्रहण किया, इस प्रकार बहुत से लोगों के द्वारा अत्यन्त दारुण कठोर वाक्य सुनकर पति श्रीराम के द्वारा श्रीसीता को महर्षि श्रीवाल्मीकि के आश्रम में भेज दिया।

(श्लोक ७—१० तक)

यह कथा श्रीमद्भागवत् नवें स्कन्ध की है। इस प्रकार यह अमंगल वार्ता सुनी गयी थी। अब सज्जनो ! एक कथा हमने भी मुनि महात्माओं के द्वारा सुना था। इसी प्रसंग में आप सज्जन वृन्द उसे भी सुन लीजिए। आपके श्रवण उत्साह को निहारं कर श्रीगुरुजी महाराज की कृपा से हमें नयी सूझ उत्पन्न हो रही है तो कथा आप सब उदार सज्जन वृन्द इस नित्य की धर्म सभा के भूषण हैं। अतः सावधानी पूर्वक कही गयी इसी प्रसंग की इस कथा अमृत को भी सुनते चलिए। श्रीराम रघुराज महाराज के बहुत काल बीत जाने पर और श्रीरामराज्य के लगभग अवसान में एक दिन विधिविधान से प्रेरित श्रीकालदेव स्वयं श्रीअयोध्या पधारे और श्रीराम प्रभु से प्रार्थना किया कि प्रभु ब्रह्मा ने हमें आपके पास भेजा है और इस धराधाम के लीला की आयु आपकी अब पूर्ण हो गयी है। अतः ब्रह्मा ने मुझे आपके पास भेजा है। श्रीकालदेव और श्रीराघव का यह बात हो हीं रही थी कि आकाश मार्ग पर स्वयं दशरथ जी महाराज उपस्थित होते हुए श्रीकालदेव से पूंछा, कि क्या बात है। आपके श्रीअवध में पधारने का हेतु क्या है तो श्रीकालदेव ने नम्रता से प्रणाम करते हुए, कहा देव, दश हजार वर्ष की लीला आज श्रीराम प्रभु की अब समाप्त हो चली है। अतः प्रभु विधाता ने हमें भेजा है। तब श्रीदशरथ जी महाराज सबको चकित करते हुए बोले देव ! मेरी आयु के एक हजार वर्ष शेष हैं। अतः श्रीरामचन्द्र जी महाराज को वह मेरी शेष आयु दे दी जाय। इस पर श्रीकालदेव सहर्ष चले गये। यह सब वृतान्त श्रीरघुनाथ जी महाराज के सामने ही हुआ। अतः श्रीरघुनाथ जी जब रात्रि के अन्तः भवन में आये तो खिन्न मलिन मन, विचारमग्न थे। यह अद्भुत दशा देखकर भगवती श्रीसीता देवी ने साग्रह नम्रता पूर्वक विनयवश पूंछा, कि हे देव ! आज आपकी ऐसी चित्तवृत्ति क्यों है। प्रभु ने सारी बात बतायी और कहा। कल प्रातः से ही पूज्य श्रीपिता जी महाराज की आयु हमें भोगनी पड़ेगी। तो हे मते तुम्हारा रहना ठीक नहीं है तो भगवती ने कहा इसमें चिन्ता की क्या बात है। आपका वंश अंश हममें पल रहा है तो आप हमें कृपा करके वाल्मीकि

मुनि के आश्रम श्रीगंगा तट पर हमें पहुँचा दीजिए। आप इसके लिए विषाद मत सहिए, तो भगवती के बनवास की बात पूर्व नियोजित श्रीलीला का ही एक अंश था। यह भी जगमंगल के लिए, नारी जाति के महान् उत्कर्ष के लिए तथा प्रजा के आदर्श भविष्य के लिए, प्राणी मात्र के मनोहर कल्याण के लिए पूर्व में भाषित ऋषि मुनियों की सत्यवाणी को सत्य एवं यथार्थ करने के लिए, उस मंगल लीलाधारी की लीला का ही एक अंश है। संसार इस बात को कम जानता है। उन्हीं की कृपा जिस पर हो वही सही-सही जान सकता है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं-तुमहि होइ जाई॥

उन्हीं की और श्रीसीता जी की कृपा से ही यह सेवक भी यह रहस्य जान गया। कल तो अनन्त तर्क वितर्क उहापोह में हम स्वयं भी थे। परन्तु आज सज्जनों जब अध्यात्म रामायण देखा तो सारे तर्क ढह गये। विवाद लुप्त हो गये। जितने दुःख कलंक पंक थे, सब धुल गये और जो मेरा दृढ़ विचार था वही सत्य हुआ, कल ही हमने अपने मित्र श्रीश्यामनारायण शास्त्री जी जो आज कल कागजनगर में साथ ही हैं। कहा था कि शास्त्रीजी महाराज यह सारी दुःखद घटना (श्रीसीता वनवास) एक पूर्ण नियोजित सुसज्जित घटना है। श्रीरघुनाथ जी महाराज बारंबार चरों से सखाओं से पूछते हैं। उनके भद्र, मंगल, कुशल, कीर्ति वर्धक संदेश, सुनाने पर प्रसन्न न होकर अभीष्ट कहलाना चाहते हैं, और उसी को सुनकर कृतज्ञ होते हैं। अतः इस घटना का आज खासा समाधान मिल गया है। आप सज्जन भी इस घटना को ज्यों का त्यों ही सुन लीजिए—अध्यात्म रामायण के उस प्रकरण की मैं जैसा का तैसा ही आप सब उदार धीरमति श्रोताओं को सादर सुनाये देता हूँ। आप सावधान चित्त से सुनिये जी।

श्रीहरिः

अन्तर "श्री" लीला

अध्यात्म रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ४ के श्लोक ३० से लेकर श्लोक ६३ सर्गान्त तक ये विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः।
गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान् ॥३०॥

राजर्षि भगवान राम एक पत्नीव्रत का पालन करने वाले थे। वे पवित्र चरित्र रामजी लोगों को शिक्षा देते हुए गृहस्थाश्रम के समस्त धर्मों का पालन करते रहे।

सीताप्रेम्णानुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च।
भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया ॥३१॥

साध्वी सीताजी भी उनके हृदय का रुख परखने वाली थीं। उन्होंने अपने प्रेम, आज्ञा पालन, नम्रता, इन्द्रिय संयम, लज्जा और भीरुता आदि गुणों से पति का मन हर लिया था।

एकदा क्रीडाविपिने सर्वभोगसमन्विते।
एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम् ॥३२॥
नीलमाणिक्यसंकाशं दिव्याभरणभूषितम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥३३॥
सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता।
राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे ॥३४॥

एक दिन श्रीरघुनाथ जी अपने क्रीड़ावन के सम्पूर्ण भोगों से सम्पन्न एकान्त दिव्य भवन में सुख पूर्वक बैठे थे। उनके शरीर की आभा नीलमणि के समान थी। वे दिव्य भूषणों से भूषित थे। उनका मुख प्रसन्न एवं भाव गम्भीर था तथा वे विद्युत्पुञ्ज के समान देदीप्यमान पीताम्बर धारण किये थे। उस समय सर्वालंकार सुसज्जिता एवं कमल दल लोचना श्रीसीता जी ने अपने कर-कमलों से श्रीरघुनाथ जी के चरण कमलों की सेवा करते हुए उनसे कहा। (३२ से ३४ तक)

देव-देव जगन्नाथ परमात्मन् सनातन ।।
चिदानन्दादिमध्यान्तरहिताशेषकारण ।।३५।।
देव-देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन्वचः ।
बहुशोऽर्थयमानास्ते बैकुण्ठागमनं प्रति ।।३६।।

हे देवाधि देव ! हे जगन्नाथ ! हे सनातन परमात्मन् ! हे चिदानन्द स्वरूप ! हे आदि, मध्य, अन्त और से रहित सबके कारण ! हे देव ! देवताओं ने आकर मुझसे एकान्त में बहुत कुछ प्रार्थना करते हुए आपके वैकुण्ठ पधारने के विषय में कहा है। (३५-३६)

त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले ।
विसृज्यास्मान् स्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम् ।।३७।।

वे कहते हैं कि तुम चिद् शक्ति से युक्त होकर ही राम हम सबको और अपने सनातन स्थान वैकुण्ठ को छोड़कर पृथ्वीतल में ठहरे हुए हैं। (३७)

आस्ते त्वया जगद्धात्रि रामः कमल लोचनः ।
अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद्रघूत्तमः ।।३८।।
आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथन्नः करिष्यति ।
इति विज्ञापिताहं तैर्मया विज्ञापितो भवान् ।।३९।।

हे जगद्धात्री ! कमल नयन राम सदा तेरे साथ ही रहते हैं यदि तू वैकुण्ठ को पहले ही चली जाय, तो रघुनाथ जी भी वहाँ आकर हमें सनाथ कर देंगे। मुझसे उन्होंने इस प्रकार कहा सो मैंने आपको सुना दिया। (३८।३९)

यद्युक्तं तत्कुरुष्वाद्य नाहमाज्ञापये प्रभो ।
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाब्रवीत्क्षणम् ।।४०।।

हे प्रभो ! मेरा कोई आदेश तो है नहीं। अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें। सीताजी के ये वचन सुनकर रघुनाथ जी ने कुछ देर सोचकर कहा। (४०)

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते ।
कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम् ।।४१।।
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः ।
भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके ।।४२।।

देवि ! मैं यह सब जानता हूँ। उसके लिए मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। मैं तुमसे सम्बन्ध रखने वाले लोकापवाद के मिष से तुम्हें लोक निन्दा से डरने वाले अन्य पुरुषों के समान की भाँति वन में त्याग दूँगा। वहाँ श्री वाल्मीकि जी के आश्रम के पास तुम्हारे दो बालक होंगे। (४१।४२)

इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ।
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात् ।।४३ ।
भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम् ।
पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः ।।४४।।

इस समय तुम्हारे शरीर में गर्भावस्था के लक्षण दिखायी दे रहे हैं और (बालकों के उत्पन्न होने पर) तुम मेरे पास फिर आओगी और लोकों की प्रतीति के लिए आदर पूर्वक शपथ करके तुरन्त ही पृथ्वी के (फटने पर उसके) छिद्र द्वारा वैकुण्ठ को चली जाओगी पीछे मैं भी वहाँ आ जाऊँगा। बस अब यही निश्चय रहा। (४३।४४)

इत्युक्त्वा तां विसृज्याथ रामो ज्ञानैकलक्षणः ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्च संवृतः ।।४५।।
तत्रोपविष्टं श्रीरामं सुहृदः पर्युपासत ।
हास्यप्रौढ़कथा सुज्ञाहासयन्तः स्थिता हरिम् ।।४६।।

एक मात्र ज्ञानस्वरूप भगवान श्रीराम ने श्रीसीता जी से ऐसा कह उन्हें अन्त.पुर को भेज दिया और स्वयं नीति शास्त्र के जानने वाले मन्त्रियों तथा मुख्य-मुख्य सेनापतियों से घिरकर वहाँ विराजनाम हुए। सुहृद गण वहाँ बैठे हुए राम की परिचर्या में लगे हुए थे और हास्योक्ति में कुशल विदूषक गण उन्हें हँसा रहे थे। (४५।४६)

कथा प्रसङ्गात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम् ।
पौरा जानपदा मे किं वदन्तीह शुभाशुभम् ।।४७।।

सीतां वा मातरं वा मे भ्रातृन्वा कैकयीमथ ।
न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि ।।४८।।

तब भगवान राम ने प्रसंगवश विजय नामक एक दूत से पूँछा, मेरे, सीता के, मेरी माता और भाइयों के अथवा कैकेयी के विषय में पुरवासी लोग क्या कहते हैं। मैं तुम्हें अपनी शपथ कराता हूँ कि निर्भय होकर सच-सच कहना। (४७।४८।

इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते ।
कृतं सुदुष्करं सर्वं रामेण विदितात्मना ।।४९।।

किन्तु हत्वा दशग्रीवं सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्वं वेश्म प्रत्यपादयत् ।।५०।।

भगवान के इस प्रकार पूँछने पर विजय ने कहा कि देव, सभी लोग कहते हैं, कि आत्मज्ञानी महाराज ने जो कार्य किये हैं। वे सभी बड़े ही दुष्कर हैं, किन्तु उन्होंने रावण को मारकर सीता को बिना किसी प्रकार का संदेह किए ही अपने साथ लाकर घर रख लिया। (यह ठीक नहीं किया)। (४९।५०)

कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।
या हृता विजनेऽरण्ये रावणेन दुरात्मना ।।५१।।
अस्माकमपि दुष्कर्म योषितां मर्षणं भवेत् ।
यादृग् भवति वै राजा तादृश्यो नियतं प्रजाः ।।५२।।

भला जिस सीता को दुरात्मा रावण निर्जन वन में हर लिया था, न जाने उसके साथ भोग-भोगते हुए उन्हें क्या सुख मिलता है। अब हमें भी अपनी स्त्रियों के दुश्चरित्र को सहन करना पड़ेगा, क्योंकि "जैसा राजा होता है, प्रजा भी उसकी निस्संदेह वैसी ही होती है।" (५१।५२)

श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान् पर्यपृच्छत ।
तेऽपि नत्वाब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः ।।५३।।

ततो विसृज्य सचिवान् विजयं सुहृदस्तथा ।
आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीद् ।।५४।।

उसके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने आत्मीयों से पूछा—उन्होंने श्रीरघुनाथ जी को प्रणाम करके यही कहा कि निस्संदेह ऐसी ही बात है। तब श्रीरामचन्द्रजी ने मन्त्रीगण विजय और अपने सुहृदों को बिदाकर श्रीलक्ष्मण जी को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहने लगे। (५३।५४)

लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् ।
सीतां प्रातः समानीय बाल्मीकेराश्रमान्तिके ।।५५।।

त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण ।
वक्ष्यसे यदि वा किञ्चित्तदा मां हतवानसि ।।५६।।

"भैया लक्ष्मण ! सीता के कारण मेरी बड़ी लोक निंदा हो रही है। अतः तुम कल प्रातः ही सीता को रथ पर चढ़ाकर बाल्मीकि मुनि के आश्रम के समीप छोड़ आओ, इस विषय में यदि तुम कुछ कहोगे तो मानो मेरी हत्या ही करोगे। (५४।५६)

इत्युक्तो लक्ष्मणो भीत्या प्रातरुत्थाय जानकीम् ।
सुमन्त्रेण रथे कृत्वा जगाम सहसा वनम् ।।५७।।

बाल्मीकेराश्रमस्यान्ते त्यक्त्वा सीतामुवाच सः ।
लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ।।५८।।

भगवान की ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण जी डर गये। उन्होंने प्रातः उठते ही सुमन्त्र से रथ जुड़वाया और उसमें श्रीसीता जी को चढ़ाकर वन को चल दिए। बाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास पहुँचते ही उन्होंने श्रीसीताजी को उतार दिया और उनसे कहा कि रघुनाथ जी ने लोकापवाद से डरकर आपका त्याग किया है। (५७।५८)

दोषो न कश्चिन्मे मातंगच्छाश्रमपदं मुनेः ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम् ॥५९॥
सीतापि दुःखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत् ।
शिष्यैः श्रुत्वा च बाल्मीकिः सीतां ज्ञात्वा स दिव्यदृक् ॥६०॥

हे माता ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । अब आप मुनीश्वर के आश्रम पर चली जायें। श्रीसीताजी से इस प्रकार कहकर लक्ष्मण जी श्रीराम के पास तुरन्त हीं चले आये । उस समय सीताजी अत्यन्त दुःखातुरा होकर सामान्य स्त्रियों की भाँति अति विलाप करने लगीं महर्षि बाल्मीकि ने शिष्यों के मुख से जब यह बात सुनी कि एक स्त्री रो रही है तो उन्होंने दिव्य दृष्टि से जान लिया कि वह सीता जी ही हैं ।

अर्घ्यादिभिः पूजयित्वा समाश्वास्य च जानकीम् ।
ज्ञात्वा भविष्यं सकलमार्पयन्मुनियोषिताम् ॥६१॥
तास्तां सम्पूजयन्ति स्म सीतां भक्त्या दिने-दिने ।
ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन योषितः ।
सेवां चक्रुः सदा तस्या विनयादिभिरादरात् ॥६२॥

मुनि भविष्य में होने वाली सभी बातें जानते ही थे । अतः उन्होंने अर्घ्यादि से सीता जी का पूजन किया और समझा-बुझाकर मुनि पत्नियों को सौंप दिया । वे मुनि पत्नियाँ मुनीश्वर के कहने से उन्हें साक्षात परमात्मा की भार्या लक्ष्मीजी जानकर नित्य प्रति भक्तिभाव से उनकी पूजा करतीं, और सदा ही अत्यन्त आदर से नम्रता पूर्वक उनकी सेवा करती थीं । (६१।६२)

रामोऽपि सीतारहितः परात्मा
विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः
सन्त्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो
मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः ॥६३॥

इधर सीताजी को त्याग देने पर जिनके चरण कमलों का मुनिजन सेवन करते हैं। वे विज्ञान चक्षु अद्वितीय, आदि देव परमात्मा राम भी समस्त भोगों को छोड़कर वैराग्य पूर्वक मुनियों के समान रहने लगे। (६३)

तो सज्जनों! आपने यह सुना कि सम्पूर्ण यह जगमंगल लीला एक सुनोयोजित चरित्र की ही झाँकी है। देवताओं की प्रार्थना पर ही प्रभु श्रीवैकुण्ठ धाम छोड़कर इस धराधाम पर पधारें। अतः सभी लीलाएँ देव प्रेरणा से ही हो रही है। अब आप अपने उसी पुराने प्रसंग को सुनिये कि प्रभु ने भद्र के इस प्रकार कहने पर सभा का तो तुरन्त विसर्जन कर दिया और लोक रीति से व्यथित व्यक्ति होकर उसी रात वहीं पर सभी भाइयों को सादर बुलाया और सारा महादारुण संवाद सुनाया और श्रीभगवती को गंगा तीर श्रीबाल्मीकि आश्रम पर श्रीलक्ष्मण जी को छोड़ने की आज्ञा दी। श्रीलक्ष्मण महान् दुःख में डूब गये। जिन परम-पवित्र भगवती श्रीसाध्वी सीतादेवी के लिए महान् अपार सागर पर सेतु बाँधा गया। महान् पराक्रमी दशशीश बीस भुजा वाले रावण का संहार किया गया। जिन भगवती की महात्मा वीर श्रीलक्ष्मण जी महाराज के सामने पावन अग्नि परीक्षा हुयी। आज जो श्रीअवध राज की सम्मानित पटरानी है। तथा भविष्य के रघुवंश की जननी है। उन्हीं को लोकापवाद मीतश्रय से फिर त्यागना किसी को सुहाया? परन्तु सर्वदा श्रीराम की आज्ञा को टाला भी नहीं जा सकता था। फिर राजाज्ञा का उल्लंघन अनुचित था फिर इसमें भी उन मंगलमय प्रभु की कोई अद्भुत लीला ही मानकर वीर श्रीलक्ष्मण तैयार हो गये। श्रीराम प्रभु ने सबको कहा था, कि मेरे जीवन तथा चरणों की सबको शपथ है। यदि मेरी आज्ञा का प्रतिकार या प्रत्युत्तर तक भी दोगे तो समझ लीजिए ऐसा पहले ही कह दिया था। तभी आज्ञा सुनायीं थी।

मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः।
इतोऽद्य नीयतां सीता कुरुष्व वचनं मम ॥२२॥
पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरेऽहमाश्रमान्।
पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम् ॥२३॥

(वा० रा० उ० का० ४५ सर्ग २२ से २३ सर्ग)

यदि तुम लोग मेरा सम्मान करते हो और मेरी आज्ञा में रहना चाहते हो तो अब सीता को यहाँ से वन में ले जाओ। मेरी इस आज्ञा का पालन करो। (२२)

श्रीसीता ने मुझसे पहले यह कहा था कि मैं गङ्गातट पर ऋषियों के आश्रम देखना चाहती हूँ। अतः उनकी यह इच्छा भी पूर्ण की जाय। इस प्रकार कहते-कहते श्रीरघुनाथ जी महाराज के दोनों नेत्र आँसुओं से भर गये। फिर वे धर्मात्मा श्रीराम अपने भाइयों के साथ राजमहल में चले गये। उस समय उनका हृदय शोक से व्याकुल था और वे हाथी के समान लम्बी-लम्बी साँस खींच रहे थे। (२४-२५)

अब सज्जनो ! इस रात्रि के ही प्रभात की प्रतिक्षा करें। जब होत प्रातःकाल वीर श्रीलक्ष्मण मन्त्री सुमन्त्र के साथ भगवती को गङ्गा तट ले चलेंगे और वह कठोर राजाज्ञा पालन करेंगे।

बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड षट् चत्वारिंशः ४६ सर्ग लक्ष्मण का सीता को रथ पर बिठाकर उन्हें वन में छोड़ने के लिए ले जाना, और गङ्गाजी तट पर पहुँचना—

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः।
सुमन्त्रमब्रवीद् वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥१॥

तदनन्तर जब रात बीती और सवेरा हुआ, तब लक्ष्मण ने मन ही मन दुखी और सूखे मुख से सुमन्त्र से कहा। (१)

सारथे तुरगाञ्शीघ्रान्योजयस्व रथोत्तमे।
स्वास्तीर्णं राजवचनात्सीतायाश्चासनं शुभम् ॥२॥
सीता हि राजवचनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम्।
मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥३॥

सारथे ! एक उत्तम रथ में शीघ्रगामी घोड़ों को जोतो और उस रथ में सीताजी के लिए सुन्दर आसन बिछा दो। मैं महाराज श्रीराम की आज्ञा से श्रीसीता देवी को पुण्य कर्मा महर्षियों के आश्रम पर पहुँचा दूँगा। तुम शीघ्र रथ ले आओ। (२।३)

सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः।
रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशय्यया ॥४॥

तब सुमन्त्र बहुत अच्छा कहकर तुरन्त ही उत्तम घोड़ों से जुता हुआ एक सुन्दर रथ ले आये, जिस पर सुखद सय्या से युक्त एक सुन्दर बिछावन भी बिछा हुआ था।

आनीयोवाच सौमित्रिं मित्राणां मानवर्धनम् ।
रथोऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥५॥

उसे लाकर वे मित्रों का मान बढ़ाने वाले वे सुमित्रा कुमार से बोले—प्रभो! यह रथ आ गया। अब जो कुछ करना हो, कीजिए। (५)

एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेश्मनि लक्ष्मणः ।
प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार निरर्षभः ॥६॥

सुमन्त्र के ऐसा कहने पर नर श्रेष्ठ लक्ष्मण राजमहल में गये और श्रीसीताजी के पास जाकर बोले। (६)

त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ।
नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥७॥

देवि आपने महाराज से मुनियों के आश्रमों पर जाने के लिए वर माँगा था और महाराज ने आपको आश्रम पर पहुँचाने के लिए प्रतिज्ञा की थी। (७)

गङ्गातीरे मया देवि ऋषीणामाश्रमाञ्छुभान् ।
शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥८॥
अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अवनेया भविष्यसि ॥८॥

देवि विदेहनन्दिनी! उस बातचीत के अनुसार मैं राजा की आज्ञा से शीघ्र ही गङ्गातट पर ऋषियों के सुन्दर आश्रमों तक चलूँगा और आपको मुनिजन सेवित वन में पहुँचाऊँगा।

एवमुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महत्मना।
प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत् ॥९॥

महात्मा लक्ष्मण के ऐसा कहने पर विदेहनन्दिनी सीता को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ वे चलने को तैयार हो गयीं। (८)

वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च।
गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ॥१०॥
इमानि मुनि पत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम्।
वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ॥११॥

बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकार के रत्न लेकर वैदेही सीता वन की यात्रा के लिए उद्यत हो गयीं और लक्ष्मण से बोलीं—ये सब बहुमूल्य वस्त्राभूषण और नाना प्रकार के रत्न धन में मुनि पत्नियों को दूँगी। (१०।११)

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम्।
प्रययौ शीघ्रतुरगं रामस्याज्ञाममुस्मरन् ॥१२॥

लक्ष्मण ने बहुत अच्छा, कहकर मिथिलेश कुमारी सीता को रथ पर चढ़ाया, और श्रीरघुनाथ जी की आज्ञा को ध्यान में रखते हुए तेज घोड़ों वाले रथ पर चढ़कर वे वन की ओर चल दिए। (१२)

अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥१३॥
अशुभानि बहून्येव पश्यामि रघुनन्दन।
नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ॥१४॥

उस समय सीता ने लक्ष्मीवर्धन लक्ष्मण जी से कहा, रघुनन्दन 'मुझे बहुत से अपशकुन दिखाई देते हैं। आज मेरी दायीं आँख फड़कती है और मेरे शरीर में कम्पन हो रहा है। (१३।१४)

हृदयं चैव सौमित्रे ! अस्वस्थमिव लक्षये ।
औत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ।।१५।।

सुमित्रा कुमार मैं अपने हृदय को अस्वस्थ सा देख रही हूँ । मन में बड़ी उत्कण्ठा हो रही है । और मेरी अधीरता पराकाष्ठा को पहुँची हुयी है । (१५)

शून्यामेव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ।
अपि स्वस्ति भवेत्तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृवत्सल ।।१६।।

विशाल लोचन लक्ष्मण ! मुझे पृथ्वी सूनी सी ही दिखाई देती है । भ्रातृ वत्सल ! तुम्हारे भाई कुशल से रहें । (१६)

श्वश्रूणां चैव मे वीर ! सर्वासामविशेषतः ।
पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ।।१७।।

वीर ! मेरी सब सासुएं समान रूप से सानन्द रहें । नगर एवं जनपद में भी समस्त प्राणी सकुशल रहें ।

इत्यञ्जलिकृता सीता देवता अभ्ययाचत ।
लक्ष्मणोऽर्थे ततः श्रुत्वा शिरसा वन्द्य मैथिलीम् ।।१८।।
शिवमित्यब्रवीद् धृष्टो हृदयेन विशुष्यता ।।

ऐसा कहती हुयी सीता ने हाथ जोड़कर प्रार्थना देवताओं से की, सीता की बात सुनकर लक्ष्मण ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और ऊपर से प्रसन्न हो । मुरझाए हृदय से कहा—सबका कल्याण हो—

ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ।।१९।।
प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् ।।

तदनन्तर गोमती के तट पर पहुँचकर एक आश्रम में उन सबने रात्रि बिताई । फिर प्रातःकाल सुमित्राकुमार ने सारथि से कहा । (१९)

योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ॥२०॥
शिरसा धारयिष्यामि त्रियम्बक इवौजसा ॥

सारथे ! जल्दी रथ जोतो । आज मैं भागीरथी के जल को उसी प्रकार शिर पर धारण करूँगा, जैसे भगवान शंकर ने अपने तेज से उसे मस्तक पर धारण किया था ।

सोऽश्वान विचारयित्वा तु रथे युक्तान् मनोजवान् ॥२१॥
आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत ॥

सारथि ने मन के समान वेगशाली चारों घोड़ों को नहलाकर रथ में जोता और विदेहनन्दिनी सीता से हाथ जोड़कर कहा—देवि रथ पर आरुढ़ होइये । (२१)

सा तु सूतस्य वचनादारुरोह रथोत्तमम् ॥२२॥
सीता सौमित्रिणा साङ्ग सुमन्त्रेण च धीमता ।
आससाद विशालाक्षी गंगा पापविनाशिनीम् ॥२३॥

सूत के कहने से देवी सीता उस उत्तम रथ पर सवार हुयी । इस प्रकार सुमित्रा कुमार लक्ष्मण और बुद्धिमान सुमन्त्र के साथ विशाल लोचना सीतादेवी पापनाशिनी गंगा के तट पर जा पहुँची । २२।२३

अथार्धदिवसे गत्वा भागीरथ्या जलाशयम् ।
निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनः ॥२४॥

दोपहर के समय भागीरथी की जलधारा तक पहुँचकर लक्ष्मण उनकी ओर देखकर दुःखी हो, उच्चस्वर से फूट-फूटकर रोने लगे । (२४)

सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञा किमिदं रुद्यते त्वया ॥२५॥
जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।
हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥२६॥

लक्ष्मण को शोक से आतुर देख धर्मज्ञा सीता अत्यन्त चिन्तित हो, उनसे बोलीं, लक्ष्मण ! यह क्या ? तुम रोते क्यों हो ? गङ्गा के तट पर आकर तो मेरी चिरकाल की अभिलाषा पूर्ण हुयी है । इस हर्ष के समय तुम रोकर मुझे दुःखी क्यों करते हो । (२५।२६)

नित्यं त्वं रामपार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।
कच्चिद् विना कृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥२७॥

पुरुष श्रेष्ठ ! श्रीराम के पास तो तुम सदा ही रहते हो। क्या दो दिन तक बिछुड़ जाने के कारण तुम इतने शोकाकुल हो गये हो ? (२७)

ममापि दयितो रामो जीविताादपि लक्ष्मण ॥
न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं वालिशो भव ॥२८॥

लक्ष्मण ! श्रीराम तो मुझे भी अपने प्राणों से बढ़कर प्रिय हैं। परन्तु मैं तो इस प्रकार शोक नहीं कर रही हूँ। तुम ऐसे नादान न बनो। (२८)

तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान् ।
ततो मुनिभ्यो वासांसि दास्याम्याभरणानि च ॥२९॥

मुझे गङ्गा के उस पार ले चलो, और तपस्वी मुनियों के दर्शन कराओ। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी। (२९)

ततः कृत्वा महर्षीणां यथार्हमभिवादनम् ।
तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥३०॥

तत्पश्चात् उन महर्षियों का यथा योग्य अभिवादन करके वहाँ एक रात्रि ठहरकर हम पुनः अयोध्यापुरी को लौट चलेंगे। (३०)

ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् ।
त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् ॥३१॥

मेरा मन भी सिंह के समान वक्षस्थल कृश उदार और कमल के समान नेत्र वाले श्रीराम को जो मन को रमाने वाले में सर्वश्रेष्ठ हैं, देखने के लिए आतुर हो रहा है। (३१)

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे ।
नाविकानाह्वयामास लक्ष्मणः परवीरहा ।।
इयं च सज्जा नौश्चेति दाशाः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।।३२।।

सीता जी का यह वचन सुनकर शत्रु वीरों का संहार करने वाले लक्ष्मण ने अपनी दोनों सुन्दर आँखें पोंछ ली और नाविकों को बुलाया। उन मल्लाहों ने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो ! यह नाव तैयार है। (३२)

तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गा शुभां नावमुपारुहत् ।
गङ्गा संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः ।।३३।।

लक्ष्मण गङ्गा जी को पार करने के लिए सीता जी के साथ उस सुन्दर नौका पर बैठे और बड़ी सावधानी के साथ उन्होंने सीता जी को गङ्गा के उस पार पहुँचाया। (३३)

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तर काण्डे षट्चत्वारिंशः ।। सर्गः ४६ ।।

श्रीहरिः

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

लक्ष्मण को सीता जी को नाव से गंगा जी के उस पार पहुँचाकर बड़े दुःख से उन्हें उनके त्यागे जाने की बात कहना पड़ा।

अथ नावं सुविस्तीर्णां नैषादीं राघवानुजः।
आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥१॥

मल्लाहों की वह नाव विस्तृत और सुसज्जित थी। श्रीलक्ष्मण जी ने पहले श्रीसीता जी को चढ़ाया तथा पुनः स्वयं चढ़े ॥१॥

सुमन्त्रं चैव सरथं स्थीयतामिति लक्ष्मणः।
उवाच शोक संतप्तः प्रयाहीति च नाविकम् ॥२॥

उन्होंने रथ सहित सुमन्त्र को वहीं ठहरने के लिए कह दिया और शोक से सन्तप्त होकर नाविक से कहा, चलो ॥२॥

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः।
उवाच मैथिलीं वाक्यं प्रञ्जलिर्बाष्पसंप्लुतः ॥३॥

तदनन्तर भागीरथी के उस तट पर पहुँच कर लक्ष्मण के नेत्रों में आँसू आ गये और उन्होंने मिथिलेश कुमारी श्रीसीता जी से हाँथ जोड़कर कहा ॥३॥

हृद्गतं ते महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य बचनीकृतः ॥४॥

विदेहनन्दिनी! मेरे हृदय में सबसे बड़ा कांटा यही खटक रहा है कि आज श्री रघुनाथ जी ने बुद्धिमान् होकर भी मुझे वह काम सौंपा है। जिसके कारण लोक में मेरी बड़ी निन्दा होगी ॥४॥

श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत् ।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥५॥

इस दशा में मुझे यदि मृत्यु के समान यन्त्रणा प्राप्त होती अथवा मेरी साक्षात् मृत्यु ही हो जाती तो वह मेरे लिए परम् कल्याणकारक होती। परन्तु इस लोक निन्दित कार्य में मुझे लगाना उचित नहीं था ॥५॥

प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हसि शोभने ।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥६॥

शोभने आप प्रसन्न हों, मुझे कोई दोष न दे। ऐसा कहकर हाँथ जोड़े हुए श्रीलक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़े ॥६॥

रुदन्तं प्रञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः
मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥७॥

लक्ष्मण हाँथ जोड़कर रो रहे हैं, और अपनी मृत्यु चाह रहे हैं। यह देखकर मिथिलेश कुमारी श्री सीता अत्यन्त उद्विग्न हो उठीं और लक्ष्मण से बोलीं ॥७॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण ।
पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥८॥

लक्ष्मण यह क्या बात है ? मैं कुछ समझ नहीं पाती हूँ। ठीक-ठीक बताओ श्रीमहाराज कुशल से तो हैं न। मैं देखती हूँ, तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है ॥८॥

शापितोऽसि नरेन्द्रेण यस्त्वं संतापमागतः ।
तद् ब्रूयाः संनिधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते ॥९॥

मैं महाराज की शपथ दिलाकर पूँछती हूँ, जिस बात से तुम्हें इतना संताप हो रहा है, वह मेरे निकट सच-सच बताओ। मैं इसके लिए तुम्हें आज्ञा देती हूँ ॥९॥

वैदेह्या चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
आवाङ्मुखो बाष्पगलो वाक्यमेतदुवाच ह ।।१०।।

विदेहनन्दिनी के इस प्रकार, प्रेरित करने पर लक्ष्मण दुःखी मन से नीचे मुँह किए अश्रु नेत्रों एवं पूरित्र गद्‌गद्‌ कंठ द्वारा इस प्रकार बोले ।।१०।।

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम् ।
पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे ।।११।।
रामः सन्तप्तहृदयो मां निवेद्य गृहं गतः ।।

जनकनन्दिनी ! नगर और जनपद में आपके विषय में जो अत्यन्त भयंकर अपवाद फैला हुआ है, उसे राज्य सभा में सुनकर श्रीरघुनाथ जी का हृदय अत्यन्त सन्तप्त हो उठा और वे मुझसे सब बातें बताकर महल में चले गये ।।११।।

न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ।
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात्पृष्ठतः कृतः ।।१२।।

देवि ! राजा श्रीराम ने जिन अपवाद वचनों के दुःख को न सह सकने के कारण अपने हृदय में रख लिया है । उन्हें मैं आप के सामने बता नहीं सकता । इसलिए मैंने उनकी चर्चा ही छोड़ दी है ।

सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम संनिधौ ।
पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ।।१३।।
आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ।
राज्ञः शासनमादाय तथैव किल दौहृदम् ।।१४।।

आप मेरे सामने निर्दोषा सिद्ध हो चुकी हैं । तो भी महाराज ने लोकापवाद से डरकर आपको त्याग दिया है । देवि ! आप कोई और बात न समझें, अब महाराज की आज्ञा मानकर तथा आपकी भी ऐसी इच्छा समझकर मैं आश्रमों के पास ले जाकर आपको वहीं छोड़ दूँगा ।।१३-१४।।

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ।
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ॥१५॥

शुभे यह रहा गंगा जी के तट पर ब्रह्मर्षियों का पवित्र एवं रमणीय तपोवन आप विषाद न करें ॥१५॥

राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः ।
सखा परमको विप्रो बाल्मीकिः सुमहायशाः ॥१६॥
पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥१७॥

यहाँ मेरे पिता दशरथ के घनिष्ठ मित्र महायशस्वी महर्षि मुनि बाल्मीकि रहते हैं । आप उन्हीं महात्मा के चरणों की छाया का आश्रय ले, यहाँ सुख पूर्वक रहें । जनकात्मजे ! आप यहाँ उपवास परायण एवं एकाग्र हो निवास करें ॥१७॥

पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥१८॥

देवि ! आप सदा श्रीरघुनाथ जी को हृदय में रखकर पतिव्रत्य का अवलम्बन करें । ऐसा करने से आपका परम कल्याण होगा ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

श्रीहरिः

पर्यवसान

सजज्नो ! आप सब सावधानी पूर्वक आगे की इस महादारुण कथा को सुनिये । श्रीवीर लक्ष्मण जी भगवती श्रीसीता जी महारानी को राजाज्ञा से श्रीगङ्गा पार छोड़ दिया है और स्वयं भी अपार दुःख में डूब गये हैं । जिन भगवती श्रीजनकनन्दिनी माता के लिए लंकागढ़ में घनघोर युद्ध किया था तथा एक बार अपने प्रिय प्राणों से हाँथ भी धो चुके थे । अपार खून खराबा हुआ । तब वीर रावण को मारकर पुष्पक विमान पर बैठाकर भगवती वैदेही को लाए थे । आज वह दुर्दिन जान पड़ा कि अपने उन्हीं हाँथों से फिर स्वयं त्याग करने आये । वाह रे होनी और धन्य है, विधाता का निष्ठुर कठोर रूखा विधान जो सब कुछ करा सकता है । जिन महासती शिरोमणि अपनी माता से भी अधिक पूज्यनीय साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा श्रीसीता जी महारानी को माता से बढ़कर समझना, ऐसा उपदेश साध्वी श्रीसुमित्रा जी ने वन गमन करते समय दिया था ।

तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ।।

उसी उपदेश को शिरोधार्य कर सागर पर सेतु बाँध डाला । असम्भव को सम्भव कर दिया था और आज एकाकी परदेश विजन में श्रीगंगा तीर पर अनाथ, असहाय की भाँति त्यागकर जाने वाले हैं । उन नर रत्न परम वीर सुधीर गंभीर रणधीर श्रीलक्ष्मण की मानसिक दशा क्या हो रही होगी । इस बात को आप सब सहृदय उदार मति श्रोता ही समझ सकते हैं । साधारण अज्ञ प्राणी इस गूढ़ तत्व को कथमपि नहीं समझ सकते हैं । हमको भी अपार दारुण दुःख हो रहा है । श्रीसीता राम प्रभु के सदा ही मङ्गल गुणानुवाद गाये हैं । आज इस दुःख पूर्ण हृदय विदीर्ण करने वाली शोक को भी शोकित तथा दुःख को भी दुःखित करने वाली इस कथा को भी आप सबके आगे सुनाना पड़ रहा है । अब आज लाखों करोड़ों वर्ष बाद भी यह दुःख पूर्ण कथा हमको दुखित कर रही है । तब उन सुलक्षण श्रीलक्ष्मण वीर रघुवंशी की क्या दशा हुयी होगी । शरीर काँप जाता है । रोमांच हो रहा है । कण्ठ भर-भर आता है । नेत्र भी दुखी हैं । फिर भी आप सब सज्जन आगे हाँथ जोड़े एकाग्र चित्त से आगे की कथा सुनने की लालसा लिए विराजमान हैं एवं श्रीहनुमान जी महाराज भी आस-पास किसी रूप में असनासीन होंगे ।

और इतने दिनों तक आपको अपार सुख संविद, जन्म, विवाह सुनाया है तो यह मार्मिक कथा तो कहनी ही पड़ेगी। अतः मन को ढाँढ़स बँधाकर चित को प्रसन्न और पुण्य तथा संसार के मंगल कल्याण के लिए अपने श्रीमाता-पिता श्रीगुरु जी महाराज की पावन सुयश कीर्ति को विस्तारित करने के लिए ही आगे की कथा सरिता को महासागर में तो मिलाना ही पड़ेगा। इसको पूर्ण करना ही पड़ेगा।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा।
परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥१॥
(वा० रा० उत्तर काण्ड ४८ सर्ग १ श्लोक)

श्रीलक्ष्मण जी का यह कठोर वचन सुनकर श्रीजनककिशोरी श्रीसीता जी को बड़ा दुःख हुआ। वे मुर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

सा मुहूर्तमिवासंज्ञा वाष्पपर्याकुलेक्षणा।
लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥२॥

दो घड़ी तक उन्हें होश नहीं हुआ, उनके नेत्रों से आँसुओं की अजस्र धारा बहती रही। फिर होश में आने पर श्रीजनककिशोरी दीन वाणीं में श्रीलक्ष्मण जी से बोलीं।

मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥३॥

श्रीलक्ष्मण जी निश्चय ही विधाता ने मेरे शरीर को केवल दुःख भोगने के लिए ही रचा है। इसलिए आज सारे दुःखों का समूह मूर्तिमान होकर मुझे दर्शन दे रहा है।

(३३७)

किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ।
याऽहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ।।४।।

मैंने पूर्व जन्म में कौन सा ऐसा पाप किया था अथवा किसके स्त्री का बिछोह कराया था। जो शुद्ध आचरण वाली होने पर भी श्रीमहाराज ने मुझे त्याग दिया है।

पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी ।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परवर्तिनी ।।५।।

सुमित्रा नन्दन पहिले मैंने वनवास के दुःख में पड़कर भी उसे सहकर श्रीराम के चरणों का अनुसरण करते हुए आश्रम में रहना पसन्द किया था।

सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ।।६।।

किन्तु सौम्य अब मैं अकेली प्रियजनों से रहित हो किस तरह आश्रम में निवास करूँगी और दुःख में पड़ने पर किससे अपना दुःख कहूँगी।

किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ।।७।।

प्रभो ! यदि मुनिजन मुझसे पूँछेगे कि महात्मा श्रीरघुनाथ जी ने किस अपराध पर तुम्हें त्याग दिया है तो मैं उन्हें अपना कौन सा अपराध बताऊँगी।

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ।।८।।

सुमित्रा ! कुमार मैं अपने जीवन को अभीं गङ्गाजी के जल में विसर्जन कर देती किन्तु इस समय ऐसा अभी नहीं कर सकूँगी, क्योंकि ऐसा करने से मेरे पतिदेव का राजवंश नष्ट हो जाएगा।

यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज्य मां दुःखभागिनीम् ।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः श्रृणु चेदं वचो मम् ।।९।।

किन्तु सुमित्रानन्दन तुम तो वही करो जैसी महाराज ने तुम्हें आज्ञा दी है। तुम मुझ दुःखिया को यहाँ छोड़कर महाराज के आज्ञा के पालन में ही स्थिर रहो और मेरी यह बात सुनो ।

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च ।
शिरसा बन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ।।१०।।

मेरी सब सासुओं को समान रूप से हाथ जोड़कर मेरी ओर से प्रणाम करना । साथ ही महाराज के भी चरणों में मस्तक नवाकर मेरी ओर से उनकी कुशल पूँछना ।

शिरसाभिनतो ब्रूयाः सर्वा सामेव लक्ष्मण ।
वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः ।।११।।

लक्ष्मण तुम अन्त.पुर की सभी वन्दनीया स्त्रियों को मेरी आर से प्रणाम करके मेरा समाचार उन्हें सुना देना तथा जो सदा धर्म पालन के लिए सावधान रहते हैं। उन महाराज को भी मेरा यह संदेश सुना देना ।

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघवः ।
भक्त्या च परया युक्ता हिते च तव नित्यशः ।।१२।।

रघुनन्दन वास्तव में तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्ध चरित्रा है। सर्वदा ही आपके हित में तत्पर रहती हैं और आपके प्रति परम प्रेम भक्ति रखने वाली है ।

अहं त्यक्ता च ते वार अयशो भीरुणा जने ।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ।।१३।।
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।।

वीर आपने अपयश से डरकर ही मुझे त्यागा है। अतः। लोगों में आपकी जो निन्दा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है। क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं।

वक्तव्यश्चैव नृपतिधर्मेण सुसमाहितः ॥१४॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥१५॥

लक्ष्मण तुम महाराज से कहना कि आप धर्म पूर्वक बड़ी सावधानी से रहकर पुरवासियों के साथ वैसा ही बर्ताव करें, जैसा अपने भाइयों के साथ करते हैं। यही आपका परम धर्म है और इसी से आपको परम उत्तम यश की प्राप्ति हो सकती है।

यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात्।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥१६॥

राजन्! पुरवासियों के प्रति धर्मानुकूल आचरण करने से जो पुण्य प्राप्त होगा। वही आपके लिए उत्तम धर्म और कीर्ति है। पुरुषोत्तम मुझे अपने शरीर के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं है।

यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥१७॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः।

रघुनन्दन! जिस तरह पुरवासियों के अपवाद से बचकर रहा जा सके। उसी तरह आप रहें। स्त्री के लिए तो पति ही देवता है। पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है। इसलिए उसे प्राणों की बाजी लगाकर भी विशेष रूप से पति का प्रिय करना चाहिए।

इति मद्वचनाद् रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥१८॥
निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ॥

मेरी ओर से सारी बातें तुम श्रीरघुनाथ जी महाराज से कहना, और आज तुम भी मुझे देख जाओ मैं इस समय ऋतुकाल का उल्लंघन करके गर्भवती हो चुकी हूँ।

(३४०)

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।।१९।।
शिरसा वन्द्य धरणीं व्याहर्तुं न शशाक ह ।।

सीता के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण का मन बहुत दुःखी हो गया। उन्होंने धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया। उस समय उनके मुख से कोई भी बात नहीं निकल सकी।

प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः ।।२०।।
ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वक्ष्यसि शोभने ।।

उन्होंने जोर-जोर से रोते हुए ही सीता माता की परिक्रमा की और दो घड़ी तक सोच-विचार कर उनसे कहा, शोभने आप यह मुझसे क्या कह रही हैं।

दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ।।२१।।
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ।।

निष्पाप पति व्रते मैंने पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा है। केवल आपके चरणों के ही दर्शन किए हैं। फिर आज यहाँ वन के भीतर श्रीरामचन्द्र जी की अनुपस्थिति में आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ।

इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य पुनर्नावमुपारुहत् ।।२२।।
आरुरोह पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् ।।

यह कहकर उन्होंने सीताजी को पुनः प्रणाम किया और फिर वे नाव पर चढ़ गये। नाव पर चढ़कर उन्होंने मल्लाह को उसे चलाने की आज्ञा दी।

स गत्वा चोत्तरं तीरं शोकभारसमन्वितः ।।२३।।
सम्मूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद् द्रुतम् ।।

शोक के भार से दबे हुए लक्ष्मण जी गंगाजी के उत्तरी तट पर पहुँचकर दुःख के कारण अचेत से हो गये और उसी अवस्था में जल्दी से रथ पर चढ़ गए।

मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ।।२४।।
चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ।।

श्रीसीता जी महारानी गङ्गाजी के दूसरे तट पर अनाथ की तरह रोती हुयी धरती पर लोट रहीं थीं। लक्ष्मण बार-बार मुँह घुमाकर उनको ओर देखते हुए चल दिए।

दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।।२५।।
निरीक्ष्यमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ।।

रथ और लक्ष्मण जी क्रमशः दूर होते गये। श्रीसीताजी उनकी ओर बार-बार देखकर उद्विग्न हो उठी। उनके अदृश्य होते ही उन पर गहरा शोक छा गया।

सा दुःखभारावनता यशस्विनी, यशोधरा नाथमपश्यती सती।
रुरोद सा बर्हिणनादिते बने, महास्वनं दुःखपरायणा सती ।।२६।।

अब उन्हें कोई भी अपना रक्षक नहीं दिखायी दिया। अतः यश को धारण करने वाली वे यशस्विनी सती सीता दुःख के भारी भार से दबकर चिन्तामग्न हो मयूरों के कलनाद से गूँजते हुए उस वन में जोर-जोर से रोने लगीं।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ।।४८।।

इस प्रकार श्रीबाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

वा० रा० उत्तर काण्डे सर्ग ४९

सीतां तु रुदतीं दृष्ट्वा ते तत्र मुनिदारकाः ।
प्राद्रवन् यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधीः ।।१।।

जहाँ श्रीमहारानी सोता जी रो रहीं थीं वहाँ से थोड़ी दूर पर ही ऋषियों के कुछ बालक थे। वे उन्हें रोते देख अपने आश्रम की ओर दौड़े जहाँ उग्र तपस्या में मन लगाने वाले भगवान बाल्मीकि मुनि विराजमान थे।

अभिवाद्य मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।
सर्वे निवेदयामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥२॥

उन सब मुनि कुमारों ने महर्षि के चरणों में अभिवादन करके उनसे श्रीमहारानी सीताजी के रोने का समाचार सुनाया ।

अदृष्टपूर्वा भगवन्कस्याप्येषा महात्मनः ।
पत्नी श्रीरिव संमोहाद् विशैति विकृताननना ॥३॥

वे बोले भगवन ! गंगा तट पर किन्हीं महात्मा नरेश की पत्नी हैं । जो साक्षात् लक्ष्मी के समान जान पड़ती हैं । उन्हें हम लोगों ने पहले कभी नहीं देखा था । वे मोह के कारण विकृत मुख होकर रो रही है ।

भगवन् साधु पश्येस्त्वं देवतामिव खाच्च्युताम् ।
नद्यास्तु तीरे भगवन् वरस्त्री कापि दुःखिता ॥४॥

भगवान आप स्वयं चलकर अच्छी तरह देख ले । वे आकाश से उतरी हुयी किसी देवी सी दिखाई देती हैं । प्रभो गंगाजी के तट पर वह जो कोई श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्री बैठी है । बहुत दुःखी हैं ।

दृष्टास्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा ।
अनर्हा दुःखशोकाभ्यामेका दीना अनाथवत् ॥५॥

हमने अपनी आँखों से देखा है । वे बड़े जोर-जोर से रोती हैं और गहरे शोक में डूबी हुयी हैं । वे दुःख और शोक भोगने के योग्य नहीं हैं । अकेली हैं । दीन हैं और अनाथ की तरह बिलख रही है ।

न ह्येनां मानुषीं विद्मः सत्क्रियास्याः प्रयुज्यताम् ।
आश्रमस्यापि दूरे च त्वामियं शरणं गता ॥६॥

हमारी समझ में ये मानवी स्त्री नहीं है । आपको इनका सत्कार करना चाहिए । इस आश्रम से थोड़ी ही दूर पर होने के कारण ये वास्तव में आपकी शरण आयी हैं ।

त्रातारमिच्छते साध्वी भगवंस्त्रातु महर्षि ।
तेषां तु वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित् ॥
तपसा लब्धचक्षुष्माम् प्राद्रवद् यत्र मैथिलो ॥७॥

भगवन ! ये साध्वी देवी अपने लिए कोई रक्षक ढूंढ़ रही हैं । अतः आप इनकी रक्षा करें, उन मुनि कुमारों की यह बात सुनकर धर्मज्ञ महर्षि ने बुद्धि से निश्चित करके असली बात को जान लिया । क्योंकि उन्हें तपस्या द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त थी । जानकर वे उस स्थान पर दौड़े हुए आये । जहाँ मिथिलेश कुमारी श्रीसीताजी विराजमान थीं ।

तं प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या ह्येनं महामतिम् ।
तं तु देशमभिप्रेत्य किंचित् पद्भ्यां महामतिः ॥८॥
अर्घ्यमादाय रुचिरं जह्नीतीरमागमत् ।
ददर्श राघवस्येष्टां सीतां पत्नीमनाथवत् ॥९॥

उन परम बुद्धिमान महर्षि को जाते देख उनके शिष्य भी उनके साथ हो लिए । कुछ पैदल चलकर वे महामति महर्षि सुन्दर अर्घ्य लिए गंगा तटवर्ती उस स्थान पर आये । वहाँ आकर उन्होंने श्रीरघुनाथ जी की प्रिय पत्नी श्रीसीताजी को अनाथ की सी दशा में देखा ।

तां सीतां शोकभारार्तां बाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ।
उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥१०॥

शोक के भार से पीड़ित हुयी श्रीवैदेही सीताजी को अपने तेज से आह्लादित सी करते हुए मुनिवर वाल्मीकि मधुर बाणी में बोले ।

स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया ।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥११॥

पतिव्रते ! तुम राजा दशरथ की पुत्रवधू महाराज श्रीराम की प्यारी पटरानी और मिथिला के राजा जनक की पुत्री हो । तुम्हारा स्वागत है ।

आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना।
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥१२॥

जब तुम यहाँ आ रही थी। तभी अपनी धर्म समाधि के द्वारा मुझे इसका पता लग गया था। तुम्हारे परित्याग का जो सारा कारण है। उसे मैंने अपने मन से जान लिया है।

तव चैव महाभागे विदितं मम तत्त्वतः।
सर्वं च विदितं मह्यं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥१३॥

महाभागे तुम्हारा सारा वृत्तान्त मैंने ठीक-ठीक जान लिया त्रिलोकी में जो कुछ हो रहा है वह सब मुझे विदित है।

अपापां वेद्मि सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा।
विस्रब्धा भव वैदेहि सांप्रतं मयि वर्तसे ॥१४॥

सीते मैं तपस्या द्वारा प्राप्त हुयी दिव्य दृष्टि से जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो अतः विदेह नन्दिनी अब निश्चित हो जाओ इस समय तुम मेरे पास हो।

आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः।
तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥१५॥

बेटी! मेरे आश्रम के पास ही कुछ तपसी स्त्रियाँ रहती हैं। जो तपस्या में संलग्न हैं। वे अपनी बच्ची के समान सदा तुम्हारा पालन करेगी।

इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा।
यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥१६॥

यह मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण करो, और निश्चिन्त एवं निर्भय हो जाओ। अपने ही घर में आ गयी हो। ऐसा समझकर विषाद न करो।

श्रुत्वा तु भाषितं सीता मुनेः परममद्भुतम् ।
शिरसा वन्द्य चरणौ तथत्याह कृताञ्जलिः ॥१७॥

महर्षि का यह अत्यन्त अद्भुत भाषण सुनकर श्रीसीताजी ने उनके चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा जो आज्ञा—

तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ।
तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्या मुनिपत्नयः ।
उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥१८॥

तब मुनि आगे-आगे चले और श्रीमहारानी श्रीसीताजी हाथ जोड़े उनके पीछे हो लीं, विदेह-नन्दिनी के साथ महर्षि को आते देख मुनि पत्नियाँ उनके पास आयीं और बड़ी प्रसन्नता के साथ इस प्रकार बोलीं ।

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं च ते ।
अभिवादयामस्त्वांसर्वा उच्यतां किं च कुर्महे ॥१९॥

मुनि ! श्रेष्ठ आपका स्वागत है । बहुत दिनों के वाद यहाँ आपका शुभागमन हुआ है । हम सभी आपको अभिवादन करतीं हैं । बताइये आपकी क्या सेवा करें'।

तासां तद् वचनं श्रुत्वा बाल्मीकिरिदमब्रवीत् ।
सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥२०॥

उनका यह वचन सुनकर श्रीबाल्मीकि जो बोले । ये परम बुद्धिमान राजा श्रीराम की धर्म पत्नी श्रीसीता जी यहाँ आयीं हैं ।

स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती ।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥२०॥

सती सीताजी राजा दशरथ की पुत्र वधू है और जनकजी की पुत्री हैं । निष्पाप होने पर भी पति ने इनका त्याग कर दिया है । अतः मुझे ही इनका सदा लालन-पालन करना है ।

इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि ।
गौरवात् मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥२२॥

अतः आप सब लोग इन पर अत्यन्त स्नेह दृष्टि रक्खे । मेरे कहने से तथा अपने ही गौरव से भी ये आपकी विशेष आदरणीया है ।

मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं परिदाय महायशाः ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृतः पुनरायात् महातपाः ॥२३॥

इस प्रकार बार-बार सीताजी को मुनि पत्नियों के हाथ में सौंपकर महायशस्वी एवं महातपस्वी वाल्मीकि जी शिष्यों के साथ फिर अपने आश्रम लौट आये ।

इत्यार्षे श्री मद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तर काण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

इस प्रकार बाल्मीकि निर्मित आर्षरामायण आदि काव्ये के उत्तर काण्ड में उनचासवाँ सर्ग हुआ ॥४९॥

वा० रा० उत्तर काण्डे सर्ग ५२

तत्र तां रजनीमुष्य केशिन्यां रघुनन्दनः ।
प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥१॥

केशिनी के तट पर वह रात बिताकर एवं रघुनन्दन श्री लक्ष्मण जी प्रातःकाल उठे, और फिर आगे बढ़े ।

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः ।
अयोध्यां रत्नसम्पूर्णां हृष्ट-पुष्ट जनावृताम् ॥२॥

दोपहर होते-होते उनके उस विशाल रथ ने रत्न धन से सम्पन्न तथा हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरी हुयी अयोध्यापुरी में प्रवेश किया ।

सौमित्रिस्तु परं दैन्यं जगाम सुमहामतिः ।
रामपादौ समासाद्य वक्ष्यामि किमहं गतः ॥३॥

वहाँ पहुँचकर परम बुद्धिमान सुमित्रा कुमार को बड़ा दुःख हुआ। वे सोंचने लगे, मैं श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के समीप जाकर क्या कहूँगा।

तस्यैवं चिन्तयानस्य भवनं शशिसन्निभम् ।
रामस्य परमोदारं पुरस्तात्समदृश्यत् ॥४॥

वे इस प्रकार सोच-विचार ही कर रहे थे कि चन्द्रमा के समान उज्ज्वल श्रीरामचन्द्र जी का विशाल राजभवन सामने दिखायी दिया—

राज्ञस्तु भवनद्वारि सोऽवतीर्य नरोत्तमः ।
आवङ्मुखो दीनमनाः प्रविवेशानिवारितः ॥५॥

राजमहल के द्वार पर रथ से उतर कर वे नरश्रेष्ठ श्रीलक्ष्मण जी नीचे मुख किये दुःखी मन से बे रोक-टोक भीतर चले गये।

स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ॥६॥
जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीन चेतनः ।
उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥७॥

उन्होंने देखा श्रीरघुनाथ जी दुःखी होकर एक सिंहासन पर बैठे हैं और उनके नेत्र आसुओं से भरे हैं। इस अवस्था में बड़े भाई को सामने देख दुःखी मन से श्रीलक्ष्मण जी ने उनके दोनों पैर पकड़ लिए और हाथ जोड़ चित्त को एकाग्र करके वे दीन वाणी में बोले।

आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य विसृज्य जनकात्मजाम् ।
गङ्गातीरे यथोद्दिष्टे वाल्मीकेराश्रमे शुभे ॥८॥
तत्र तां च शुभाचारामाश्रमान्ते यशस्विनीम् ।
पुनरप्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥९॥

वीर महाराज की आज्ञा शिरोधार्य करके मैं उन शुभ आचार वाली यशस्विनी जनक किशोरी सीता को गंगातट पर बाल्मीकि के शुभ आश्रम के समीप निर्दिष्ट स्थान में छोड़कर पुनः आपके श्रीचरणों की सेवा के लिए यहाँ लौट आया हूँ।

मा शुचः पुरुषव्याघ्र कालस्यं गतिरीदृशी ।
त्वद्विधा न हि शोचन्ति बुद्धिमन्तो मनस्विनः ॥१०॥

पुरुष सिंह आप शोक न करें। काल की ऐसी ही गति है। आप जैसे बुद्धिमान और मनस्वी मनुष्य शोक नहीं करते हैं।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥११॥

संसार में जितने संचय हैं, उन सबका अन्त विनाश है। उत्थान का अन्त पतन है। संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्तमरण है।

तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च ।
नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥१२॥

अतः स्त्री, पुत्र, मित्र और धन में विशेष आसक्ति नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनसे वियोग होना निश्चित है।

शक्तस्त्वमात्मनात्मानं विनेतुं मनसा मनः ।
लोकान् सर्वांश्च काकुत्स्थ किं पुनः शोकमात्मनः ॥१३॥

काकुत्स्थ कुलभूषण आप आत्मा से आत्मा को, मन से मन को तथा सम्पूर्ण लोकों को भी संयत रखने में समर्थ है। फिर अपने शोक को काबू में रखना आपके लिए कौन बड़ी बात है।

नेदृशेषु विमुह्यन्ति त्वद्विधा पुरुषर्षभाः ।
अपवादः स किल ते पुनरेष्यति राघव ॥१४॥

आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष इस तरह के प्रसंग आने पर मोहित नहीं होते। रघुनन्दन यदि आप दुःखी रहेंगे तो वह अपवाद आपके ऊपर फिर आ जाएगा।

यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवादभयान्नृप।
सोऽपवादः पुरे राजन् भविष्यति न संशयः ॥१५॥

नरेश्वर जिस अपवाद के भय से आपने मिथिलेश कुमारी का त्याग किया है। निःसंदेह वह अपवाद इस नगर में फिर होने लगेगा। लोग कहेंगे कि दूसरे के घर में रही हुयी स्त्री का त्याग करके ये रात-दिन उसकी चिन्ता में दुःखी रहते हैं।

स त्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः।
त्यजेमां दुर्बलां बुद्धिं संतापं मा कुरुष्व ह ॥१६॥

अतः पुरुष सिंह आप धैर्य से चित्त को एकाग्र करके इस दुर्बल सुख बुद्धि का त्याग करें। सन्तप्त न हो।

एवमुक्तः स काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना।
उवाच परया प्रीत्या सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥१७॥

महात्मा लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर मित्र वत्सल श्रीरघुनाथ जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन सुमित्राकुमार से कहा।

एवमेतन् नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण।
परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ॥१८॥

नर श्रेष्ठ वीर लक्ष्मण तुम जैसा कहते हो ठीक ऐसी ही बात है। तुमने मेरे आदेश का पालन किया। इससे मुझे बड़ा संतोष है।

निवृत्तिश्चा गता सौम्य संतापश्च निराकृतः।
भवद्वाक्यैः सुरुचिरैरनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण ॥१९॥

सौम्य लक्ष्मण अब मैं दुःख से निवृत्त हो गया संताप को मैंने हृदय से निकाल दिया और तुम्हारे सुन्दर वचनों से मुझे बड़ी शान्ति मिली है।

इत्यार्षे श्री मद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तर काण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः (५२)

इस प्रकार बाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में बावनवां सर्ग पूरा हुआ ।

वा० रा० उत्तर काण्डे सर्ग; ६६

यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् ।
तामेव रात्रि सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥१॥

जिस रात को शत्रुघ्न ने पर्णशाला में प्रवेश किया था । उसी रात में महारानी श्रीसीता जी ने दो पुत्रों को जन्म दिया ।

ततोऽर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः ।
वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायां प्रसवं शुभम् ॥२॥

तदनन्तर आधी रात के समय कुछ मुनि कुमारों ने बाल्मीकि जी के पास आकर उन्हें सीताजी के प्रसव होने का शुभ एवं प्रिय समाचार सुनाया ।

भगवन् रामपत्नो सा प्रसूता दारक द्वयम् ।
ततो रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम् ॥३॥

भगवन् श्रीरामचन्द्र जी की धर्मपत्नी ने दो पुत्रों को जन्म दिया है । अतः महातेजस्वी महर्षे ! आप उनकी बालग्रह जनित बाधा निवृत्त करने वाली रक्षा करें ।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा महर्षिः समुपागमत् ।
बालचन्द्रप्रतीकाशौ देवपुत्रौ महौजसौ ॥४॥

उन कुमारों की यह बात सुनकर महर्षि उस स्थान पर गये । श्रीसीता जी के वे दोनों पुत्र बाल चन्द्रमा के समान सुन्दर तथा देव कुमारों के समान महातेजस्वी थे ।

(३५१)

जगाम तत्र हृष्टात्मा ददर्श च कुमारकौ ।
भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ।।५।।

बाल्मीकि जी ने प्रसन्न चित्त होकर सूतिकागार में प्रवेश किया। और उन दोनों कुमारों को देखा तथा उनके लिये भूतों और राक्षसों का विनाश करने वाली रक्षा की व्यवस्था की।

कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ।
बाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम् ।।६।।

ब्रह्मर्षि बाल्मीकि ने एक कुशाओं का मुट्ठा और उनके लव लेकर उनके द्वारा उन दोनों बालकों की भूत बाधा का निवारण करने के लिए रक्षा विधि का उपदेश दिया।

यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः ।
निर्मार्जनीयं तु तदा कुशइत्यस्य नाम तत् ।।७।।
यश्चावरो भवेत् ताभ्यां लवेन सुसमाहितः ।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवेति च स नामतः ।।८।।

वृद्धा स्त्रियों को चाहिए कि इन दोनों बालकों में जो पहले उत्पन हुआ है, उसका मन्त्रों द्वारा संस्कार किए हुए इन कुशों से मार्जन करें। ऐसा करने पर उस बालक का नाम "कुश" होगा और उनमें जो छोटा है, उसका लव से मार्जन करें। इससे उसका नाम "लव" होगा।

एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ।
मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः ।।९।।

इस प्रकार जुड़वै उत्पन्न हुए दोनों बालक क्रमशः कुश और लव नाम धारण करेंगे। और मेरे द्वारा निश्चित किए गये इन्हीं नामों से भूमण्डल में विख्यात होगा।

तां रक्षां जगृहुस्तां च मुनिहस्तात्समाहिताः ।
अकुर्वंश्च ततो रक्षां तयोर्विगतकल्मषाः ।।१०।।

यह सुनकर निष्पाप वृद्धा स्त्रियों ने एकाग्र चित्त हो मुनि के हाँथ से रक्षा के साधन भूत उन कुशों को ले लिया। और उनके द्वारा उन दोनों बालकों का मार्जन एवं संरक्षण किया।

तथा तां क्रियमाणां च वृद्धाभिर्गोत्रनाम च ।
संकीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ ।।११।।

अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत् प्रियम् ।
पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्टचेति चाब्रवीत् ।।१२।।

जब वृद्धा स्त्रियाँ इस प्रकार रक्षा करने लगीं उस समय आधी रात को श्रीराम और श्रीसीता जी के नाम गोत्र के उच्चारण की ध्वनि शत्रुघ्न जी के कानों में पड़ी। साथ ही उन्हें सीता जी के दो सुन्दर पुत्र होने का संवाद प्राप्त हुआ। तब वे श्री महारानी सीता जी की पर्णशाला में गये, और बोले माता जी यह बड़े सौभाग्य की बात है।

तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा ।।१३।।

महात्मा शत्रुघ्न उस समय इतने प्रसन्न थे कि उनकी वह वर्षा कालिक सावन की रात बात की बात में वीत गयी।

प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।
मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः ।।१४।।

सबेरा होने पर पूर्वाह्न काल का कार्य संध्या वन्दन आदि करके महापराक्रमी श्रीशत्रुघ्न जी हाँथ जोड़ मुनि से बिदा ले पश्चिम दिशा की ओर चल दिए।

स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि ।
ऋषीणां पुण्यकीर्तीनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥१५॥

मार्ग में सात रात बिताकर वे यमुना तट पर जा पहुँचे और वहाँ पुण्यकीर्ति महर्षियों के आश्रम में रहने लगे ।

स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः ।
कथाभिरभिरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः ॥१६॥

महायशस्वी राज शत्रुघ्न ने वहाँ च्यवन आदि मुनियों के साथ सुन्दर कथा वार्ता द्वारा कालक्षेप करते हुए निवास किया ।

स काञ्चनाद्यैर्मुनिभिः समेतै ।
रघुप्रवीरो रजनीं तदानीम् ॥
कथा प्रकारैर्बहुभिर्महात्मा ।
विरामयामास नरेन्द्रसूनुः ॥१७॥

इस प्रकार रघुकुल के प्रमुख वीर महात्मा राजकुमार शत्रुघ्न वहाँ एकत्र हुए च्यवन आदि मुनियों के साथ नाना प्रकार की कथाए सुनते हुए उन दिनों यमुना तट पर रात बिताने लगे ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तर काण्डे षट्षष्टितमः ॥६६॥

इस प्रकार श्री बाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में छाछठवां सर्ग पूरा हुआ ॥६६॥

वा० रा० उत्तरकाण्डे सर्गः ॥६१॥

एतदाख्याय काकुत्स्थो भ्रातृभ्याममितप्रभः ।
लक्ष्मणं पुनरेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥१॥

अपने दोनों भाइयों को यह कथा सुनाकर अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने श्रीलक्ष्मण जी से पुनः यह धर्म युक्त बात कही ।

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम् ।
द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान् ॥२॥
एतान् सर्वान् समानीय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण ।
हयं लक्षणसम्पन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना ॥३॥

लक्ष्मण ! मैं अश्वमेध यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों में अग्रगण्य एवं सर्व श्रेष्ठ वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, और काश्यप आदि सभी द्विजों को बुलाकर और उनसे सलाह लेकर पूरी सावधानी के साथ शुभ लक्षणों से सम्पन्न घोड़ा छोड़ूँगा ।

तद् वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ।
द्विजान् सर्वान् समाहूय दर्शयामास राघवम् ॥४॥

श्री रघुनाथ जी के कहे हुए इस वचन को सुनकर शीघ्रगामी लक्ष्मण नें समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें श्रीरामचन्द्र जी महाराज से मिलाया ।

ते दृष्ट्वा देवसंकाशं कृतपादाभिवन्दनम् ।
राघवं सुदुराधर्षमाशीर्भिः समपूजयन् ॥५॥

उन ब्राह्मणों ने देखा देवतुल्य तेजस्वी और अत्यन्त दुर्जय श्रीराघवेन्द्र हमारे चरणों में प्रणाम करके खड़े हैं, तब उन्होंने शुभ आशीर्वादों द्वारा उनका सत्कार किया ।

प्राञ्जलिः स तदा भूत्वा राघवो द्विजसत्तमान् ।
उवाच धर्मसंयुक्तमश्वमेधाश्रितं वचः ॥६॥

उस समय रघुकुल भूषण श्रीराम हाँथ जोड़कर उन श्रेष्ठ ब्रह्मणों से अश्वमेघ यज्ञ के विषय में धर्म युक्त श्रेष्ठ वचन बोले ।

तेऽपि रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ।
अश्वमेधं द्विजाः सर्वे पूजयन्ति स्म सर्वशः ।।७।।

वे सब ब्राह्मण भी श्रीरामचन्द्र जी की वह बात सुनकर भगवान शंकर को प्रणाम करके सब प्रकार से अश्वमेध यज्ञ की सराहना करने लगे ।

स तेषां द्विजमुख्यानां वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
अश्वमेधाश्रितं श्रुत्वा भृशं प्रीतोऽभवत् तदा ।।८।।

अश्वमेध यज्ञ के विषय में उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों का अद्भुत ज्ञान से युक्त वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जो को बड़ी प्रसन्नता हुयी ।

विज्ञाय कर्म तत्तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रेषयस्व महाबाहो सुग्रीवाय महात्मने ।।९।।
यथा महद्भिर्हरिभिर्बहुभिश्च वनौकसाम् ।
सार्धमागच्छ भद्रं ते अनुभोक्तुं महोत्सवम् ।।१०।।

उस कर्म के लिए उन ब्राह्मणों की स्वीकृती जानकर श्रीरामचन्द्र जी महाराज श्रीलक्ष्मण जी से बोले—महाबाहो ! तुम महात्मा वानरराज सुग्रीव के पास यह संदेश भेजो कि कपि श्रेष्ठ तुम बहुत से विशालकाय वनवासी वानरों के साथ यहाँ यज्ञ महोत्सव का आनन्द लेने के लिए आओ, तुम्हारा कल्याण हो ।

विभीषणश्च रक्षोभिः कामगैर्बहुभिर्वृतः ।
अश्वमेधं महायज्ञमायात्वतुलविक्रमः ।।११।।

साथ ही अतुल पराक्रमी विभीषण को भी यह सूचना दो कि वे इच्छानुसार चलने वाले बहुत से राक्षसों के साथ हमारे महान् अश्वमेध यज्ञ में पधारें ।

राजानश्च महाभागा ये मे प्रियचिकीर्षवः ।
सानुगाः क्षिप्रमायान्तु यज्ञं द्रष्टुमनुत्तमम् ।।१२।।

इनके सिवा मेरा प्रिय करने की इच्छा वाले जो महाभाग राजा हैं। वे भी यज्ञ भूमि देखने के लिए सेवकों सहित शीघ्र यहाँ आवें।

देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः ।
आमन्त्रयस्व तान् सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण ।।१३।।

लक्ष्मण जो धर्म निष्ठ ब्राह्मण कार्य वंश दूसरे-दूसरे देशों में चले गये हैं। उन सबको अपने अश्वमेघ यज्ञ के लिए आमन्त्रित करो।

ऋषयश्च महाबाहो आहूयन्तां तपोधनाः ।
देशान्तरगताः सर्वे सदाराश्च द्विजातयः ।।१४।।

महाबाहो! तपोधन ऋषियों का तथा अन्य राज्य में रहने वाले स्त्रियों सहित समस्त ब्रह्मर्षियों को भी बुला लो।

तथैव तालावचरास्तथैव नटनर्तकाः ।
यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिषेवने ।।१५।।
आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम् ।।

महावाहो ताल लेकर रंगभूमि में संचरण करने वाले सूत्रधार तथा नट और नर्तक भी बुला लिए जायँ, नैमिषारण्य में गोमती के तट विशाल यज्ञ मण्डल बनाने की आज्ञा दो। क्योंकि वह बन बहुत ही उत्तम है। और पवित्र स्थान है।

शान्तयश्च महाबाहो प्रवर्तन्तां समन्ततः ।।१६।।
शतशश्चापि धर्मज्ञाः क्रतुमुख्यमनुत्तमम ।
अनुभूय महायज्ञं नैमिषे रघुनन्दन ।।१७।।

महाबाहु रघुनन्दन! यहाँ यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सर्वत्र शान्ति विधान प्रारम्भ करा दो। नैमिषारण्य में सैकड़ों धर्मज्ञ पुरुष उस परम उत्तम और श्रेष्ठ महायज्ञ को देखकर कृतार्थ हों।

नोट—श्लोक १२ में (यज्ञं द्रष्टुमनुत्तमम्) रामानुज सम्प्रदाय के अनुसार पाठ दिया गया है। किन्तु अन्य सम्प्रदायों में "यज्ञ भूमिनिरीक्षकाः" यह पाठ भी प्रचलित है।

तुष्टः पुष्टश्च सर्वोऽसौ मानितश्च यथाविधि ।
प्रतियास्यति धर्मज्ञ शीघ्रमामन्त्र्यतां जनः ॥१८॥

धर्मज्ञ लक्ष्मण ! शीघ्र लोगों को आमन्त्रित करो और जो लोग आवें वे सब विधि पूर्वक तुष्ट पुष्ट एवं सम्मानित होकर लौटें ।

शतं वाहसहास्रणां तण्डुलानां वपुष्मतां ।
अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल ॥१९॥
चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च ॥

महावली सुमित्रा कुमार ! लाखों बोझ ढोने वाले पशु खड़े दाने वाले चावल लेकर और दस हजार पशु तिल, मूग, चना, कुल्थी, उड़द और नमक के बोझ लेकर आगे चलें ।

अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ॥२०॥
सुर्वणकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे समाधिना ॥२१॥

इसी के अनुरूप, घी, तेल, दूध, दही, तथा बिना घिसे हुए चन्दन और बिना पिसे हुए सुगन्धित पदार्थ भी भेजे जाने चाहिए । भरत सौ करोड़ से भी अधिक सोने, चाँदी के सिक्के साथ लेकर पहले ही जायँ । और बड़ी सावधानी के साथ यात्रा करें ।

अन्तरापणवीथ्यश्च सर्वे च नटनर्तकाः ।
सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः ॥२२॥

मार्ग में आवश्यक वस्तुओं के क्रय विक्रय के लिए जगह-जगह बाजारें भी लगनी चाहिए । अतः इसके प्रवर्तक वणिक् एवं व्यवसायी लोग भी यात्रा करें । समस्त नट और नर्तक भी जाये । बहुत से रसोइये तथा सदा युवावस्था से सुशोभित होने वाली स्त्रियाँ भी यात्रा करें ।

भरतेन तु सार्धं ते यान्तु सैन्यानि चाग्रतः ।
नैगमान् वृद्धांश्चबाल द्विजांश्च सुसमाहितान् ।।२३।।
कर्मान्तिकान् वर्धकिनः कोशाध्यक्षांश्च नैगमान् ।।
मम मातृस्तथा सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च ।।२४।।
काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः ।।२५।।

भरत के साथ आगे-आगे सेनाएं भी जायं । महायशस्वी भरत शास्त्र वेता विद्वानों, बालकों, वृद्धों, एकाग्र चित वाले ब्राह्मणों, काम करने वाले नौकर, बढ़इयों, कोषाध्यक्षों वेदिकों, मेरी सब माताओं, कुमारों के अन्तःपुरा, (भरत आदि की स्त्रियाँ) मेरी पत्नी को सुर्वण मयी प्रतिमा तथा यज्ञ कर्म की दीक्षा को जानकर ब्राह्मणों को आगे करके पहले ही यात्रा करें ।

उपकार्या महार्हांश्च पार्थिवानां महौजसाम् ।
सानुगानां नरश्रेष्ठ व्यादिदेश महावलः ।।२६।।
अन्नपानानि वस्त्राणि अनुगानां महात्मनाम् ।

तत्पश्चात महावली नर श्रेष्ठ श्रीराम चन्द्र जी महाराज ने सेवकों सहित महातेजस्वी नरेशों के ठहरने के लिए बहुमूल्य वासस्थान बनाने (खेमे आदि लगाने) के लिए आदेश दिया । तथा सेवकों सहित उन महात्मा नरेशों के लिए अन्न पान एवं वस्त्र आदि की भी व्यवस्था करायी ।

भरतः स तदा यातः शत्रुघ्नसहितस्तदा ।।२७।।
वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितस्तदा ।।
विप्राणां प्रवराः सर्वे चक्रुश्च परिवेषणम् ।।२८।।

तदनन्तर शत्रुघ्न सहित भरत ने नैमिषारण्य को प्रस्थान किया । उस समय वहाँ सुग्रीव सहित महात्मा वानर जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ उपस्थित थे । उन सबको रसोई परोसने का काम करवाते थे ।

विभीषणश्च रक्षोभिः स्त्रीभिश्च बहुभिर्वृतः ।
ऋषीणामुग्रतपसां पूजां चक्रे महात्मनाम् ।।२९।।

स्त्रियों तथा बहुत से राक्षसों के साथ विभीषण उग्र तपस्वी महात्मा मुनियों के स्वागत सत्कार का काम संभालते थे ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकनवतितमः सर्गः ।।९१।।

इस प्रकार श्री वाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।।९१।।

वा० रा० उत्तर काण्डे ९२ सर्गः ।।९२।।

तत् सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः ।
हयं लक्षणसम्पन्नं कृष्णसारं मुमोच ह ।।१।।

इस प्रकार सब सामग्री पूर्ण रूप से भेजकर भरत के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी ने उत्तम लक्षणों से सम्पन्न तथा कृष्ण सार मृग के समान काले रंगवाले एक घोड़े को छोड़ा ।

ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणे सार्धमश्वे च विनियुज्य च ।
ततोऽभ्यगचछत् काकुत्स्थः सः सैन्येन नैमिषम् ।।२।।

ऋत्विजो सहित लक्ष्मण को उस अश्व की रक्षा के लिए नियुक्त करके श्रीरघुनाथ जी सेना के साथ नैमिषारण्य को गये ।

यज्ञवाटं महाबाहुर्दृष्ट्वा परममद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे श्रीमानिति च सोऽब्रवीत् ।।३।।

वहाँ बने हुए अत्यन्त अद्भुत यज्ञ मण्डप को देखकर महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी महाराज को अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुयी, और वे बोले—'बहुत सुन्दर है' ।

नैमिषे वसतस्तस्य सर्वं एव नराधिपाः ।
आनिन्युरुपहारांश्च तान् रामः प्रत्यपूजयत् ।।४।।

नैमिषारण्य में निवास करते समय श्रीराम चन्द्र जी महाराज के पास भूमण्डल के सभी नरेश भाँति-भाँति के उपहार ले आये । और श्रीरामचन्द्र जी ने उन सबका स्वागत-सत्कार किया ।

अन्नपानादि वस्त्राणि सर्वोपकरणानि च ।
भरतः सह शत्रुघ्नो नियुक्तो राजपूजने ।।५।।

उन्हे अन्न, पान, वस्त्र, तथा अन्य सब आवश्यक समान दिये गये । शत्रुघ्न सहित भरत उन राजाओं के स्वागत-सत्कार में नियुक्त किये गये थे ।

वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ।
परिवेषणं च विप्राणां प्रयताः सम्प्रचक्रिरे ।।६।।

सुग्रीव सहित महा मनस्वी वानर परम पवित्र एवं संयतचित्त हो उस समय वहाँ ब्राह्मणों को भोजन परोसते थे ।

विभीषणश्च रक्षोभिर्बहुभिः सुसमाहितः ।
ऋषीणामुग्रतपसां किंकरः समपद्यत ।।७।।

बहुतेरे राक्षसो से घिरे हुए विभीषण अत्यन्त सावधान रहकर उग्र तपस्वी ऋषियों के सेवा कार्य में संलग्न थे ।

उपकार्या महार्हाश्च पार्थिवानां महात्मनाम् ।
सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाबलः ।।८।।

महाबली नर श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने सेवको सहित महामनस्वी भूपालों को ठहरने के लिए बहुमूल्य वासस्थान (खेमे) दिये ।

(३६१)

एवं सुविहितो यज्ञो हयमेधो ह्यवर्तत ।
लक्ष्मणेन सुगुप्ता सा हयचर्या प्रवर्तत ॥९॥

इस प्रकार सुन्दर ढंग से अश्वमेध यज्ञ का कार्य प्रारम्भ हुआ और लक्ष्मण के संरक्षण में रहकर घोड़े के भूमण्डल में भ्रमण का कार्य भी भली भाँति सम्पन्न हो गया ।

ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम् ।
नान्यः शब्दोऽभवत् तत्र हयमेधे महात्मनः ॥१०॥
छन्दतो देहि देहीति यावत् तुष्यन्ति याचकाः ॥
तावत् सर्वाणि दत्तानि क्रतुमुख्ये महात्मनः ।
विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च ॥११॥

राजाओं में सिंह के समान पराक्रमी महात्मा श्रीरघुनाथ जी महाराज का वह श्रेष्ठ यज्ञ इस प्रकार उत्तम विधि से होने लगा । उस अश्वमेध यज्ञ में केवल एक ही बात सब ओर सुनायी पड़ती थी । जब तक याचक सन्तुष्ट न हों, तब तक उनको इच्छा के अनुसार सब वस्तुएँ दिये जाओ । इसके सिवाय दूसरी बात नहीं सुनायी देती थी । इस प्रकार महात्मा श्रीरामचन्द्र जो के श्रेष्ठ यज्ञ में नाना प्रकार के गुड़ के बने हुए खाद्य पदार्थ और खाण्डव आदि तब तक निरन्तर दिए जाते थे, जब तक कि पाने वाले पूर्णतः संतुष्ट होकर बस न कर दें ।

न निःसृतं भवत्योष्ठाद्वचनं यावदर्थिनाम् ॥
तावद् वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत् ॥१२॥

जब तक याचकों की मन की बात ओंठ से बाहर नहीं निकलने पाती थी तब तक ही राक्षस और वानर उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएं दे देते थे। यह बात सबने देखी ।

नकश्चिन्मलिनो वापि दीनोवाप्यथवा कृशः ।
तस्मिन् यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजना वृते ॥१३॥

राजा श्रीरामचन्द्र जी महाराज के उस श्रेष्ठ यज्ञ में हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भरे हुए थे। वहाँ कोई भी मलिन दीन अथवा दुर्बल नहीं दिखायी देता था ।

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः ।
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम् ।।१४।।

उस यज्ञ में जो चिरजीवी महात्मा मुनि पधारे थे। उन्हें ऐसे किसी भी यज्ञ का स्मरण नहीं था। जिसमें दान की ऐसी धूम रही हो, वह यज्ञ दान राशि से पूणंतः अलंकृत दिखायी देता था।

यः कृत्यवान् सुवर्णेन सुवर्णं लभते स्म सः ।
वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च ।।१५।।

जिसे सुर्वण को आवश्यकता थी वह सुर्वण पाता था। धन चाहने वाले को धन मिलता था। रत्न की इच्छा वाले को रत्न ।

हिरण्यानां सुवर्णानां रत्नानामथ वाससाम् ।
अनिशं दीयमानानां राशिः समुपदृश्यते ।।१६।।

वहाँ निरन्तर दिये जाने वाली चाँदी, सोने, रत्न और वस्त्रों के ढेर लगे दिखायी देते थे।

न शक्रस्य न सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ।
ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचुस्तपोधनाः ।।१७।।

वहाँ आये हुए तपस्वी मुनि कहते थे कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुण के यहाँ भी नहीं देखा गया।

सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः ।
वासोधनान्नकामेभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम् ।।१८।।

वानर और राक्षस सर्वत्र हाँथों में देने की सामग्री लिए खड़े रहते थे और वस्त्र धव तथा अन्न की इच्छा रखने वाले याचकों को अधिक से अधिक देते थे।

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः ।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥१९॥

राजसिंह भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का ऐसा सर्व गुण सम्पन्न यज्ञ एक वर्ष से भी अधिक काल तक चलता रहा । उसमें कभी किसी बात को कमी नहीं हुयी ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये-उत्तरकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥९२॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में बानवेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥९२॥

वा० रा० उत्तर काण्डे सर्गः ॥९३॥

वर्तमाने तथा भूते यज्ञे च परमाद्भुते ।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥१॥

इस प्रकार वह अत्यन्त अद्भुत यज्ञ जब चालू हुआ उस समय भगवान वाल्मीकि मुनि अपने शिष्यों के साथ उसमें शीघ्रता पूर्वक पधारें ।

स दृष्ट्वा दिव्यसंकाशं यज्ञमद्भुतदर्शनम् ।
एकान्त ऋषिसंघातश् चकार उटजाञ्शुभान् ॥२॥

उन्होंने उस दिव्य एवं अद्भुत यज्ञ का दर्शन किया और ऋषियों के लिए जो बाड़े बने थे । उनके पास ही उन्होंने अपने लिए भी सुन्दर पर्णशालाए बनवायीं ।

शकटांश्च बहून् पूर्णान् फलमूलांश्च शोभनान् ।
वाल्मीकिवाटे रुचिरे स्थापयन्तविदूरतः ॥३॥

बाल्मीकि जी के सुन्दर बाड़े के समीप अन्न आदि से भरे पूरे बहुत से छकड़े खड़े कर दिये गये थे । साथ ही अच्छे-अच्छे फल और मूल भी रख दिये गये थे ।

आसीत् सुपूजितो राज्ञा मुनिभिश्च महात्मभिः ।
वाल्मीकिः सुमहातेजा न्यवसत् परमात्मवान् ॥४॥

राजा श्रीरामचन्द्र जी महाराज तथा बहुसंख्यक महात्मा मुनियों द्वारा भली भाँति पूजित एवं सम्मानित हो, महातेजस्वी आत्मज्ञानी वाल्मीकि मुनि ने बड़े सुख से वहाँ निवास किया ।

स शिष्यावब्रवीद् धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ।।५।।

उन्होंने अपने हृष्ट-पुष्ट दो शिष्यों से कहा तुम दोनों भाई एकाग्रचित्त हो, सब ओर घूम फिरकर बड़े आनन्द के साथ सम्पूर्ण रामायण का गान करो ।

ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च ।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ।।६।।

ऋषियों और ब्राह्मणों के पवित्र स्थानों पर गलियों में और राजमार्गी पर तथा राजाओं के वास स्थानों में भी इस काव्य का गान करना ।

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते ।
ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ।।७।।

श्रीरामचन्द्र जी महाराज का जो गृह बना है । उसके दरवाजे पर ज़हाँ ब्राह्मण लोग यज्ञ कार्य कर रहे हैं । वहाँ तथा ऋत्विजों के आगे भी इस काव्य का विशेष रूप से गान करना चाहिए ।

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च ।
जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यास्वाद्य गायतम् ।।८।।

यहाँ पर्वत के शिखरों पर नाना प्रकार के स्वादिष्ट एवं मीठे फल लगे हैं । (भूख लगने पर) उनका स्वाद ले लेकर इस काव्य का गान करते रहना ।

न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ ।
मूलानि च सुमृष्टानि न रागात् परिहास्यथः ।।९।।

बच्चों के सु मधुर फल मूलों का भक्षण करने से न तो तुम्हें कभी थकावट होगी और न तुम्हारे गले की मधुरता ही नष्ट होने पायेगी ।

यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः ।
ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्ततताम् ॥१०॥

यदि महाराज श्रीरामजी तुम दोनों का गान सुनने के लिए बुलावें तो तुम उनसे तथा वहाँ हुए ऋषि मुनियों से यथा योग्य विनय पूर्ण बर्ताव करना ।

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा ।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा ॥११॥

मैंने पहले भिन्न-भिन्न संख्या वाले श्लोकों से युक्त रामायण काव्य के सर्गा का जिस तरह तुम्हें उपदेश दिया है । उसी के अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस सर्गों का मधुर स्वर से गान करना ।

लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया ।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलोपजीविनाम् ॥१२॥

धन की इच्छा से थोड़ा-सा भी लोभ न करना, आश्रम में रहकर फल मूल भोजन करने वाले वनवासियों को धन से क्या काम ।

यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेवं नराधिपम् ॥१३॥

यदि श्रीरघुनाथ जी पूछें, बच्चों तुम दोनों किसके पुत्र हो तो तुम दोनों महाराज से इतना ही कह देना कि हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं ।

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वाऽपूर्वदर्शनम् ।
मूर्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ ॥१४॥

ये वीणा के सात तार हैं । इनसे बड़ी मधुर आवाज निकलती है । इसमें अपूर्व स्वरों का प्रदर्शन करने वाले ये स्थान बने हैं । इनके स्वरों को झंकृत करके, मिलाकर सुमधुर स्वर में तुम दोनों भाई काव्य का गान करो और सर्वथा निश्चिन्त रहो ।

आदिप्रभृति ज्ञेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम् ।
पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥१५॥

आरम्भ से ही इस काव्य का गान करना चाहिए । तुम लोग ऐसा कोई बर्ताव न करना । जिसमें राजा का अपमान हो । क्योंकि राजा धर्म की दृष्टि से सम्पूर्ण प्राणियों का पिता होता है ।

तद् युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाहितौ ।
गायतं मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥१६॥

अतएव तुम दोनों भाई प्रसन्न और एकाग्र चित्त होकर कल सबेरे से ही वीणा के लय पर मधुर स्वर से रामायण गान आरम्भ कर दो ।

इति संदिश्य बहुशो मुनिः प्राचेतसस्तदा ।
वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्महायशाः ॥१७॥

इस तरह बहुत कुछ आदेश देकर वरुण के पुत्र परम उदार महामुनि वाल्मीकि चुप हो गये ।

संदिष्टौ मुनिना तेन तावुभौ मैथिलीसुतौ ।
तथैव करवावेति निर्जग्मतुररिंदमौ ॥१८॥

मुनि के इस प्रकार आदेश देने पर मिथिलेश कुमारी श्रीसीताजी के वे दोनों शत्रुदमन पुत्र बहुत अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे । यह कहकर वहाँ से चल दिए ।

तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ ।
निवेश्य वाणीमृषिभाषितां तदा ॥
समुत्सुकौ तो सुखमूषतुर्निशां ।
यथाश्विनौ भार्गवनीतिसंहिताम् ॥१९॥

शुक्राचार्य की बनायी हुयी नीति संहिता को धारण करने वाले अश्विनी कुमारों की भाँति ऋषि की कही हुई उस अद्भुत वाणी को हृदय में धारण करके वे दोनों कुमार मन ही मन उत्कण्ठित हो गए यहाँ रात भर सुख से रहो ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ।।९३।।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्षरामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।।९३।।

(वा० रा० उत्तर काण्डे सर्गः ।।९४।।)

तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ ।
यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम् ।।१।।

रात बीतने पर जब सबेरा हुआ तब स्नान संध्या के पश्चात् समीक्षा होम का कार्य पूरा करके वे दोनों भाइ ऋषि के बताये अनुसार वहां सम्पूर्ण रामायण गान करने लगे ।

तां स सुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम् ।
अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम् ।।२।।

श्रीरघुनाथ जी महाराज ने भी वह गान सुना जो पूर्ववर्ती आचार्यों के बताए हुए नियमों के अनुकूल था । संगीत की विशेषताओं से युक्त स्वरों के अलापने की अपूर्व शैली थी ।

प्रमाणैर्बहुभिर्बद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम् ।
बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत् ।।३।।

बहुसंख्यक प्रमाणों ध्वनि परिच्छेद के साधन भूत द्रुत मध्य और विलम्बित इन तीनों की आवृतियाँ अथवा सप्तविध स्वरों के भेद की सिद्धि के लिए बने हुए स्थानों से बधा और वीणा की लय से मिलता हुआ उन दोनों बालकों का वह मधुर गान सुनकर श्रीरामचन्द्र जी को बड़ा कौतूहल हुआ ।

अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ।
पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान् नैगमांस्तथा ।।४।।
पौराणिकाञ्शब्दविदो ये वृद्धाश्च द्विजातयः ।
स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान् द्विजसत्तमान् ।।५।।

लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान्नैगमांश्च विशेषतः ।
पादाक्षरसमासज्ञाश्छन्दःसु परिनिष्ठितान् ॥६॥
कलामात्राविशेषज्ञाञ्ज्योतिषे च परं गतान् ।
क्रियाकल्पविदश्चैव तथा कार्यं विशारदान् ॥७॥
भाषाज्ञानिङ्गितज्ञांश्च नैगमांश्चप्यशेषतः ।

तदनन्तर पुरुष सिंह राजा श्रीरामचन्द्र जी ने कर्मानुष्ठान से अवकाश मिलने पर बड़े-बड़े मुनियों राजाओं, वेद वेत्ता पण्डितों, पौराणिकों, वैयाकरणों, बड़े-बूढ़े ब्राह्मणों, स्वरों और लक्षणों के तथा ज्ञाताओं के गीत सुनने के लिए उत्सुक द्विजो, सामुद्रिक लक्षणों तथा संगीत विद्या के जानकारों, विशेषतः निगनागर के विद्वानों अथवा पूर्वासियों, भिन्न-भिन्न छन्दों के चरणों, उनके गुरु लघु अक्षरों तथा उनके सम्बन्धों का ज्ञान रखने वाले पंडितों, कर्मकाण्डियों, कार्य कुशल पुरुषों, विभिन्न भाषाओं और चेष्टा तथा संकेतों को समझने वाले पुरुषों एवं सारे महाजनों को बुलवाया ।

हेतूपचारकुशलान् हैतुकांश्च बहुश्रुतान् ॥८॥
छन्दोविदः पुराणज्ञान् वैदिकान् द्विजसत्तमान् ।
चित्रज्ञान् वृत्तसूत्रज्ञान् गीतनृत्यविशारदान् ॥९॥
शास्त्रज्ञान् नीतिनिपुणान् वेदान्तार्थप्रबोधकान् ।
एतान् सर्वान् समानीय गातारौ समवेशयत् ॥१०॥

इतना ही नहीं तर्क के प्रयोग में निपुण नैयायिकों, युक्तिवादी एवं बहुज्ञ विद्वानों छन्दों पुराणों और वेदों के ज्ञाता द्विजवरों, चित्रकला के जानकारों, धर्मशास्त्र के अनुकूल सदाचार के ज्ञाताओं, दर्शन एवं कल्पसूत्र के विद्वानों, नृत्य और गीत में प्रविण पुरुषों, विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाताओं, नीति निपुण पुरुषों तथा वेदान्त के अर्थ को प्रकाशित करने वाले व्रह्म वेत्ताओं को भी बुलवाया ।

इन सवको एकत्र करके भगवान श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने रामायण गान करने वाले उन दोनों बालकों को सभा में बुलाकर बिठाया । —

तेषां संवदतां तत्र श्रोतॄणां हर्षवर्धनम् ।
गेयं प्रचक्रतुस्तत्र तावुभौ मुनिदारकौ ।।११।।

सभासदों में, श्रोताओं का हर्ष बढ़ाने वाली बातें होने लगी । उसी समय दोनों मुनि कुमारों ने गाना आरम्भ किया ।

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ।
न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो ज्ञेयसंपदा ।।१२।।

फिर तो मधुर संगीत का तान बह गया । बड़ा अलौकिक गान था । गेय वस्तु की विशेषताओं के कारण सभी श्रोता मुग्ध होकर सुनने लगे । किसी को तृप्ति नहीं होती थी ।

हृष्ट्वा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः ।
पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः ।।१३।।

मुनियों के समुदाय और महापराक्रमी भूपाल, सभी आनन्द मग्न होकर उन दोनों की ओर बार-बार इस तरह देख रहे थे, मानो उनकी रूप माधुरी को नेत्रों से पी रहे हों ।

ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ ।।१४।।

वे सब एकाग्रचित्त हो, परस्पर इस प्रकार कहने लगे । इन दोनों कुमारों की आकृति श्रीरामचन्द्र जी महाराज से बिल्कुल मिलती-जुलती है । ये बिम्ब से प्रगट हुए । प्रतिबिम्ब के समान जान पड़ते हैं ।

जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ।।१५।।

यदि इनके सिर पर जटा न होती और वल्कल न पहने होते तो 'हमें श्रीरामचन्द्र जी में तथा गान करने वाले इन दोनों कुमारों में कोई अन्तर नहीं दिखायी देता ।

एवं प्रभाषमाणेषु पौरजानपदेषु च ।
प्रवृत्तमादितः पूर्वसर्गं नारददर्शितम् ॥१६॥

नगर और जनपद में निवास करने वाले मनुष्य जब इस प्रकार बातें कर रहे थे । उसी समय नारद जी के द्वारा प्रदर्शित प्रथम सर्ग मूल रामायण का आरम्भ से ही गान प्रारम्भ हुआ ।

ततः प्रभृतिसर्गाश्च यावद् विंशत्यगायताम् ॥१६॥
ततोऽपराह्णसमये राघवः समभाषत ।
श्रुत्वा विंशतिसर्गास्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥१७॥
अष्टादशसहस्त्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ।
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम् ॥१८॥

वहाँ से लेकर वीस सर्गों तक का उन्होंने गान किया । तत्पश्चात् अपरान्ह का समय हो गया उतनी देर में वीस सर्गों का गान सुनकर भ्रातृ वत्सल श्रीरघुनाथ जी के भाई भरत से कहा काकुत्स्थ तुम इन दोनों महात्मा बालकों को अठारह हजार स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार के रूप में शीघ्र प्रदान करो । इसके सिवा यदि और किसी वस्तु के लिए इनकी इच्छा हो तो उसे भी शीघ्र ही दे दो ।

ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक् पृथक् ॥१९॥
दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ ।

आज्ञा पाकर भरत शीघ्र ही उन दोनों बालकों को अलग-अलग स्वर्ण मुद्राएँ देने लगे । किन्तु उस दिए जाते हुए सुवर्ण को कुश और लव ने नहीं ग्रहण किया ।

ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥२०॥
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ॥
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥२१॥

वे दोनों महामन यशस्वी बन्धु विस्मित होकर बोले । इस धन की क्या आवश्यकता है । हम वनवासी हैं । जंगली फल मूल से जीवन निर्वाह करते हैं । सोना, चाँदी वन में ले जाकर क्या करेंगे ।

तथा तयोः प्रब्रुवतोः कौतूहलसमन्विताः ।
श्रोतारश्चैव रामश्च सर्व एव सुविस्मिताः ॥२२॥

उनके ऐसा कहने पर सब श्रोताओं के मन में बड़ा कौतूहल हुआ । श्रोता और श्रीराम सभी आश्चर्यचकित हो गये ।

तस्य चैवागमं रामः काव्यस्य श्रोतुमुत्सुकः ।
पप्रच्छ तौ महातेजास्तावुभौ मुनिदारकौ ॥२३॥

तब श्रीरामचन्द्र जी यह सुनने के लिए उत्सुक हुए कि इस काव्य की उपलब्धि कहाँ से हुयी हैं । फिर उन महा तेजस्वी रघुनाथ जी ने दोनों मुनि कुमारों से पूंछा ।

किंप्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः ।
कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुङ्गवः ॥२४॥

इस महाकाव्य की श्लोक संख्या कितनी है । इसके रचयिता महात्मा कवि का आवास स्थान कौन सा है । इस महान् काव्य के कर्ता कौन मुनीश्वर हैं और वे कहाँ हैं ।

प्रच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ ।
वाल्मीकिर्भगवान् कर्ता संप्राप्तो यज्ञसंविधम् ॥
येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं संप्रदर्शितम् ॥२५॥

इस प्रकार पूंछते हुए श्रीरघुनाथ जी से वे दोनों मुनि कुमार बोले । महाराज जिस काव्य के द्वारा आपके इस सम्पूर्ण चरित्र का प्रदर्शन कराया गया है, उसके रचयिता-भगवन् वाल्मीकि हैं और वे इस यज्ञ में पधारे हुए हैं ।

संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम् ।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥२६॥

उन तपस्वी के बनाए हुए इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान है ।

आदिप्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गशतानि च ।
काण्डानि षट् कृतानीह सोत्तराणि महात्मना ।।२७।।

राजन् उन महात्मा ने आदि से लेकर अन्त तक पाँच सर्ग तथा छै काण्डों का निर्माण किया है । इनके सिवा उन्होंने उत्तर काण्ड की रचना की है ।

कृतानि गुरुणास्माकमृषिणा चरितं तव ।
प्रतिष्ठा जीवितं यावत्तवत्सर्वस्य वर्तते ।।२८।।

हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि ने ही सबका निर्माण किया है । उन्हीं ने आपके चरित्र की महाकाव्य का रूप दिया है । इसमें आपके जीवन तक की सारी बातें आ गयी है ।

यदि बुद्धिः कृता राजञ्छ्रवणाय महारथ ।
कर्मान्तरेक्षणो भूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः ।।२९।।

महारथी नरेश यदि आपने इसे सुनने का विचार किया है तो यज्ञ कर्म से अवकाश मिलने पर इसके लिए निश्चित समय निकालिए और अपने भाइयों के साथ बैठकर इसे नियमित रूप से सुनिए ।

बाढ़मित्यब्रवीद् रामस्तौ चानुज्ञाप्य राघवौ ।
प्रहृष्टौ जग्मतुः स्थानं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ।।३०।।

तब श्रीरामचन्द्र जी ने कहा, अच्छा हम इस काव्य को सुनेंगे । तत्पश्चात् श्रीरघुनाथ जी की आज्ञा ले दोनों भाई कुश और लव प्रसन्नता पूर्वक उस स्थान पर गये । जहाँ मुनिवर वाल्मीकि जी ठहरे हुए थे ।

रामोऽपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः ।
श्रुत्वा तद् गीतिमाधुर्यं कर्मशालामुपागमत् ।।३१।।

श्रीरामचन्द्र जी महाराज भी महात्मा मुनियों और राजाओं के साथ उस मधुर संगीत को सुनकर कर्मशाला (यज्ञ मण्डप) में चले गए ।

शुश्राव तत्तालयोपपन्नं सर्गान्वितं सुस्वरशब्दयुक्तम् ।।
तन्त्रीलयव्यञ्जनयोगयुक्तं कुशीलवाभ्यां परिगीयमानम् ।।३२।।

इस प्रकार प्रथम दिन कतिपय सर्गों से युक्त सुन्दर स्वर एवं मधुर शब्दों से पूर्ण बात और लय से सम्पन्न तथा वीणा के लय की व्यंजना से युक्त वह काव्य जिसे कुश और लव ने गाया था। श्रीरामचन्द्र महाराज ने सुना।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ।।९४।।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्षरामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।।९४।।

(वा० रा० उत्तरकाण्डे सर्गः ९५)

रामो बहून्यहान्येव तद् गीतं परमं शुभम् ।
शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह वानरैः ।।१।।

इस प्रकार श्रीरघुनाथ जी ऋषियों, राजाओं और वानरों के साथ कई दिनों तक वह उत्तम रामायण गान सुनते रहे।

तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ।।२।।
दूतान्शुद्धसमाचारानाहूयात्ममनीषया ।
मद् वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिके ।।३।।

उस कथा से ही उन्हें मालूम हुआ कि कुश और लव दोनों कुमार सीता जी के ही पुत्र हैं। यह जानकर सभा के बीच में बैठे हुए श्रीरामचन्द्र जी ने शुद्ध आचार-विचार वाले दूतों को बुलाया और अपनी बुद्धि से विचार कर कहा। तुम लोग यहाँ से भगवन् वाल्मीकि मुनि जी के पास जाओ और उनसे मेरा यह संदेश कहो।

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा बीतकल्मषा ।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ।।४।।

यदि सीता का चरित्र शुद्ध है । यदि उनमें किसी प्रकार पाप नहीं हो तो वे आप महामुनि का अनुमति लें, यहाँ आकर जन समुदाय में अपनी शुद्धता प्रमाणित करें ।

छन्दं मुनेश्च विज्ञाय सीतायाश्च मनोगतम् ।
प्रत्ययं दातुकामायास्ततः शंसत मे लघु ।।५।।

तुम इस विषय में महर्षि बाल्मोकि तथा सीता के भी हार्दिक अभिप्राय को जानकर शीघ्र मुझे सूचित करो कि क्या वे यहाँ आकर अपनो शुद्धि का विश्वास दिलाना चाहती है ।

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा ।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ।।६।।

कल सवेरे मिथिलेश कुमारी जानकी भरी सभा में आवें और मेरा कलंक दूर करने के लिए शपथ करें ।

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद् वचः परममद्भुतम् ।
दूताः संप्रययुर्वाटं यत्र वै मुनिपुङ्गवः ।।७।।

श्रीरघुनाथ जी का यह अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर दूत उस बाड़े में गये । जहाँ मुनिवर बाल्मोकि जी विराजमान थे ।

ते प्रणम्य महात्मानं ज्वलन्तममितप्रभम् ।
ऊचुस्ते रामवाक्यानि मृदूनि मधुराणि च ।।८।।

महात्मा वाल्मीकि जी अमित तेजस्वी थे और अपने तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित हो रहे थे । उन दूतों ने उन्हें प्रणाम करके श्रीरघुनाथ जी के मधुर वचन कोमल शब्दों में कह सुनाये ।

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम् ।
विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ।।९।।

उन दूतों की वह वात सुनकर और श्रीरामचन्द्र जी के हार्दिक अभिप्राय को समझकर वे महा-तेजस्वी मुनि इस प्रकार बोले ।

एवं भवतु भद्रं वो यथा वदति राघवः ।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ।।१०।।

ऐसा ही होगा, तुम लोगों का भला हो, श्रीरघुनाथ जी जो आज्ञा देते हैं । सीताजी वही करेंगी । क्योंकि पति, स्त्री के लिए देवता है ।

तथोक्ता मुनिना सर्वे राजदूता महौजसः ।
प्रत्येत्य राघवं सर्वे मुनिवाक्यं बभाषिरे ।।११।।

मुनि के ऐसा कहने पर वे सब राजदूत महातेजस्वी श्रीरघुनाथ जी के पास लौट आये । उन्होंने मुनि की कही हुयी सारी बातें ज्यों का त्यों कह सुनायी ।

ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः ।
ऋषींस्तत्र समेतांश्च राज्ञश्चैवाभ्यभाषत् ।।१२।।

महात्मा वाल्मीकि की बातें सुनकर श्रीरघुनाथ जी को बड़ी प्रसन्नता हुयी और उन्होंने वहाँ आये हुए ऋषियों तथा राजाओं से कहा ।

भगवन्तः सशिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः ।
पश्यन्तु सीता शपथं यश्चैवान्योऽपि काङ्क्षते ।।१३।।

अब सब पूज्यपाद मुनि शिष्यों सहित सभा में पधारें । सेवकों सहित राजा लोग भी उपस्थित हों तथा दूसरा भी जो कोई सीता का शपथ सुनना चाहता हो वह आ जाय । इस प्रकार सब लोग एकत्र होकर सीताजी का शपथ ग्रहण देखें ।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
सर्वेषामृषिमुख्यानां साधुवादो महानभूत् ।।१४।।

महात्मा राघवेन्द्र का यह वचन सुनकर समस्त महर्षियों के मुख से महान् साधुवाद की ध्वनि गूँज उठी ।

राजानश्च महात्मानः प्रशंसन्ति स्म राघवम् ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ।।१५।।

राजा लोग भी महात्मा रघुनाथ जी की प्रशंसा करते हुए बोले, नरश्रेष्ठ इस पृथ्वी पर सभी उत्तम बातें केवल आप में ही सम्भव है। दूसरे किसी में नहीं।

एवं विनिश्चयं कृत्वा श्वोभूत इति राघवः ।
विसर्जयामास तदा सर्वांस्ताञ्छत्रुसूदनः ।।१६।

इस प्रकार दूसरे दिन श्रीसीताजी से शपथ लेने का निश्चय करके शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजी ने उस समय सबको विदा कर दिया।

इति संप्रविचार्य राजसिंहः, श्वोभूते शपथस्य निश्चयम् ।
विससर्ज मुनीन् नृपांश्च सर्वान्, स महात्मा महतो महानुभावः ।।१७।।

इस प्रकार दूसरे दिन सवेरे श्रीसीताजी से शपथ लेने का निश्चय करके महानुभाव महात्मा राजसिंह श्रीराम ने उन सब मुनियों और नरेशों को अपने-अपने स्थान पर जाने की अनुमति दे दी।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तर काण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ।।९५।।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्षरामायण आदिकाव्य के उत्तर काण्ड में पंचानवेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।।९५।।

(वा० रा० उत्तरकाण्डे सर्गः ९६)

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटं गतो नृपः ।
ऋषीन् सर्वान् महातेजाः शब्दापयति राघवः ।।१८।।

रात बीती सवेरा हुआ, महातेजस्वी राजा श्रीरामचन्द्र जी यज्ञशाला में पधारे। उस समय उन्होंने समस्त ऋषियों को बुलवाया।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
विश्वामित्रो दीर्घतमा दुर्वासाश्च महातपाः ॥२॥
पुलस्त्योऽपि तथा शक्तिर्भार्गवश्चैव वामनः ।
मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्मौद्गल्यश्च महायशाः ॥३॥
गर्गश्च च्यवश्चैव शतानन्दश्च धर्मवित् ।
भरद्वाजश्च तेजस्वी अग्निपुत्रश्च सुप्रभः ॥४॥
नारदः पर्वतश्चैव गौतमश्च महायशाः ।
कात्यायनः सुयज्ञश्च ह्यगस्त्यस्तपसां निधिः ॥५॥
एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ।
कौतूहलसमाविष्टाः सर्व एव समागताः ॥६॥

वसिष्ठ, वामदेव, जावालि, काश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतमा, महातपस्वी, दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति भार्गव, बामन, दीर्घजीवी मर्कण्डेय, महायशस्वी मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, धर्मज्ञ शतानन्द, तेजस्वी भरदाज, अग्नि पुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, महायशस्वी गौतम, कात्यायन, सुयज्ञ और तपोनिधि, अगस्त्य ये तथा दूसरे कठोर व्रत का पालन करने वाले सभी बहुसंखयक महर्षि कौतूहल वंश वहाँ एकत्र हुए—

राक्षसाश्च महावीर्या वानराश्च महाबलाः ।
सर्व एव समाजग्मुर्महात्मानः कुतूहलात् ॥७॥

महापराक्रमी राक्षस और महाबली वानर ये सभी महामना कौतूहलवश वहाँ आये ।

क्षत्रिया ये च शूद्राश्च वैश्याश्चैव सहस्रशः ।
नानादेशगताश्चैव ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥८॥

नाना देशों से पधारे हुए तीक्ष्ण व्रतधारी, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सहस्रों की संख्या में वहाँ उपस्थित हुए ।

ज्ञाननिष्ठा कर्मनिष्ठा योगनिष्ठास्तथापरे ।
सीता शपथवीक्षार्थं सर्व एव समागताः ॥९॥

सीता जी का शपथ ग्रहण देखने के लिए ज्ञाननिष्ठ और योगनिष्ठ सभी तरह के लोग पधारे थे ।

तदा समागतं सर्वमश्मभूतमिवाचलम् ।
श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥१०॥

राज सभा में एकत्र हुए सब लोग पत्थर की भाँति निश्चल होकर बैठे हैं। यह सुनकर मुनिवर बाल्मीकि जी श्रीसीता जी को साथ लेकर तुरन्त वहाँ पहुँचे।

तमृषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी ।
कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥११॥

महर्षि जी के पीछे सीता जी सिर झुकाए चलीं आ रहीं थीं। उनके दोनों हाँथ जुड़े हुए थे। और नेत्रों से आँसू टपक रहे थे। वे अपने हृदय मन्दिर में बैठे हुए श्रीरामचन्द्र जी महाराज का चिन्तन कर रही थीं।

तां दृष्ट्वा श्रुतिमायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम् ।
बाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादा महान्भूव् ॥१२॥

वाल्मीकि जी के पीछे-पीछे आती हुयी श्रीसीता जी ब्रह्मा जी का अनुसरण करने वाली श्रुति के समान जान पड़ती थीं। उन्हें देखकर वहाँ धन्य-धन्य की भारी आवाज गूंज उठी थी।

ततो हलहलाशब्दः सर्वेषामेवमाबभौ ।
दुःखजन्मविशालेन शोकेनाकुलितात्मनाम् ॥१३॥

उस समय समस्त दर्शकों का हृदय दुःख देने वाले महान् शोक से व्याकुल हो गया। उन सब का हृदय कोलाहल सा ओर व्याप्त हो गया।

साधु रामेति केचित्तु साधु सीतेति चापरे ।
उभावेव च तत्रान्ये प्रेक्षका संप्रचुक्रुशुः ॥१४॥

कोई कहता था श्रीराम तुम धन्य हो, दूसरे कहते थे कि देवी तुम धन्य हो तथा वहाँ कुछ अन्य दर्शक भी ऐसे थे जो सीता जी और श्रीरामचन्द्र जी दोनों को उच्च स्वर से साधुवाद दे रहे थे।

ततो मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुंगवः।
सीता सहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ।।१५।।

तब उस जन समुदाय के बीच में सीता जी प्रवेश करके मुनिवर वाल्मीकि जी श्रीरघुनाथ जी से इस प्रकार बोले।

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रम समीपतः ।।१६।।

दशरथ नन्दन यह सीता जी उत्तम व्रत का पालन करने वाली और धर्म परायणा हैं। आप ने लोकोपवाद से डर कर इसे मेरे आश्रम के समीप त्याग दिया था।

लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत।
प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ।।१७।।

महानव्रतधारी श्रीराम लोकापवाद से डरे हुए आपको श्रीसीता जी अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाएगी। इसके लिए आप उसे आज्ञा दें।

इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।।१८।।

ये दोनों कुमार कुश और लव जानकी के गर्भ से जुड़वे पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके समान दुर्धर्ष वीर हैं। यह मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ।

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
नस्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ।।१९।।

रघुकुलनन्दन में प्रचेता (वरुण) का दशवां पुत्र है। मेरे मुँह से कभी झूठ बात निकली हो तो इसकी याद मुझे नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ यह दोनों आपके ही पुत्र हैं।

वहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ।।२०।।

मैंने कई हजार वर्षों तक भारी तपस्या की है। यदि मिथिलेश कुमारी सीता में कोई दोष हो ता मुझे उस तपस्या का फल न मिले।

मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्विषम् ।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥२१॥

मैंने मन, वाणी, और क्रिया द्वारा भी 'पहले कभी कोई पाप नहीं किया' है। यदि मिथिलेश कुमारीसीता निष्पाप हों तो तभी मुझे अपने पाप शून्य पुण्य कर्म का फल प्राप्त हो।

अहं पञ्चसु भूतेषु मनःषष्ठेषु राघवः ।
विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥२२॥

रघुनन्दन ! मैंने अपनी पाँचों इन्द्रियों और मन बुद्धि के द्वारा सीता जी की शुद्धता का भली भाँति निश्चय करके ही इसे अपने समरक्षण में लिया था। यह मुझे जङ्गल में एक झरने के पास मिली थीं।

इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥२३॥

इसका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पाप इसे छू भी नहीं सका है तथा यह पति को ही देवता मानती है। अतः लोकापवाद से डरे हुए आपको अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाएगी।

तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा ।
दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रदिष्टा ।
लोकापवादकलुषी कृतचेतसा या ।
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥२४॥

राजकुमार मैंने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया कि सीता जी का भाव और विचार परम पवित्र है। इसलिए यह मेरे आश्रम में प्रवेश कर सकी हैं। आप को भी यह प्राणों से अधिक प्यारी है और आप यह भी जानते हैं कि सीता जी सर्वथा शुद्ध है तथापि लोकापवाद से कलुषित चित्त होकर आप ने इसका त्याग किया है।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तर काण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में छानवेवां सर्ग पूरा हुआ ॥९६॥

वा० रा० उत्तरकाण्डे सर्गः ॥९७॥

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ।
प्रञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां वरवर्णिनीम् ॥१॥

महर्षि वाल्मीकि जी के ऐसा कहने पर श्रीरघुनाथ जी सुन्दरी सीता देवी की ओर एक बार दृष्टि डालकर उस जन समुदाय के बीच हाँथ जोड़कर बोले ।

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित् ।
प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥२॥

महाभाग आप धर्म के ज्ञाता हैं । सीता के सम्बन्ध में आप जैसे कह रहे हैं । वह सब ठीक है । ब्रह्मन् आपके इस निर्दोष बचनों से मुझे जनकनन्दिनी की शुद्धता पर पूरा विश्वास हो गया है ।

प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसंनिधौ ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता ॥३॥

एक बार पहले भी देवताओं के समीप विदेह कुमारी की शुद्धता का विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है । उस समय सीता ने अपनी शुद्धि के लिए शपथ की थी । जिसके कारण मैंने इन्हें अपने भवन में स्थान दिया ।

लोकपवादो वलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन् पापेत्यभिजानता ॥
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥४॥

किन्तु आगे चलकर फिर बड़े जोर का लोकापवाद उठा । जिससे विवश होकर मुझे मिथिलेश कुमारी का त्याग करना पड़ा । ब्रह्मन् यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप है । मैंने केवल समाज के भय से इन्हें छोड़ दिया था । अतः आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ।

जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥५॥

मैं यह भी जानता हूँ कि ये जुड़वे उत्पन्न हुए कुमार "कुश" और "लव" मेरे ही पुत्र हैं । तथापि जन समुदाय में शुद्ध प्रमाणित होने पर ही मिथिलेश कुमारी में मेरा प्रेम हो सकता है ।

अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य सुरसत्तमाः ।
सीतायाः शपथे तस्मिन् महेन्द्राद्या महौजसः ।।६।।
पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ।।

श्रीरामचन्द्र जी के अभिप्राय को जानकर सीता के शपथ के समय महेन्द्र आदि सभी मुख्य-मुख्य महातेजस्वी देवता पितामह ब्रह्मा जी को आगे करके वहाँ आ गये ।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।।७।।
साध्याश्च देवाः सर्वे ते सर्वे च परमर्षयः ।
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च ते सर्वे हृष्टमानसाः ।।८।।
सीताशपथसंभ्रान्ताः सर्व एव समागताः ।

आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वदेव, मरुद्गण, समस्त साध्य देश सभी महर्षि नाग, गरुण और सम्पूर्ण सिद्धगण प्रसन्न चित्त हो सीता जी के शपथ ग्रहण को देखने के लिए घबराये हुए से वहाँ आ पहुँचे ।

दृष्ट्वा देवानृषींश्चैव राघवः पुनरब्रवीत् ।
प्रत्ययो मे सुरश्रेष्ठ ऋषिवाक्यैरकल्मषैः ।।१०।।
शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे ।

देवताओं तथा ऋषियों को उपस्थित देख श्रीरघुनाथ जी फिर बोले, सुरश्रेष्ठ गण यद्यपि मुझे महर्षि वाल्मीकि जी के निर्दोष वचनों से ही पूरा विश्वास हो गया तथापि जन समुदाय के बीच विदेह कुमारी की विशुद्धता प्रमाणित हो जाने पर मुझे अधिक प्रसन्नता होगी ।

ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरमः ।।११।।
तं जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः ।।१२।।

तदनन्तर दिव्य सुगन्ध से परिपूर्ण मन को आनन्द देने वाले परम पवित्र एवं शुभ कारक सुरश्रेष्ठ वायुदेव मन्दगति से प्रवाहित हो सब ओर सभी वहाँ उपस्थितजन समुदाय को अहलाद प्रदान करने लगे ।

तद्भुतमिवाचिन्त्यं निरैक्षन्त समाहिताः ।
मानवाः सर्वराष्ट्रेभ्यः पूर्वं कृतयुगे यथा ॥१३॥

समस्त राष्ट्रों से आये हुए मनुष्यों ने एकाग्र चित्त हो प्राचीन काल के सत्ययुग की भाँति यह अद्भुत और अचिन्त्य सी घटना अपनी आँखों देखी ।

सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी ॥१४॥

उस समय सीता जी तपस्विनियों के अनुरूप गेरुआ वस्त्र धारण किये हुयी थीं । सबको उपस्थित जानकर वे हांथ जोड़े दृष्टि और मुख को नीचे किये बोलीं ।

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥१५॥

मैं श्रीरघुनाथ जी के सिवा दूसरे किसी पुरुष का स्पर्श तो दूर रहा, मन से चिन्तन भी नहीं करती । यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपने गोद में स्थान दें ।

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥१६॥

यदि मैं मन वाणी और क्रिया के द्वारा केवल श्रीराम की ही आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दे ।

यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥१७॥

भगवान श्रीराम को छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुष को नहीं जानती । मेरी कही हुयी यह बात सत्य हो तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें ।

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत् तद्भुतम् ।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥१८॥

विदेह कुमारी सीता के इस प्रकार शपथ करते ही भूतल से एक अद्भुत सिंहासन प्रगट हुआ । जो बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था ।

ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ।।१९।।

दिव्य रत्नों से विभूषित महापराक्रमी नांगो ने दिव्य रूप धारण करके उस दिव्य सिंहासन को अपने सिर पर धारण कर रखा था ।

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ।।२०।।

सिंहासन के साथ ही पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य रूप से प्रकट हुई । उन्होंने मिथिलेश कुमारी सीता को अपनी दोनों भुजाओं से गोद में उठा लिया । और स्वागत पूर्वक उनका अभिनन्दन करके उन्हें उस सिंहासन पर बिठा दिया ।

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम् ।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ।।२१।।

सिंहासन पर बैठकर जब श्रीसीता जी रसातल में प्रवेश करने लगीं उस समय देवताओं ने उनकी ओर देखा । फिर तो आकाश से उनके ऊपर दिव्य पुष्पों की लगातार वर्षा होने लगी ।

साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः ।
साधु साध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ।।२२।।

देवताओं के मुख से सहसा धन्य-धन्य का महान् शब्द प्रकट हुआ । वे कहने लगे सीते तुम धन्य हो धन्य । तुम्हारा शील स्वभाव इतना सुन्दर और ऐसा पवित्र है ।

एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः ।
व्याजह्रुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ।।२३।।

सीता जी का रसातल में प्रवेश देखकर आकाश में खड़े हुए देवता प्रसन्न चित्त हो इस तरह की बहुत सी बातें कहने लगे ।

यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते ।
राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ।।२४।।

यज्ञ मण्डप में पधारे हुए सभी मुनि और नर श्रेष्ठ नरेश भी आश्चर्य से भर गये ।

(३८५)

अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः ॥२५॥

अन्तरिक्ष में और भूतल पर सभी चराचर प्राणी तथा पाताल में विशालकाय दानव और नागराज भी आश्चर्य चकित हो उठे ।

केचिद् विनेदुः संहृष्टाः केचिद् ध्यानपरायणाः ।
केचिद् रामं निरीक्षन्ते केचित् सीतामचेतसः ॥२६॥

कोई हर्ष नाद करने लगे, कोई ध्यान मग्न हो गये, कोई श्रीराम की ओर देखने लगे । और कोई हक्के-बक्के से होकर सीता की ओर निहारने लगे ।

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत् समागमः ।
तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं संमोहितं जगत् ॥२७॥

सीता का भूतल में प्रवेश देखकर वहाँ आये हुए सब लोग हर्ष शोक आदि में डूब गये । दो घड़ी तक वहाँ का सारा जन-समुदाय अत्यन्त मोहाच्छन्न-सा हो गया ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये—

उत्तर काण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥९७॥

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में सत्तानबेवां सर्ग पूरा हुआ ॥९७॥

वा० रा० उत्तरकाण्डे सर्गः ॥९८॥

रसातलं प्रविष्टायां वैदेह्यां सर्ववानराः ।
चुक्रुशुः साधु साध्वीति मुनयो रामसंनिधौ ॥१॥

विदेह कुमारी सीता के रसातल में प्रवेश कर जाने पर श्रीरामचन्द्र जी महाराज के समीप बैठे हुए सम्पूर्ण वानर तथा ऋषि मुनि कहने लगे । साध्वी सीते तुम धन्य हो ।

दण्डकाष्ठमवष्टभ्य वाष्पव्याकुलितेक्षणः ।
अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यासीत् सुदुःखितः ॥२॥

किन्तु स्वयं भगवान श्रीरामचन्द्र महाराज बहुत दुःखी हुए । उनका मन उदास हो गया और वे गूलर के डण्डे का सहारा लिए खड़े सिर झुकाए नेत्रों से आंसू बहाने लगे ।

स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो वाष्पमुत्सृजत्।
क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत् ।।३।।

बहुत देर तक रोकर बारंबार आँसू बहाते हुए क्रोध और शोक से युक्त हो श्री रामचन्द्र जा इस प्रकार बोले ।

अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्प्रष्टुमिवेच्छति ।
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्रीरिव रूपिणी ।।४।।

आज मेरा मन अभूत पूर्व शोक में डूबना चाहता है, क्योंकि इस समय मेरी आँख के सामने से मूर्ति मती लक्ष्मी के समान सीता जी अदृश्य हो गयीं।

सादर्शनं पुरा सीता लङ्कापारे महोदधेः ।
ततश्चापि मयानीता किं पुनर्वसुधातलात् ।।५।।

पहली बार सीता जी समुद्र के उस पार लङ्का में जाकर मेरी आँखों से ओझल हुयी थीं। किन्तु जब मैं वहाँ से उन्हें लौटा लाया तब पृथ्वी के भीतर से ले जाना कौन बड़ी बात है ।

वसुधे देवि भवति सीता निर्यात्यतां मम ।
दर्शयिष्यामि वा रोषं यथा मामवगच्छसि ।।६।।

(यों कहकर वे पृथ्वी से बोले) पूजनीये भगवती वसुन्धरे मुझे सीता लौटा दो, अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा कि मेरा प्रभाव कैसा है। ये तुम जानती हो ।

कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात्तु मैथिली ।
कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ।।७।।

देवि ! वास्तव में तुम्हीं मेरी सास हो, राजा जनक हाँथ में हल लिए तुम्हीं को जोत रहे थे। जिससे तुम्हारे भीतर से सीता का प्रादुर्भाव हुआ।

तस्मात् निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे ।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ।।८।।

अतः या तो तुम सीता को लौटा दो अथवा मेरे लिए भी अपनी गोद में जगह दो। क्योंकि पाताल हो या स्वर्ग मैं सीता के साथ ही रहूँगा।

आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोऽहं मैथिलीकृते ।
न मे दास्यसि चेत् सीतां यथारूपां महीतले ॥९॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां व्यथयिष्यामि ते स्थितम् ।
नाशयिस्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवन्त्विह ॥१०॥

तुम मेरी सीता को लाओ । मैं मिथिलेश कुमारी के लिए मतवाला (बेसुध) हो गया हूँ । यदि इस पृथ्वी पर तुम उसी रूप में सीता को मुझे लौटा नहीं दोगी तो मैं पर्वत और वन सहित तुम्हारी स्थित को नष्ट कर दूँगा । सारी भूमिका विनाश कर डालूंगा । फिर भले ही सब कुछ जलमय हो हो जाय ।

एवं ब्रुवाणे काकुत्स्थे क्रोधशोकसमन्विते ।
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धमुवाच रघुनन्दनम् ॥११॥

श्रीरघुनाथ जी जब क्रोध और शोक से युक्त हो इस प्रकार को बातें कहने लगे, तब देवताओं सहित ब्रह्मा जी ने उन रघुकुलनन्दन श्रीराम से कहा.।

राम राम न संतापं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्षन ॥१२॥

उत्तम व्रत का पालन करने वाले श्रीराम आप मन में संताप न करे । शत्रु सूदन अपने पूर्व स्वरूप का स्मरण करें ।

न खलु त्वां महाबाहो स्मारयेयमनुत्तमम् ।
इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥१३॥

महावाहो मैं आपको आपके उत्तम स्वरूप का स्मरण नहीं दिला रहा हूँ । दुर्धंष वीर ! केवल यह अनुरोध कर रहा हूँ कि इस समय आप ध्यान के द्वारा अपने वैष्णव स्वरूप का स्मरण करें ।

सीता हि विमला साध्वी तव पूर्वपरायणा ।
नागलोकं सुखं. प्रायात्वदाश्रयतपोबलात् ॥१४॥

साध्वी सीता सर्वथा शुद्ध हैं । वे पहले से ही आपके ही परायण रहती हैं । आपका आश्रय लेना ही उनका तपोबल है । उसके द्वारा वे सुख पूर्वक नाग लोक के बहाने आपके परमधाम में चली गयी हैं ।

स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः।
अस्यास्तु परिषन्मध्ये यद्ब्रवमि निबोध तत् ॥१५॥

अब पुनः साकेत धाम में आपकी उनसे भेंट होगी, इसमें संशय नहीं है। उस पर ध्यान दीजिए।

एतदेव हि काव्यं ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम्।
सर्वं विस्तरतो राम व्याख्यास्यति न संशयः ॥१६॥

आपके चरित्र से सम्बन्ध रखने वाला यह काव्य जिसे आप ने सुना है। सब काव्यों में उत्तम है। श्रीराम यह आपके सारे जीवन व्रत का विस्तार से ज्ञान करायेगा। इसमें संदेह नहीं है।

जन्मप्रभृति ते वीर सुखदुःखोपसेवनम्।
भविष्यदुत्तरं चेह सर्वं वाल्मीकिना कृतम् ॥१७॥

वीर आविर्भाव काल से जो आपके द्वारा सुख दुःखों का (स्वेच्छा से) सेवन हुआ है। उसका तथा सीता के अन्तरध्यान होने के बाद जो भविष्य में होने वाली बातें हैं, उनका भी महर्षि वाल्मीकि जी ने इसमें पूर्ण रूप से वर्णन कर दिया है।

आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
नह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते ॥१८॥

श्रीराम यह आदि काव्य हैं। इस सम्पूर्ण काव्य की आधारशिला आप ही हैं। आपके ही जीवन वृतान्त को लेकर इस काव्य की रचना हुयी है। रघुकुल की शोभा बढ़ाने वाले आपके सिवाय दूसरा कोई ऐसा यशस्वी पुरुष नहीं है, जो काव्यों का नायक होने का अधिकारी हो।

श्रुतं ते पूर्वमेतद्धि मया सर्वं सुरैः सह।
दिव्यमद्भुतरूपं च सत्यवाक्यमनावृतम् ॥१९॥

देवताओं के साथ मैंने पहले आप से सम्बन्धित इस सम्पूर्ण काव्य का श्रवण किया है। यह दिव्य और अद्भुत है। इसमें कोई भी बात छिपायी नहीं गयी है। इसमें कही गयी सारी बातें सत्य हैं।

स त्वं पुरुषशार्दूल धर्मेण सुसमाहितः ।

शेषं भविष्यं काकुत्स्थ काव्यं रामायणं शृणु ॥२०॥

पुरुष सिंह रघुनन्दन ! आप धर्म पूर्वक एकाग्र चित्त हो भविष्य के घटनाओं से युक्त शेष रामायण काव्य को भी सुन लीजिए ।

उत्तरं नाम काव्यस्य शेषमत्र महायशः ।

तच्छृणुष्व महातेज ऋषिभि सार्धमुत्तमम् ॥२१॥

महायशस्वी एवं महातेजस्वी ऋषिभि इस काव्य के अन्तिम भाग का उत्तरकाण्ड है । उस उत्तम भाग को आप ऋषियों के साथ सुनिये ।

न खल्वन्येन काकुत्स्थ श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।

परमऋषिणा वीर त्वयैव रघुनन्दन ॥२२॥

काकुत्स्थ वीर रघुनन्दन ! आप सर्वोत्कृष्ट राजर्षि है । अतः पहले आपको ही यह उत्तम काव्य सुनना चाहिए । दूसरे को नहीं ।

एतावदुक्त्वा वचनं ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ।

जगाम त्रिदिवं देवो देवैः सहं सबान्धवैः ॥२३॥

इतना कहकर तीनों लोको के स्वामी ब्रह्मा जी, देवताओं एवं उनके बन्धु बान्धवों के साथ अपने लोक को चले गये ।

ये च तत्र महात्मान ऋषियो ब्राह्मलौकिकाः ।

ब्रह्मणा समनुज्ञाता न्यवर्तन्त महौजसः ।

उत्तरं श्रोतुमनसो भविष्यं यच्च राघवे ॥२४॥

वहाँ जो ब्रह्म लोक में रहने वाले महातेजस्वी महात्मा ऋषि विद्यमान थे । वे ब्रह्मा जी की आज्ञा पाकर भावी वृतान्तों से युक्त उत्तर काण्ड को सुनने की इच्छा से लौट आये । (उनके साथ ब्रह्म लोक में नहीं गये ।)

ततो रामः शुभां वाणीं देवदेवस्य भाषिताम् ।
श्रुत्वा परमतेजस्वी वाल्मीकिमिदमब्रवीत् ॥२५॥

तत्पश्चात् देवाधि देव ब्रह्मा जी की कही हुयी उस शुभ वाणी को याद करके परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने महर्षि वाल्मीकि जी से इस प्रकार से कहा ।

भगवञ्श्रोतुमनस ऋषयो ब्राह्मलौकिकाः ।
भविष्यदुत्तरं यन्मे श्वोभूते संप्रवर्तताम् ॥२६॥

भगवन् ! ये ब्रह्म लोक के निवासी महर्षि मेरे भावी चरित्रों से युक्त उत्तरकाण्ड का शेष अंश सुनना चाहते हैं । अतः कल सबेरे से ही उसका गान आरम्भ हो जाना चाहिए ।

एवं विनिश्चयं कृत्वा संप्रगृह्य कुशीलवौ ।
तं जनौघं विसृज्याथ पर्णशालामुपागमत् ॥
तामेव शोचतः सीतां सा व्यतीता च शर्वरी ॥२७॥

जन समुदाय को विदा कर दिया और कुश तथा लव को साथ लेकर वे अपनी पर्णशाला में आये । वहाँ सीता जी का ही चिन्तन करते-करते उन्होंने रात व्यतीत की ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये उत्तरकाण्डे ह्ष्टनवतितमः सर्गः ॥९८

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥९८॥

॥ हर हर महादेव ॥

श्रीहरिः

श्री चरणों में कोटिशः नमन

श्री मुनि जन सेव्य उन पावनपूत पवित्र शुचि अभिमत फलदाता, दुखहर्ता, सुखकर्ता मोक्ष प्रदाता भोगदाता श्रीगुरु चरणारविंदों का सादर फिर नमन करता हूँ। जिनकी करुण कृपा कटाक्ष से सब सफलता चरण चूमती है। रिद्धि-सिद्धि आगे-आगे आती हैं। समस्त विधायें जिनकी कृपा से ही शिष्य के आगे सदा ही नतमस्तक रहती हैं। नव रस वाली वाणी ओज प्रासाद माधुर्य से भर जाती है। ब्रह्म विद्या भी हस्तामलक की भाँति सुगम हो जाती है। वाणी तथा लेखनी की गति मिल जाती है। सब अर्थ भेद सहज ही प्रकट हो जाते हैं। अभीष्ट सिद्धि हो जाती है। मनोरथ सफल हो जाते हैं। श्रीगुरु चरणों का अनुपम अद्भुत प्रकाश ज्यों ही अन्तःकरण में प्रवेश करता है त्यों ही सब तिमिर विलीन हो जाते हैं, ज्ञान रहस्यखुल जाता है तथा अपने स्वरूप का तत्काल उत्तम बोध हो जाता है। उन्हीं की कृपा से यह उनका नम्र सेवक ग्रन्थ के अपार गुण गान में समर्थ हुआ है। अतः सज्जनो ? इस प्रवचन सागर से आप सबको इतने दिनों तक ढूँढ़-ढूँढ़ कर रत्न निकाल कर दिखाये और बाँटे गये हैं। श्रीराम कथा तो अनंत सागर से भी कोटि गुणित विस्तृत हैं। कितने भी रत्न निकालो सदा वृद्धि को ही प्राप्त होता है। यह रस, वह रस है जो कभी फीका नहीं पड़ता अपितु नित्य नव नवायमान रसवान बना रहता है। भगवान की कथा कामधेनु के समान है।

कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।

जैसे कामधेनु श्री गऊमाता अनंत सुख प्रदान करने वाली रस पूर्ण पयोधर धारिणी हैं। अमृत सदृश दुग्ध देती हैं बल, बुद्धि, विद्या वीर्य पराक्रम प्रदान करती है। परन्तु यह सब किसको जो उनका सेवक भक्त है। वही उस सुख का जान सकता है। उसी पुष्ट पयोधर के पास दुष्ट किलनी, जोंक खून ही पीती है। चाहे तो अमृत समान दूध पान कर सकतो है परन्तु नहीं, आदत तो वैसी पड़ गई है। जैसे तालाब के कमलों का सुख भँवरा और हंस ही प्राप्त करते हैं, विचारे दादुर मेढक राम तो कीचड़ से ही खुश रहने वाले हैं। उनको कमल के पराग तथा पल्लव से क्या प्रयोजन है। इसी प्रकार आपने देखा कि सभी जीव जन्तु प्राणी मात्र श्री अवधवासी नर-नारी भगवती जगदम्बा श्रीसीता जो महारानी प्रभु श्रीराम महाराज के लिए १४ वर्ष तक कितने आकुल व्याकुल थे। आने पर कितनी प्रसन्नता हर्ष को प्राप्त हुए। सब यही वरदान माँगते थे कि जब-जब जहाँ-जहाँ जन्म पाऊँ श्रीराम राजा श्रीजानकी जी रानी जो हों।

राजाराम जानकी रानी । आनंद उमगं अवध रजधानी ।

परन्तु जोंक, मेढ़क की भांति उस धोबी के कहने में जो दुःख दारुण चरित्र आपने सुना, भगवती का धरणीं गमन आपने सुना । इसी का नाम संसार सृष्टि है । सज्जनो ! आप को सार बताता हूँ कि संसार के लिए या अवधवासियों के लिए श्रीसीता जी महारानी का वनवास हुआ, कष्ट सहा, परन्तु नित्य बात यह है कि श्रीसीताराम जी प्रभु एक ही हैं । उनका कभी वियोग होता ही नहीं—जैसे फूल से सुगन्ध सूर्य से किरण, चन्द्र से चन्द्रिका, धरणी से क्षमा, वायु से वेग, आकाश से शब्द, अग्नि से तेज कभी अलग नहीं होता और अगर होना चाहे तो भी नहीं हो सकता । इसी भांति श्री सीताराम प्रभु जी सदा ही भक्तों के अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं । अर्थ और वाणी के तुल्य सदा ही साथ-साथ रहते हैं, भगवती ने स्वयं ही कहा है ।

साहं तपः सूर्यं निविष्टदृष्टिरनर्घ्वं प्रसूतेश्चरितं यतिष्ये ।
भूवो यथा में जननान्तरेऽपि त्वमेवभर्ता न च विप्रयोगः ।।
(रघुवंश महाकाव्ये चतुर्दशसर्गे ६६)

पर पुत्र हो जाने पर मैं सूर्य में दृष्टि बाँध कर ऐसी तपस्या करूंगीं कि अगले जन्म में भी आपही मेरे पति हों । आपसे मुझे अलग न होना पड़े इसलिए वे कभी अलग होते ही नहीं हैं ।

कनक भवन राजत सदा सिययुत रघुकुल चन्द ।
कल्पद्रुम की छाँह तरु सेवत परिकर वृन्द ।।

सज्जनो ! श्रीसीताराम प्रभु सदा ही अभिन्न हैं । भक्तों को सुख देने के लिए ही नाना रूप धारण कर अद्भुत लीलाएँ करते हैं । भक्तों सज्जनों को मोह नहीं होना चाहिए । मोह वश अज्ञानी ही अर्थ का अनर्थ सोचता है । समुद्र अतः आप सब बहुत मन लगा कर इस कथा समुद्र में अमूल्य रत्न पाया है । इसलिए इन सबको अति जतन पूर्वक सुरक्षित रखिएगा और इनका प्रयोग करते रहिएगा । इस "श्री प्रवचन रत्नाकर" में आपने बहुत काल अवगाहन मार्जन श्रवण किया है । सदा ही ऐसे अवसरों की खोज में रहिएगा और सबके मंगल कल्याण की सदा शुभ कामना के साथ इस धर्म सभा के इस द्वितीय सत्र को विराम देना चाहता हूँ । इसमें जिन-जिन सज्जन पुरुषों का मन-वाणी-कर्म से सहयोग मिला उन सबको फिर मंगलानुशासन करता हूँ और तृतीय सत्र में "श्री प्रवचन दिवाकर" के लिए सावधानीपूर्वक तैयारी करने तथा मङ्गल श्रवण के लिए श्री प्रभु विश्वनाथ श्रीमाता अन्नपूर्णा एवं श्रीउत्तरवाहिनी श्रीगंगा जी से एवं श्रीपावन गुरुचरणारविंदों में नमन पूर्वक प्रार्थना करता रहा हूँ, कर रहा हूँ और करूंगा भी ।

इति सदा शिवम्

।। हर हर महादेव ।।